CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2
RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

n Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-

ru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE

ru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

केत का

वम् सर्ग

ोक प्रकाशन
ई सडक, दिल्ली

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-Mo

ওরিএন্টাল লেজ
oriental-L

Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation,

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

साकेत का नवम सर्ग

[विशेष आलोचना एवं विशद व्याख्या सहित]

तृतीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण

लेखक

डॉ० देशराजसिंह भाटी

एम० ए०, पी-एच० डी०

राजधानी कालिज

कीर्तिनगर, नई दिल्ली-१५

प्रकाशक

अशोक प्रकाशन

नई सड़क, दिल्ली-6

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

प्रकाशक :
अशोक प्रकाशन
नई सड़क, दिल्ली-६

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन हैं

तृतीय संस्करण : १९८२
मूल्य : ८.००

मुद्रक :
कम्पल प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली-११०००६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दो शब्द

प्रस्तुत कृति साकेत के नवम सर्ग का आलोचनात्मक एवं व्याख्यात्मक अध्ययन है। यह कृति दो भागों में विभाजित है—आलोचना भाग और व्याख्या भाग। आलोचना भाग में यद्यपि सम्पूर्ण साकेत का पर्यालोचन है, पर मुख्यता नवम सर्ग की ही है। व्याख्या भाग विशेष टिप्पणियों, अन्य आलोचकों के मन्तव्यों, तुलनात्मक संदर्भों तथा अलंकार-निर्देशों के द्वारा अपनी सम्पूर्णता से मंडित है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यह कृति अपने उद्देश्य में निश्चय ही सफल होगी।

किं बहुना!

—देशराजसिंह भाटी

तृतीय संस्करण

साकेत के नवम सर्ग के द्वितीय संस्करण का हाथों-हाथ बिक जाना ही इसकी उपयोगिता का प्रमाण है। अतः हम सोत्साह इस पुस्तक का तृतीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि यह संस्करण अपेक्षाकृत अधिक उपादेय सिद्ध होगा।

—प्रकाशक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

विषय-सूची

आलोचना-भाग

१. कवि-परिचय १

२. सृजन-प्रेरणा ४

३. नामकरण ७

४. कथावस्तु १०

५. चरित्र-चित्रण २१

६. महाकाव्यत्व ३२

७. अंगीरस ३६

८. कलापक्ष ५०

९. कथासार (नवम सर्ग) ७२

१०. नवम सर्ग का औचित्य ८०

व्याख्या-भाग (नवम सर्ग) ... ... ८४ से २९६

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

: १ :

कवि-परिचय

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का जन्म श्रावण शुक्ला द्वितीया सोमवार को संवत् १९४३ वि० में चिरगाँव जिला झाँसी में हुआ था। इनके पिता सेठ रामचरण जी को कविता से बड़ा प्रेम था और काव्य-अध्ययन के अतिरिक्त वे स्वयं भी थोड़ी-वहुत काव्य-रचना कर लिया करते थे। गुप्त जी की अधिकांश शिक्षा घर पर ही हुई। हिन्दी, संस्कृत और बंगला-साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया। इनके अतिरिक्त अंग्रेजी, गुजराती और मराठी भाषाओं का भी इन्हें पर्याप्त ज्ञान था।

गुप्त जी को काव्य की प्रेरणा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से प्राप्त हुई। उनकी इन पर अपार कृपा थी और यह उसी गुरु-कृपा का परिणाम है कि गुप्त जी ने अनेक बहुमूल्य कृति-रत्नों से हिन्दी-साहित्य के भंडार को गौरवान्वित किया। द्विवेदी जी की कृपा को इन्होंने इस प्रकार कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया है—

'करते तुलसीदास भी, कैसे मानस-नाद।
महावीर का यदि उन्हें मिलता नहीं प्रसाद॥'

अर्थात् यदि गोस्वामी तुलसीदास पर हनुमान जी की कृपा न होती तो वे निश्चय ही रामचरितमानस की रचना नहीं कर पाते। इसी प्रकार यदि मुझे आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का आशीर्वाद न मिलता तो मैं भी काव्य के माध्यम से अपनी हार्दिक अनुभूतियों को व्यक्त न कर पाता।

गुप्त जी धार्मिक प्रवृत्ति के मनुष्य थे। इनकी यह प्रवृत्ति हिमालय की भाँति उत्तुंग, गंगा की भाँति उदार और ध्रुव की भाँति अटल थी। तभी तो आज के भौतिक वैज्ञानिक युग में भी ये अपनी धार्मिक भावनाओं को, आस्थाओं को और निष्ठाओं को पूर्णतया सँजोये रहे। राम इनके आराध्य थे, जिनकी भक्ति का वर्णन इन्होंने इस प्रकार किया है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'राम, तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।'

गुप्त जी भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि और आख्याता माने जाते हैं इनके जीवन-काल में हिन्दी साहित्य ने कितनी ही नई करवटें लीं, कितने साहित्यिक वाद आए और चले गये, कितनी ही काव्य-रीतियाँ आविर्भूत हु और विलीन हुईं, पर ये अपने ही चुने हुए एक ही पथ पर अचल रहे, उस तनिक भी टस से मस न हुए। यह इनके महान् व्यक्तित्व की दृढ़ता परिणाम था।

भारतीय संस्कृति में नारी का विशेष महत्त्वपूर्ण एवं आदरणीय स्थान र है। भारतीय संस्कृति के नियामक महर्षि मनु ने बताया है कि जहाँ नारि की पूजा होती है, वहीं देवताओं का अधिवास होता है—

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।'

इसमें संदेह नहीं कि हिन्दी-साहित्य के सभी कवियों की अपेक्षा गुप्त जी मन में नारी के प्रति आदर का भाव सर्वाधिक था। यही कारण है कि इन्हों उपेक्षिता नारियों को अपने काव्यों में स्थान देकर उन्हें यथोचित आदर ए पद दिया है। ऊर्मिला, यशोधरा, विष्णुप्रिया आदि इन नारियों में प्रमुख हैं

१२ दिसम्बर सन् १९६४ ई० को हिन्दी-साहित्य का यह गौरवपूर्ण नक्ष सदा के लिए अस्त हो गया।

रचनाएँ

गुप्त जी की रचनाओं की संख्या काफी है। विषय की दृष्टि से इनव निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

१. राष्ट्रीय एवं जातीय रचनाएँ—भारत-भारती, स्वदेश-संगीत, वैतालि किसान, अजित हिंदू, पत्रावली, राजा-प्रजा।

२. भावात्मक गीति रचनाएँ—झंकार, मंगलघट।

३. ऐतिहासिक रचनाएँ—इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाली रचनाओं क काल की दृष्टि से इन उपवर्गों में रक्खा जा सकता है—

(क) वैदिक काल—नहुष, शकुन्तला, तिलोत्तमा, चंद्रहास।

(ख) रामायण काल—पंचवटी, साकेत।

(ग) महाभारत काल—जयद्रथ-वध, त्रिपथगा, वक-संहार, वन-वैभ सैरंध्री, द्वापर, जयभारत।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

(घ) **बौद्ध काल**—यशोधरा, कुणाल, अनघ ।

(ङ) **मध्यकाल**—सिद्धराज, विष्णुप्रिया ।

(च) **इस्लाम का उदयकाल**—काबा और कर्बला, गुरुकुल, रंग में भंग, विकट भट, अर्जन और विसर्जन ।

इन रचनाओं में 'साकेत' कवि की प्रमुखतम रचना है । इसमें राम-कथा वर्णित है । जिस प्रकार काव्यों में नाटक को, नाटकों में शकुंतला नाटक को और शकुंतला नाटक में भी इसके चतुर्थ अंक को सर्वाधिक रम्य माना जाता है, इसी प्रकार हिन्दी-साहित्य के आधुनिक महाकाव्यों में साकेत को और साकेत में इसके नवम सर्ग को उत्कृष्ट माना जा सकता है । वस्तुतः साकेत के प्रणयन का आधार ही वह भाव-भूमि है जो इसके नवम सर्ग में अभिव्यक्त की गई है ।

—:०:—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

: २ :

सृजन-प्रेरणा

कवि मूलतः राम-भक्त हैं और राम के प्रति इनकी अपार श्रद्धा एवं नि मी है। पर यह भक्ति-भावना साकेत की सृजन-प्रेरणा नहीं है। इसकी सृ प्रेरणा है ऊर्मिला का अपार मार्मिक विषाद जो इसके नवम सर्ग में वर्णित प्राचीन-साहित्य का अध्ययन करते-करते कवीन्द्र रवीन्द्र को यह अनुभव हु कि साहित्य में अनेक ऐसी नारियाँ उपेक्षित हैं जिनके महान् चरित्र उज्ज्वलता से साहित्य का भवन दिव्य-दीप्ति से जगमगा सकता है। फ उन्होंने 'काव्य की उपेक्षिता' नामक एक हृदयस्पर्शी निबंध की रचना जिसमें ऊर्मिला का विशेष रूप से उल्लेख किया—

'हम कह सकते हैं कि संस्कृत-साहित्य में काव्य-यज्ञशाला की प्रांत में जो कितनी ही स्त्रियाँ अनादृत होकर खड़ी हैं उनमें प्रधान स्थान ऊर्मिला है।...हाय, अव्यक्त, वेदना देवी ऊर्मिला, एक बार तुम्हारा उदय प्रातःकाल तारा की भाँति महाकाव्य के सुमेर शिखर पर हुआ था। इसके बाद अ लोक में तुम्हारे दर्शन नहीं हुए। कहाँ तुम्हारा उदयाचल है और कहाँ अस्ताचल यह प्रश्न करना भी सब लोग भूल गये।'

इसके पश्चात् हिन्दी में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का लेख 'कवियों ऊर्मिला-विषयक उदासीनता' प्रकाशित हुआ। इस लेख में द्विवेदी जी ने हिन्द कवियों की इस बात के लिए पूर्ण भर्त्सना की कि वे ऊर्मिला के विषय उदासीन बने रहे। इन लेखों से, विशेष रूप से द्विवेदी जी के लेख से प्रेर पाकर गुप्त जी ने ऊर्मिला का पूर्ण अंकन करने के लिए 'साकेत' महाका की रचना प्रारम्भ की। इस महाकाव्य को पूर्ण होने में पन्द्रह-सोलह वर्ष ल काल की इस सुदीर्घता को देखते हुए यह अनुमान सहज ही लगाया जा सक है कि कवि ने इस महाकाव्य पर कितना परिश्रम किया। वस्तुतः गुप्त जी महाकाव्य को ही अपने साहित्यिक जीवन का अन्तिम छोर बनाना चाहते थे इस विषय में इन्होंने स्वयं लिखा है—

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

'मैं चाहता था कि मेरे साहित्यिक जीवन के साथ 'साकेत' की समाप्ति ।'

परन्तु इसके पश्चात् भी कवि की लेखनी से यशोधरा, द्वापर, सिद्धराज, हुष, विष्णुप्रिया आदि काव्य कृतियों का जन्म हुआ। यह पहले कहा जा का है कि 'साकेत' के प्रणयन की मूल प्रेरणा ऊर्मिला का विषाद है, सलिए नवम सर्ग में इस विषाद की चहुंमुखी अभिव्यक्ति की गई है। इस पर भी, स्वयं कवि को ही इससे असन्तोष है, क्योंकि उसके लिए नवम सर्ग और समें वर्णित भावनाएँ दोनों अधूरे हैं—

'यों तो 'साकेत' दो वर्ष पूर्व ही पूरा हो चुका था, परन्तु नवम सर्ग में तब भी कुछ शेष रह गया था और मेरी भावना के अनुसार आज भी वह अधूरा ।'

कवि की करुण भावना की असीम सत्ता इन पंक्तियों से सहज ही मुखरित हो रही है। करुण रस की महानता को असदिग्ध शब्दों में स्वीकार करने वाले कवि में अपार करुण भावना का होना स्वाभाविक ही है—

'उस रुदंती विरहिणी के रुदन-रस के लेप से,
और पाकर ताप उसके प्रिय-विरह-विक्षेप से।
वर्ण-वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के,
क्यों न बनते कविजनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के ॥

इस विवेचन से स्पष्ट है कि कवि ने ऊर्मिला के व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने के लिए 'साकेत' की रचना की। यह निष्कर्ष 'साकेत' की समीक्षा और अनेक ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर सही है। पर यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या 'साकेत' की रचना का केवल यही मूल कारण है ? इस विषय पर हम अपना मंतव्य प्रस्तुत करने से पूर्व स्वयं कवि के एतद्विषयक विचारों को प्रस्तुत करना समीचीन मानते हैं।

'सरस्वती-संवाद' के महाकाव्य-विशेषांक के प्रकाशन के अवसर पर इस पत्रिका के सम्पादक डॉ० शम्भुनाथ पाण्डे ने गुप्त जी से अनुरोध किया था कि वे यह बतायें कि साकेत के प्रेरणा-स्रोत क्या हैं ? इसके उत्तर में गुप्त जी ने लिखा था—

'अपने विषय में स्वयं क्या कहूँ ? इष्टदेव के विषय में कुछ लिखना ही था।' 'साकेत' लिख गया।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

इससे यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि कवियों की ऊर्मिला प्रति उदासीनता इस काव्य-रचना की मूल प्रेरणा नहीं है। इसकी मूल प्रेर है गुप्त जी के आस्तिक संस्कार जो उन्हें पारिवारिक विरासत में मिले, अथ राम के प्रति आराध्यदेव की प्रबल भावना। 'साकेत' से पूर्व गुप्त जी राम-विषयक अनेक कृतियों की रचना की है जो इसी प्रबल भावना की परिण है। यही भावना आचार्य द्विवेदी जी के लेख से उद्दीप्त हुई और गुप्त साकेत-रचना की ओर प्रवृत्त हुए। यद्यपि ऊर्मिला साकेत की प्रमुख पात्र तथापि कहीं भी कवि अपने आराध्यदेव को नहीं भूला है, उसने कोई भी ब ऐसी नहीं कही है जो राम के पद को कुंठित करती हो। राम के वृत्त स्वयं काव्य मानने वाले कवि से यह हो भी नहीं सकता था। ये निरंतर र से भयभीत रहे हैं और अपने इस भय को इन्होंने गाँधी जी को लिखे गये प में पर्याप्त विस्तार से व्यक्त किया है। इसका तात्पर्य यह है कि 'साकेत' मूल स्रोत कवि की राम के प्रति आस्तिक भावना ही है, राम-कथा कहने प्रबल इच्छा ही है। डॉ० शम्भुनाथ पाण्डेय के शब्दों में—

'साकेत पूजा का एक फूल है जो आस्तिक कवि ने अपने इष्टदेव चरणों पर चढ़ाया है और यह पूजा की भावना ही साकेत की मू प्रेरणा है।'

कहने का तात्पर्य यह है कि साकेत की मूल प्रेरणा तो कवि का राम प्रति आस्था-भाव ही है, और ऊर्मिला की उपेक्षा इस भाव को उद्दीप्त कर का एक प्रबल कारण है।

—:o:—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

: ३ :

नामकरण

प्रत्येक काव्य-कृति का नाम साभिप्राय और सार्थक होता है। यही कारण है कि किसी भी काव्य-कृति की आलोचना करते समय, जिस प्रकार उसके अन्य अंगों पर विचार किया जाता है, उसी प्रकार नामकरण पर भी किया जाता है। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य के स्वरूप की विवेचना करते हुए इसके नामकरण के विषय में लिखा है—

'कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।
नामास्य सर्गोपादेय कथया सर्ग नाम तु॥'

अर्थात् महाकाव्य का नामकरण कवि के नाम पर, अथवा कथावस्तु के आधार पर, अथवा नायक या अन्य किसी प्रमुख पात्र के नाम के आधार पर होना चाहिये, किन्तु प्रत्येक सर्ग का नाम उसके वर्ण्य-विषय के आधार पर ही हो।

आधुनिक आचार्य काव्य-कृति के या महाकाव्य के नामकरण के जो आधार मानते हैं, वे ये हैं—

१. प्रमुख पात्र के नाम के आधार पर,
२. प्रमुख घटना के आधार पर,
३. प्रमुख मनोवृत्ति के आधार पर,
४. प्रमुख समस्या पर, और
५. स्थान विशेष के आधार पर।

यदि इन आधारों की आचार्य विश्वनाथ द्वारा बताये गये आधारों के साथ तुलना की जाये तो इनमें कोई मूलभूत अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता। आधुनिक आचार्यों के घटना, मनोवृत्ति, समस्या और स्थान-विशेष आधार सहज ही आचार्य विश्वनाथ के 'कथावस्तु के आधार' में अन्तर्भूत हो जाते हैं, क्योंकि कथावस्तु में कोई-न-कोई प्रमुख घटना, मनोवृत्ति, समस्या और स्थान-विशेष होता है।

'साकेत' का नामकरण स्थान-विशेष के आधार पर हुआ है। साकेत का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

के प्रभु राम का लीला-धाम है जहाँ उन्होंने संसार को पथ दिखाने के लि और असुरों का संहार करके संसार में सुख-शान्ति स्थापित करने के लि अवतार लिया है। अपने प्रभु के इस लीला-धाम के प्रति कवि की इतन आसक्ति है कि वह एक क्षण के लिए भी इसे नहीं छोड़ता, इसलिए राम कथा की सभी घटनाओं का केन्द्र साकेत को ही बना देता है। राम के अभि षेक की चर्चा, कैकेयी का रोष, गृह-त्याग आदि घटनाएँ साकेत में ही घटि होती हैं। जिन घटनाओं का स्थल साकेत नहीं है, वे भी सूच्य रूप से साके में ही वर्णित की गई हैं। यथा—सूर्यवंशी राजाओं की कीर्ति की गाथ धनुष-यज्ञ आदि साकेतवासी ऊर्मिला के मुख से कहला दी गई हैं। इस प्रका बाहर जाने के जो भी अवसर आये हैं उन्हें कवि ने अपनी काव्य-कुशलता साकेत में ही समेट लिया है। चित्रकूट-प्रसंग अवश्य ऐसा है जो सूच्य रूप वर्णित नहीं किया जा सका। उसके लिए कवि ने यह युक्ति निकाली है कि समूची अयोध्या को ले जाकर ही चित्रकूट में बसा दिया है और वहाँ साकेत बना दिया है, क्योंकि जहाँ साकेतवासी हैं, साकेत भी तो वहीं है—

'चल चपल कलम निज चित्रकूट चल देखें,
प्रभु चरण-चिह्न पर सकल भाल-लिपि लेखें।
सम्प्रति साकेत समाज वहीं है सारा,
सर्वत्र हमारे संग स्वदेश हमारा।'

इस प्रकार कवि ने चित्रकूट को ही साकेत बना दिया है। इसके अतिरिक्त साकेत की बाहर की कुछ घटनाओं का वर्णन शत्रुघ्न, हनुमान, वशिष्ठ आदि के द्वारा करवा दिया गया है। अतः कहा जा सकता है कि राम-कथा की सभी घटनाएँ साकेत से बाहर नहीं निकल पाई हैं और इस दृष्टि से यह नाम अत्यंत सार्थक एवं उपयुक्त है।

प्रमुख पात्र की दृष्टि से भी इस नाम की सार्थकता एवं औचित्य सिद्ध होता है। ऊर्मिला इस महाकाव्य की प्रमुखतम पात्र है जो निरंतर ही साकेत में रही है। एक बार वह साकेत से बाहर निकली अवश्य है, पर सभी साकेत-वासियों के साथ, जहाँ वे चित्रकूट जाकर वहाँ भी साकेत बना देते हैं।

स्वयं कवि ने इस बात का संकत दे दिया है कि जो कथा साकेत से प्रारम्भ होती है, उसका पर्यवसान भी साकेत में होता है। प्रथम सर्ग के आरंभ में ही कवि साकेत में प्रवेश करता है—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

'बैठ, आ, मानस-मराल सनाथ हो,
भारवाही कंठ-केकी साथ हो।
चल अयोध्या के लिए, सज साज तू,
माँ, मुझे कृतकृत्य करदे आज तू।'

इसी सर्ग में लक्ष्मण और ऊर्मिला का मिलन होता है। सारी रात उनकी हास-परिहास में बीतती है और अन्त में राम भी अयोध्या ही आते हैं और यहीं पर पुनः लक्ष्मण तथा ऊर्मिला का मिलन होता है—

'लेकर मानो विश्व-विरह उस अन्तःपुर में,
समा रहे थे एक दूसरे के वे उर में।'

स्थान-ऐक्य ही 'साकेत' के नामकरण की सार्थकता का प्रमुख आधार है। स्वयं गुप्त जी ने इसकी ओर इंगित करते हुए लिखा है—

'...मैंने अपनी रचना का नाम साकेत रक्खा है। उसमें मुझे सबके दर्शन की सुविधा मिल गई है।'

अतः कहा जा सकता है कि 'साकेत' के नामकरण का आधार स्थान-विशेष, कवि के आराध्य देव की लीला-भूमि है जो लगभग नामकरण की सभी कसौटियों से उपयुक्त है।

—:o:—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

: ४ :

कथावस्तु

महाकाव्य प्रबंधात्मक काव्य होता है। इसकी एक मूल कथा होती है जि आधिकारिक कथा कहते हैं। इस कथा को गतिशील बनाने के लिए अन्य अने कथाएँ होती हैं। जिन्हें प्रासंगिक कथाएँ कहा जाता है। 'साकेत' की मूल कथ है रामकथा, जिसके माध्यम से उपेक्षिता ऊर्मिला के विरह-विदग्ध, किंतु उदा चरित्र को प्रकाशित किया गया है। प्राकरणिक कथाएं प्राय: वे ही हैं जं परम्परा से रामकथा से सम्बद्ध होती आई हैं ।

सर्ग-विभाजन

'साकेत' में पूरी रामायण है जिसे बारह सर्गों में विभाजित किया गय है। संक्षेप में, इन सर्गों की कथा इस प्रकार है—

प्रथम सर्ग—इस सर्ग में राम के अवतार लेने के कारण अयोध्या नग के वैभव का वर्णन और लक्ष्मण-ऊर्मिला के दाम्पत्य जीवन का सुखद एवं हा परिहासपूर्ण चित्रण है।

द्वितीय सर्ग—इस सर्ग में मंथरा-कैकेयी-संवाद, राजा दशरथ से कैके द्वारा वरदान माँगना, राजा दशरथ का पुत्र-बिछोह से अत्यंत अधीर हो वर्णित है।

तृतीय सर्ग—इस सग म राम को कैकेयी और राजा दशरथ द्वारा व गमन की सूचना मिलती है। लक्ष्मण को बहुत क्रोध आता है, राम उ शांत कर देते हैं। लक्ष्मण भी राम के साथ चौदह वर्षों तक वन में रहने संकल्प करते हैं।

चतुर्थ सर्ग—इस सर्ग में राम और लक्ष्मण कौशल्या माँ को अपने पि महाराजा दशरथ का आदेश सुनाते हैं। कौशल्या विचलित हो उठती हैं सुमित्रा के समझाने पर वे धैर्य धारण करती हैं। सुमंत्र राम को वन-गमन रोकने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु राम नहीं रुकते। सीता राम के साथ व जाने को तैयार हो जाती है, पर ऊर्मिला किसी प्रकार अपने मन को समझा ले है। अन्त में, वल्कल धारण करके राम, सीता और लक्ष्मण चौदह वर्षों लिए वन जाने को उद्यत हो जाते हैं।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

पंचम सर्ग—इस सर्ग में वन जाने से पूर्व राम का राजगुरु वशिष्ठ के दर्शन करना, राजरथ पर बैठकर अयोध्या की सीमा पार करना, निषादराज द्वारा स्वागत पाना, भारद्वाज ऋषि के आश्रम में जाना, महर्षि वाल्मीकि के दर्शनार्थ चित्रकूट जाना और वहीं कुटी बनाकर रहना आदि घटनाएं वर्णित हैं।

षष्ठ सर्ग—इस सर्ग में राम, लक्ष्मण और सीता के वन चले जाने के पश्चात् प्रासाद के अन्तःपुरवासियों का—दशरथ, कौशल्या, सुमित्रा, ऊर्मिला आदि का—शोक और सुमंत्र के लौट आने पर निराश होकर राजा दशरथ का प्राण-त्याग, भरत को राजा की मृत्यु की सूचना भिजवाना आदि कथाएँ वर्णित हैं।

सप्तम सर्ग—इस सर्ग में भरत और शत्रुघ्न का अयोध्या लौटना, अपनी माँ के कुकृत्य पर ग्लानि प्रकट करना, कौशल्या का भरत को समझाना और राजा दशरथ की अन्त्येष्टि-क्रिया का वर्णन है।

अष्टम सर्ग—इस सर्ग में राम के चित्रकूट का जीवन, भरत के साथ अयोध्यावासियों का राम को मनाने आना, सभा का आयोजन होना, कैकेयी का प्रायश्चित्त करना, लक्ष्मण-ऊर्मिला मिलन और अन्त में भरत का राम की पादुका लेकर लौटना आदि घटनाओं का वर्णन है।

नवम सर्ग—इस सर्ग में ऊर्मिला के विरह का वर्णन है।

दशम सर्ग—इस सर्ग में राम आदि चारों भाइयों तथा सीता आदि चारों बहिनों क बचपन, धनुष-यज्ञ, जनक-वाटिका में राम-सीता और लक्ष्मण-ऊर्मिला का मिलन, राम का धनुष तोड़ना, परशुराम के दम्भ का नाश और विरह-विदग्धा ऊर्मिला का विलाप वर्णित है।

एकादश सर्ग—इस सर्ग में भरत के त्यागमय जीवन का, शत्रुघ्न द्वारा बताई गई घटनाओं का—राम का चित्रकूट से प्रस्थान, दण्डकवन में विराध-वध, अगस्त्य ऋषि से दिव्यास्त्र की प्राप्ति, शूर्पणखा के कान-नाक काटना, खर और दूषण आदि राक्षसों के वध का—और हनुमान द्वारा बताई गई—रावण के समक्ष शूर्पणखा का रुदन, सीता-हरण, जटायु-मरण, कवंधासुर-वध, शबरी का आतिथ्य-ग्रहण, सुग्रीव का मिलन, बालि-वध, लंका दहन, विभीषण का राम की शरण में आना, राम-रावण-युद्ध, कुम्भकर्ण-वध और लक्ष्मण को शक्ति लगना आदि—घटनाओं का वर्णन है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

द्वादश सर्ग—राम और रावण के युद्ध का तथा लक्ष्मण के मूर्च्छित होने का समाचार सुनकर अयोध्यावासियों का सेना लेकर राम की सहायता के लिए चलना, गुरु वशिष्ठ का अपने योगबल से राम और रावण की वास्तविक दशा दिखाकर शांत करना, लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर होना, मेघनाथ-वध, रावण-वध, राम का अयोध्या लौटना और ऊर्मिला का पुनर्मिलन आदि घटनाएं वर्णित हैं।

अब देखना यह है कि कवि ने इस विशाल कथानक को किस प्रकार सँजोया है।

किसी भी महाकाव्य या प्रबंधकाव्य की प्रबंध-कुशलता की समीक्षा करने के लिए उसकी कथावस्तु को तीन भागों में विभाजित किया जाता है—आरंभ, मध्य और अंत। इन्हीं आधारों पर 'साकेत' के वस्तु-विन्यास का परीक्षण उचित है।

आरम्भ

साकेत का आरम्भ-भाग प्रथम सर्ग से लेकर आठवें सर्ग तक माना जा सकता है, क्योंकि अयोध्याकांड की सभी घटनाएं एक से लेकर आठवें सर्ग तक वर्णित हैं। इस कथावस्तु का आरम्भ लक्ष्मण और ऊर्मिला के मिलन तथा हास-परिहास से होता है। इसी प्रसंग में राम के राज्याभिषेक की तयारियां भी सूचित कर दी जाती हैं। कैकेयी और मंथरा के सम्वाद से लेकर चित्रकूट की सभा तक की सभी घटनाएँ प्रत्यक्ष रूप से वर्णित हैं। कथा का यह प्रारम्भिक भाग व्यवस्थित अवश्य है, पर इसमें कथावस्तु की अपेक्षित गति का अभाव है। उदाहरण के लिए प्रथम सर्ग की कथावस्तु को लिया जा सकता है। इस सर्ग की कथावस्तु के मुख्यतया तीन पक्ष हैं—अयोध्या के सौंदर्य का वर्णन, अयोध्यावासियों के नागरिक जीवन की सम्पन्नता और लक्ष्मण तथा ऊर्मिला का हास-परिहास। इनमें अयोध्या के सौंदर्य-वर्णन में तो गति के लिए अवकाश ही नहीं है। कवि एक-से-एक उपमा और उत्प्रेक्षा ढूंढ़कर अलंकृत-शैली में उसका वर्णन करता चला गया है। जो कवि रामायण की सभी घटनाओं को साकेत में ही केन्द्रीभूत करने के लिए कटिबद्ध हो, वह यदि साकेत की सुषमा में उलझकर कथा की गति को ही भूल जाये तो यह अस्वाभाविक भी नहीं है। अयोध्यावासियों के नागरिक-जीवन की सम्पन्नता के माध्यम से कवि रघुवंश की और उसके माध्यम से अपने प्रभु राम की महत्ता का प्रतिपादन करना चाहता है। वाल्मीकि या तुलसीदास ने जो विशेषताएँ राम-

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant-

राज्य की बताई हैं वे ही प्रायः कवि ने इस प्रसंग में दोहरा दी हैं। राम राज्य की महत्ता का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है—

'बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना॥

इन्हीं भावों को गुप्तजी ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

'एक तरु के विविध सुमनों-से खिले,
पौरजन रहते परस्पर हैं मिले।
स्वस्थ शिक्षित शिष्ट उद्योगी सभी,
बाह्य भोगी आंतरिक योगी सभी।
व्याधि की बाधा नहीं तन के लिए,
आधि की शंका नहीं मन के लिए।
चोर की चिंता नहीं धन के लिए,
सर्व सुख है प्राप्त जीवन के लिए।'

लक्ष्मण तथा ऊर्मिला के हास-परिहास में भी अपेक्षित स्वाभाविकता एवं कथावस्तु की गतिशीलता का अभाव है, पर यह इतना नहीं जितना उपर्युक्त दो पक्षों में है। कहीं-कहीं यह हास-परिहास अत्यंत स्वाभाविक है। यथा—

'पार्श्व से सौमित्र आ पहुँचे तभी,
और बोले 'लो' बता दूँ मैं अभी।
नाक का मोती अधर की कांति से,
बीज दाड़िम का समझकर भ्रांति से।
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है,
सोचता है अन्य शुक यह कौन है?,

× × ×

'ऊर्मिला बोली—'अजी, तुम जग गये?
स्वप्न-निधि से नयन कब से लग गये?'
'मोहिनी ने मंत्र पढ़ जब से छुआ,
जागरण रुचिकर तुम्हें जब से हुआ।'

पर सर्वत्र यह स्वाभाविकता नहीं बनी रह पाई है। उदाहरणार्थ, दो स्थल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

प्रस्तुत हैं : एक तो वह जहाँ लक्ष्मण और ऊर्मिला नारी जीवन का विश्लेष करने लगते हैं—

'जन्मभूमि-ममत्व कृपया छोड़कर,
चारु-चिंतामणि-कला से होड़कर,
कल्पवल्ली-सी तुम्हीं चलती हुई,
बाँटती हो दिव्य-फल फलती हुई।'
'खोजती हैं किन्तु आश्रय मात्र हम,
चाहती हैं एक तुम-सा पात्र हम;
आंतरिक सुख-दुख हम जिसमें धरें,
और निज भव-भार यों हलका करें।'

स्वयं कवि ने भी इस प्रसंग की अनावश्यकता, अनौचित्य एवं अस्वाभाविक का अनुभव किया है। तभी तो इन पंक्तियों के तुरन्त बाद ही वह कीर बीच में डाल देता है, जिसके द्वारा वह वातावरण को पुनः हास-परिहासपू बना देता है। और दूसरा वह जब लक्ष्मण कला के स्वरूप का कला-विवेच आचार्य की भाँति विवेचन करने लगते हैं—

'यह तुम्हारी भावना की स्फूर्ति है,
जो अपूर्ण कला उसी की पूर्ति है।
हो रहा है जो जहाँ, सो हो रहा,
यदि वही हमने कहा तो क्या कहा ?
किन्तु होना चाहिए कब क्या कहाँ,
व्यक्त करती है कला ही यह यहाँ।
मानते हैं जो कला के अर्थ ही,
स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही।
वह तुम्हारे और तुम उसके लिए,
चाहिए पारस्परिकता ही प्रिये।'

इस प्रकार इस सर्ग में कथावस्तु में वह गति नहीं, जो होनी चाहिए लगता है कि कवि किसी प्रसंग को ढूंढ़ निकालता है और फिर कथावस्तु चिंता किये बिना जो कुछ उसे कहना है कहता चला जाता है।

मध्य

नवम और दशम सर्ग इस महाकाव्य की कथावस्तु के मध्य भाग हैं।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

तीनों सर्गों में विशेषतया ऊर्मिला के विरह का वर्णन है। जहाँ तक नवम सर्ग की कथावस्तु का सम्बन्ध है, इसमें स्थूल घटनाओं का एकदम अभाव है। केवल कुछेक स्थूल घटनाओं का सूच्य रूप में उल्लेख है। ये घटनाएँ भी कथा-वस्तु की गति को अग्रसर नहीं कर पातीं, वरन् गत घटनाओं की स्मृति कराकर ऊर्मिला की विरह-भावना की मार्मिकता में ही वृद्धि करती हैं। यथा—

'मिली मैं स्वामी से, पर कह सकी क्या सँभल के ?
बहे आँसू होके सखि, सब उपालम्भ गल के।
उन्हें हो आई जो निरख, मुझको नीरव दया,
उसी की पीड़ा का अनुभव मुझे हा ! रह गया।'

इन पंक्तियों में ऊर्मिला अपनी सखी से उस घटना का वर्णन कर रही है जब वह चित्रकूट में अपने प्रियतम लक्ष्मण से मिली थी। उसे दुख है कि वह तब न तो स्वयं ही कोई बात कह पाई थी और न अपने प्रियतम की ही कोई बात सुन पाई थी।

इसी प्रकार निम्नलिखित छंदों में संयोगावस्था की घटनाओं की स्मृतियाँ हैं जो विरह-व्यथा को ही तीव्रतर बनाती हैं, कथावस्तु की गति को कोई गति नहीं देतीं—

'नंगी पीठ बैठकर घोड़े को उड़ाऊँ कहो,
किन्तु डरता हूँ मैं तुम्हारे इस झूले से।
रोक सकता हूँ उरुओं के बल से ही उसे,
टूटे भी लगाम यदि मेरी कहीं भूले से।
किन्तु क्या करूँगा यहाँ ?' उत्तर में मैंने हँस,
और भी बढ़ाये पैंग दोनों ओर ऊले-से।
'हैं-हैं' कह लिपट गये थे यहीं प्राणेश्वर,
बाहर से संकुचित, भीतर से फूले-से।'

× × ×

'मैं निज अलिंद में खड़ी थी सखि, एक रात,
रिमझिम बूँदें पड़ती थीं घटा छाई थी।
गमक रहा था केतकी का गंध चारों ओर,
झिल्ली-झनकार यही मेरे मन भाई थी।
करने लगी मैं अनुकरण स्व-नूपुरों से,
चंचला थी चमकी, घनाली घहराई थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

चौंक देखा मैंने, चुप कोने में खड़े थे प्रिय,
माई ! मुख-लज्जा उसी छाती में छिपाई थी।'

× × ×

'लाईं सखि, मालिनें थीं डाली उस बार जब,
जम्बूफल जीजी ने लिये थे, तुझे याद है ?
मैंने थे रसाल लिए, देवर खड़े थे वहीं,
हँसकर बोल उठे—'निज निज स्वाद है।'
मैंने कहा—'रसिक, तुम्हारी रुचि काहे पर ?'
बोले—'देवि ! दोनों ओर मेरा रस-वाद है।
दोनों का प्रसाद-भागी हूँ मैं, हाय आली ! आज,
विधि के प्रसाद से विनोद भी विषाद है।'

× × ×

'आये एक बार प्रिय बोले—'एक बात कहूँ,
विषय परन्तु गोपनीय सुनो कान में।'
मैंने कहा—'कौन यहाँ ?' बोले—'प्रिये चित्र तो हैं,
सुनते हैं वे भी राजनीति के विधान में।'
लाल किये कर्णमूल होठों से उन्होंने कहा—
'क्या कहूँ सगद्गद हूँ, मैं भी मद-दान में।
कहते नहीं हैं, करते हैं कृती !' सजनी मैं,
खीझ के भी रीझ उठी उस मुसकान में।'

इस प्रकार के और भी अनेक छंद इस सर्ग में मिलते हैं जो सूच्य रूप वि
गत घटनाओं का बोध कराकर ऊर्मिला के विरह की मार्मिकता में तो वृद्
करते हैं, पर कथानक की गति को गति नहीं देते।

इस सर्ग में छंद भी परस्पर आबद्ध नहीं हैं, वरन् मुक्त हैं और मुक्तक-का
के छंदों की भाँति स्वतः परिपूर्ण हैं। उनके प्रसंग-विधान को समझने के लिए
पूर्वापर सम्बन्धों के ज्ञान की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। यथा—

१. 'अब आतप-सेवन में कौन तपस्या, मुझे न यों छल तू।
तप पानी में पैठा, सखि, चाहे तो वहीं चल तू॥'
२. 'नाइन, रहने दे तू, तेल नहीं चाहिए मुझे तेरा।
तनु चाहे रूखा हो, मन तो सुस्नेह-पूर्ण है मेरा॥'

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

प्रस्तुत सर्ग में ये दोनों छंद साथ-साथ हैं, पर इनमें कोई पूर्वापर सम्बंध हीं है।

इसी प्रकार इस सर्ग के गीत भी मुक्तक हैं। कुछ गीत तो ऐसे हैं जिनका तिपाद्य विषय से भी कोई सम्बन्ध नहीं है। उदाहरण के लिए 'हम राज्य ए मरते हैं' गीत लिया जा सकता हैं। इस गीत में किसानों के जीवन की हत्ता एवं गरिमा का वर्णन है जिसका ऊर्मिला की विरह-भावना से कोई म्बन्ध नहीं है।

कहने का भाव यह है कि नवम सर्ग में स्थूल कथा का अभाव है। इसके न्द विविध एवं स्वतःपूर्ण भावों का चित्रण करने वाले हैं जो ऊर्मिला के विविध विरह-भावों के सूचक हैं। इस प्रकार भावात्मक दृष्टि से इनमें परस्पर म्बन्ध स्थापित किया जा सकता है और ऊर्मिला की विरह वेदना की निरं-रता देखी जा सकती है। अतः कहा जा सकता है कि इस सर्ग में यद्यपि थूल वस्तु-विन्यास का अभाव है, पर भावात्मक वस्तु-विन्यास का नैरंतर्य बना आ है। अतः वस्तु-विन्यास की दृष्टि से इस सर्ग को प्रबन्धात्मक मुक्तक हना अनुचित न होगा।

दशम सर्ग का वस्तु-विन्यास भी गतिशील की अपेक्षा कलात्मक ही अधिक । ऊर्मिला सरयू को लक्ष्य करके अपना विरह-निवेदन करती है, जिसके अन्त-त राम आदि चारों भाइयों का, सीता आदि चारों बहिनों का बचपन-वर्णन, ीता स्वयंवर आदि कथायें ऊर्मिला की स्मृति के माध्यम से संयोजित की गई । स्मरण संचारी के अन्तर्गत समस्त बालकांड की कथा को समाहित करके वि इस सर्ग की कथावस्तु को अत्यधिक मार्मिक बनाने में तो सफल हुआ है, कृन्तु इसमें भी अपेक्षित गतिशीलता और तज्जन्य प्रभाव का अभाव है।

न्त

साकेत की कथावस्तु के अन्त या पर्यवसान भाग में एकादश और द्वादश र्ग आते हैं। एकादश सर्ग में साकेत के राज-परिवार की विषण्णता की जो ाँकी प्रस्तुत की गई है, वह अत्यंत प्रभावशालिनी है। शत्रुघ्न और हनुमान ारा जिन घटनाओं की सूचना दी गई है, वे कथा के रूप का ही संवर्द्धन रती हैं। द्वादश सर्ग में साकेतवासियों की रणसज्जा, मेघनाद-वध, राम का योध्या को लौटना तथा लक्ष्मण-ऊर्मिला के पुनर्मिलन की कथा है। इस सर्ग भी कथा के रूप की सम्पूर्णता का प्रयास है जिससे इसकी गति त्वरित नहीं,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अत्यधिक त्वरित है। इन दोनों सर्गों में कवि जितनी राम-कथा कह गया उतनी शेष दस सर्गों में नहीं है। इससे स्पष्ट है कि इन सर्गों को लिखते कवि का ध्यान राम-कथा को समाप्त कर देना था। इसीलिए वह वर्णना शैली में ही राम-कथा की इतनी सारी घटनाओं को दो ही सर्गों में गिना है। इसके अतिरिक्त उसके लिए और कोई चारा भी न था।

इस प्रकार साकेत की कथावस्तु की संयोजना में वह गठन, सुव्यव तथा गतिशीलता नहीं है जो किसी भी प्रबंधकाव्य की सफल कथावस्तु अनिवार्य गुण होते हैं।

नवीनता

प्रत्येक जागरूक एवं प्रतिभा-सम्पन्न कवि परम्परागत कथानक को अप कर भी उसमें कुछ-न-कुछ नवीनता का समावेश करता है। यह समावेश उ कथावस्तु का गुण माना जाता है। गुप्त जी ने भी परम्परागत रामकथा अनेक नवीनताओं का समावेश किया है जो डॉ० कमलाकांत पाठक के शब्द निम्नलिखित हैं—

१. ऊर्मिला के पूर्वराग, वियोग और पुर्नामिलन-विषयक समस्त घटना और प्रसंग-कल्पना कवि की अपनी उद्भावना है। उसे प्रायः रामकथा अनेक स्थलों पर उपस्थित ही नहीं किया गया, मुखर भी बनाया गया।

२. चित्रकूट सभा में कैकेयी अपने वात्सल्य की दुहाई देती है और कृत्य पर पश्चात्ताप प्रकट करती है। उसके दुष्कृत्य का मनोवैज्ञानिक क स्पष्ट किया गया। यद्यपि उसके मानसिक अन्तर्द्वंद्व का गाम्भीर्य पूर्ण स्पष्ट हो सका, तो भी उसके भावनाशील चरित्र को उज्ज्वल बनाने का पूरा आयो हुआ। वह तपस्विनी हो गई। अन्तिम सर्ग में उसकी कार्य-तत्परता दि पड़ती है तथा भरत के साथ लंका पर चढ़ाई करने के लिए वह उद्यत होती

३. चित्रकूट-मिलन के पश्चात् सभी घटनाएं घटित नहीं, वर्णित हुई बालकांड की कथा ऊर्मिला ने, अरण्यकांड की शत्रुघ्न ने और किष्किंधा, तथा लंकाकांड की कथा हनुमान ने कही। युद्ध का दृश्य वशिष्ठ ने दिखला ग्रंथ का नाम साकेत होना और ऊर्मिला का नायिका, इस परिवर्तन के उत्तरदायी हैं।

४. मांडवी के चरित्र को अन्तिम सर्गों में आवश्यक उभार देने प्रयत्न हुआ।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

५. हनुमान आकाश-मार्ग से आते-जाते हैं और संजीवनी बूटी साकेत में ही मिल जाती है। आकाश-मार्ग से उड़ने के लिए योग-सिद्धि-सम्बन्धी विश्वास को प्रकट किया और इस लोकोत्तर-व्यापार का समाधान हुआ।

६. साकेत की रण-सज्जा के द्वारा कवि ने अपनी राष्ट्र-प्रेम की भावना को प्रस्तुत किया तथा ऊर्मिला-चरित्र के वीरांगना-पक्ष को उद्घाटित।

७. कैकेयी-मंथरा-संवाद को मनोवैज्ञानिक भित्ति दी गई।

८. दशरथ कैकेयी से स्वयं वर माँगने का अनुरोध करते हैं, जिसे वह विस्मृत कर चुकी है।

९. भरत की अनुपस्थिति का कारण दशरथ ने प्रकट किया और लक्ष्मण-ऊर्मिला-संवाद में उसे स्थान मिला।

१०. दशरथ की मृत्यु का वर्णन 'मानस' की अपेक्षा यहाँ विस्तृत है और रानियाँ सती होने का, अपने पद-गौरव के अनुकूल, प्रस्ताव करती हैं।

११. पारिवारिक हास-परिहास की यत्र-तत्र नियोजना हुई। यथा—प्रथम, पंचम और अष्टम सर्ग में।

१२. सीता को स्वावलम्बिनी बनाया गया और अष्टम सर्ग में उसके चरित्र को नया सौंदर्य दिया गया।

१३. चित्रकूट-सभा को एक पारिवारिक घटना का स्वरूप प्राप्त हुआ।

१४. राम-रावण-युद्ध में प्रत्युत्पन्न-मतित्व का विनियोग किया गया और कुम्भकर्ण-वध के प्रसंग को नई भाव-भूमि दी गई। लक्ष्मण को शक्ति लगने के पश्चात् राम सहसा क्रोधांध होकर भीषण मार-काट मचाते हैं और 'भाई का बदला भाई ही' कहकर कुम्भकरण का वध कर डालते हैं। रावण को मूर्च्छित देखकर उन्हें लक्ष्मण की मूर्च्छा का स्मरण हो आता है और वे रावण की सहृदयता की प्रशंसा करते हैं। राम-चरित्र की यह मानवीय भूमि कवि की अपनी कल्पना है। यहाँ आधार-ग्रन्थों की भाँति शोकाभिभूत राम विलाप-मात्र नहीं करते।

१५. राम का सम्पूर्ण चरित्र मानवीय ह। उनमें लोकोत्तरता की प्रतिष्ठा नहीं की गई। कवि ने मानव की ईश्वरता दिखाई, ईश्वर की मानवता नहीं।

इस प्रकार कवि ने रामकथा की चिर-परम्परा को तोड़कर उसे आधुनिकता का रूप देकर अपनी कथावस्तु को अधिक ग्राह्य बना दिया है। अतः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

कहा जा सकता है कि यद्यपि 'साकेत' की कथावस्तु में प्रबंधात्मक काव्य क
सफल कथा का-सा अपेक्षित गठन तथा गति नहीं है, फिर भी कवि के काव
कौशल ने इन दोनों का परिहार करने का पर्याप्त प्रयास किया है। उपेक्षि
स्थलों में भावात्मकता; अप्राकृतिक घटनाओं की वैज्ञानिक व्याख्या, अस्वाभावि
प्रसंगों का मनोवैज्ञानिक प्रस्तुतीकरण आदि गुण ऐसे हैं जो साकेत की रा
कथा को परम्परा के बन्धन से मुक्त करके अधिक ग्राह्य, विश्वसनीय ए
सरस बनाते हैं।

—:o:—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

: ५ :

चरित्र-चित्रण

साकेत में चरित्र-चित्रण तत्त्व का विश्लेषण करते हुए डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है—

'साकेत चरित्र-प्रधान काव्य है। उसमें ऊर्मिला का चरित्र लक्ष्मण, राम, सीता, भरत, कैकेयी, कौशल्या, सुमित्रा आदि पात्रों के बीच विकसित होता है। ऐसे ही काव्य की सफलता के लिए यह वांछित है कि उसके सभी पात्र मुख्य पात्र के चरित्र पर घात-प्रतिघात द्वारा प्रभाव डालें तथा कभी परिस्थिति और कभी पृष्ठभूमि के रूप में उपस्थित होकर उसको प्रकाश में लायें। साकेत का चरित्र-चित्रण इस कसौटी पर खरा उतरता है। उसके सभी पात्रों का ऊर्मिला के चरित्र-विकास से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सम्बन्ध है।'

स्पष्ट है कि साकेत में ऊर्मिला ही एक ऐसा पात्र है जिसके चरित्र के विकास पर कवि का सर्वाधिक ध्यान रहा है और जो साकेत महाकाव्य का केन्द्र-बिन्दु है। इसीलिए सभी पात्र ऊर्मिला के लिए ही निर्मित हुए से प्रतीत होते हैं। साकेत के नवम सर्ग में इतने आँसू बहाकर कवि को संतुष्टि सम्भवतः इसलिए भी नहीं मिली है, क्योंकि ऊर्मिला के प्रति उसका विशेष लगाव है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रामायण के पात्रों का वर्गीकरण करते समय उन्हें दो वर्गों में विभाजित किया है—आदर्श और साधारण। इन्हें ही क्रमशः अमानवीय और मानवीय चरित्र भी कहा जा सकता है। साकेत में भी ये दोनों प्रकार के पात्र हैं। राम का चरित्र अमानवीय या अलौकिक है। ये परिस्थितियों के वशीभूत नहीं होते, वरन् अपनी लीला का प्रदर्शन करने के लिए कभी-कभी स्वयं ही वांछित परिस्थितियों का सृजन कर लेते हैं। मानवीय या लौकिक पात्र पूर्णतया परिस्थितियों के वश में होकर उनसे प्रभावित होते हैं और उन परिस्थितियों के घात-प्रतिघात में ही उनके चरित्र का विकास होता है। ऊर्मिला इन्हीं पात्रों में से है। ऊर्मिला के चरित्र के प्रमुख पक्ष ये हैं—

१. सामान्य विरहिणी,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

२. आदर्श गृहिणी,
३. सहृदया,
४. आशावती ।
५. सौन्दर्य का भंडार ।

सामान्य विरहिणी

'साकेत' में ऊर्मिला के चरित्र के विविध पक्षों का उद्घाटन करने में कवि पूर्ण सफलता मिली है, किंतु नवम सर्ग में उसका रूप एक सामान्य विरहि नारी का है। उसके पति उसे छोड़कर चौदह वर्षों के लिए वन में चले हैं और वह उनके विरह में इस प्रकार जल रही है, जैसे वह स्वयं ही आ बनी हुई हो—

'मानस-मन्दिर में सती, पति की प्रतिमा थाप ।
जलती-सी उस विरह में, बनी आरती आप ।।'

विरह-वेदना के कारण सारे भोग उसके लिए त्याज्य बन गये हैं। पहर चौंसठ घड़ी वह अपने प्रियतम में इतनी लीन रहती है कि अपनी ही बुधि भूल गई है। अपने व्यथित मन को भुलावा देने के लिए वह कभी बनाती है, कभी पुस्तक पढ़ती है और कभी वीणा बजाती है, पर फिर भी अपनी विरहाग्नि को कम नहीं कर पाती। उसने खाना-पीना सब कुछ दिया है, उसकी जिह्वा का स्वाद ही नष्ट हो गया है। उसे यह अनुभव और भी अधिक दुःख होता है कि न तो वह सीता की भाँति अपने प्रियत साथ वन ही जा सकी है और न मांडवी तथा श्रुतिकीर्ति की भाँति राज के सुखों का ही उपभोग कर पाई है। अपने प्रियतम से चित्रकूट में मि वह इतनी भावाकुल बन जाती है कि एक शब्द भी नहीं कह पाती। उ दशा देखकर लक्ष्मण भी तो कुछ नहीं कह पाये थे। इसका उसे बहुत ही अ दुख है। अपने दुख का वर्णन अपनी सखी से वह इन शब्दों में करती है—

'मिली मैं स्वामी से, पर कह सकी क्या सँभल के ?
बहे आँसू होके सखि, सब उपालम्भ गल के।
उन्हें हो आई जो निरख मुझको नीरव दया,
उसी की पीड़ा का अनुभव मुझे हा ! रह गया !'

वह अपनी व्यथा को भुलावा देने के लिए ललित कलाओं का आश्रय है, पर ये भी तो उसकी व्यथा को शान्त नहीं कर पाते। वेदना को सहते

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

उसका वेदना से इतना अपनत्व हो जाता है कि वह अपनी इच्छा की पूर्ति और अपने सुखों का मूल उसी में देखने लगती है। यही तो उसे उसके प्रियतम से मिलाने का आधार है—

'अरी वियोग-समाधि, अनोखी, तू क्या ठाक ठनी,
अनेक को, प्रिय को, जगती को देखूं खिची-तनी।
मन-सा मानिक मुझे मिला है तुझमें उपल-खनी,
तुझे तभी छोडूं जब सजनी पाऊँ प्राण-धनी।'

वह इतनी व्यथिता है कि सुख से रात को सो भी नहीं पाती। अपनी कसकों की टीस से वह बार-बार चौंक पड़ती है, संयोग का सुख उसके लिए केवल एक स्वप्न रह गया है। निरंतर प्रियतम से मिलने की आतुरता से वह प्रतीक्षा करती रहती है। कितनी विवशता आ गई है उस बेचारी के जीवन में—

'हाय! हृदय को थाम, पड़ भी मैं सकती कहाँ?
दु:स्वप्नों का नाम, लेती है तू सखि, वहाँ।'

सभी ऋतुएं बारी-बारी से आकर उसकी विरह-व्यथा को बढ़ाती हैं। उसे अनुभव होता है, जैसे कामदेव उसकी असहाय अवस्था का लाभ उठाकर उसे व्यथित कर रहा है। वह कभी तो कामदेव की मिनौती करती है और कभी उसे चुनौती दे देती है।

वियोग-दशा में संयोगावस्था के मिलन-सुखों का याद आ जाना स्वाभाविक ही है। ऊर्मिला को ऐसी घटनाओं का स्मरण हो आता है जो उसकी विरहाग्नि को और भी अधिक प्रज्वलित कर देती हैं। अपनी इस दीन-दशा में वह स्वयं को उस कली के समान समझती है जिस पर खिलते ही स्वर्ण-भृंग आया था, पर कुछ ही दिनों पश्चात् वह उसे उसके भाग्य पर छोड़कर चला गया। प्रियतम से मिलने की इतनी उत्कट इच्छा है कि यदि वह अवधि बन सके तो स्वयं को मिटाकर प्रियतम को वन से वापिस ले आये—

'आप अवधि बन सकूं कहीं तो क्या कुछ देर लगाऊँ,
मैं अपने को आप मिटाकर जाकर उनको लाऊँ।'

इस प्रकार कवि ने सामान्य विरहिणी नारी के रूप में ऊर्मिला का अत्यन्त सफल चित्रण किया है। वह अवधि-शिला का अपने हृदय पर भारी भार रखकर अपने आँसुओं की धारा से उसे तिल-तिल करके काट रही है। इससे अधिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

दयनीय दशा एक विरहिणी नारी की और क्या हो सकती है ?

आदर्श गृहिणी

विरहिणी होते हुए भी ऊर्मिला अपने आदर्शों की रक्षा करने में स जागरूक रहती है जो एक नारी को आदर्श गृहिणी बनाते हैं। उसका प्रिय ही उसका सर्वस्व है, वही उसका सुख है, भोग है और जब वही चला ग तो राजभवन उसके लिए निरर्थक बन गया, मनोहारी उपवन बन की भां सूना कष्टकारक हो गया—

'स्वामि-सहित सीता ने
नंदन माना सघन-गहन कानन भी,
वन उर्मिला वधू ने
किया उन्हीं के हितार्थ निज उपवन भी।'

यद्यपि विरह-वेदना में डूबकर उसने खाना-पीना छोड़ दिया है, पर व जानती है कि यदि वह जीवित रही तो एक-न-एक दिन उसका प्रियतम उ अवश्य मिलेगा। इसीलिए वह उन सभी पदार्थों का उपभोग करने के लि तैयार है जो उसे जीवित रखकर उसके प्रियतम से उसे मिला सकते हैं—

'पिऊँ ला, खाऊँ ला, सखि पहनूँ ला सब करूँ,
जिऊँ मैं जैसे हो, यह अवधि का अर्णव तरूँ।
कहे जो, मानूँ सो, किस बिध बता, धीरज धरूँ,
अरी, कैसे भी तो पकड़ प्रिय के वे पद मरूँ।'

एक आदर्श गृहिणी की इसके अतिरिक्त मधुरतम साध और हो ही क्या सकती है। प्रियतम के अभाव में वह स्वयं को उस शिला की भाँति सून समझती है जिसे सिद्ध करता हुआ योगी छोड़कर चला गया है। विरह की अपार वेदना पाकर भी उसे अपने प्रियतम से कोई गिला या शिकवा नहीं है वह तो यही समझती है कि इतनी भारी वेदना देकर प्रियतम मेरी परीक्षा ले रहे हैं—

'प्रिय ने सहज गुणों से, दीक्षा दी थी मुझे प्रणय, जो तेरी,
आज प्रतीक्षा-द्वारा, लेते हैं वे यहाँ परीक्षा मेरी।'

वह सदैव अपने प्रियतम के गौरव को और अपनी लघुता को स्वीकार करती है। वह नहीं चाहती कि अपने प्रियतम की साधना में वह किसी प्रकार की बाधा बन जाये। एक आदर्श गृहिणी का धर्म भी तो यही है कि चाहे वह

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

जैसी परिस्थितियों में हो, अपने प्रियतम के लिए सहारा बनी रहे, उसकी प्रगति में गति देने वाली हो। ऊर्मिला को यह भय होता है कि कहीं उसका प्रियतम उसकी याद करके अपनी साधना से ही भ्रष्ट न हो जाये। इसीलिए वह चाहती है कि उसका प्रियतम अबाध रूप से अपनी साधना में ही लगा रहे, किसी भी प्रकार से उसकी स्मृति करके वह अपने पथ से विलग न हो जाये—

'मेरी चिंता छोड़ो,
मग्न रहो नाथ, आत्म-चिन्तन में,
बैठी हूँ मैं फिर भी,
अपने इस नृप-निकेतन में।'

अपने प्रियतम की साधना की अबाधता का वह तब भी ध्यान रखती है, जब वह यह सोचती है कि वह भी उसी वन में जाकर रहे, जहाँ उसके प्रियतम रह रहे हैं। प्रियतम की साधना में वह किसी प्रकार की बाधा न बन जाये, इसलिए वह उसके निकट रहकर भी दूर रहना चाहती है—

'यही आता है इस मन में,
छोड़ धाम-धन जाकर मैं भी रहूँ उसी वन में।
प्रिय के व्रत में विघ्न न डालूँ, रहूँ निकट भी दूर।
व्यथा रहे, पर साथ-साथ ही समाधान भरपूर।
हर्ष डूबा हो रोदन में,
यही आता है इस मन में।'

आदर्श गृहिणी का यह आदर्श यही है कि वह कोई ऐसा कार्य न तो स्वयं करे और न अपने प्रियतम को करने दे, जिससे उन दोनों के जीवन की महत्ता पर आँच आये, दूसरे लोग उन्हें घृणा की दृष्टि से देखें। ऊर्मिला के इस आदर्श का भी कवि ने पर्याप्त विस्तार से वर्णन किया है। वह जब यह सोचती है कि उसके प्रियतम उसके मोह के वशीभूत होकर अपनी साधना को बीच में ही छोड़कर आ गये हैं और उसके द्वार पर खड़े हुए हैं तो उसके नारीत्व का गौरव जाग उठता है। अपने गौरव की दुहाई देती हुई वह कहती है—

'प्रिय, फिरो, फिरो हा! फिरो, फिरो,
न इस मोह की घूम से घिरो।
विकल मैं यहाँ, किन्तु गर्विणी।
न कर दो मुझे नष्टपर्विणी।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

और जब वह यह देखती है कि गौरव तथा धर्म की इतनी दुहाई देने पर भी उसके प्रियतम द्वार पर ही अड़े हुए हैं तो उसमें अपने गौरव का भाव इतना प्रबल हो जाता है कि वह क्रुद्ध हो जाती है और अपने प्रियतम से उन शब्दों का भी प्रयोग कर बैठती है जो उस जैसी कुलवती एवं आदर्श गृहिणी के लिए अनुचित हैं—

'धिक ! तथापि हो सामने खड़े ?
तुम अलज्ज-से क्यों यहाँ अड़े ?
जिधर पीठ दे दीठ फेरती,
उधर मैं तुम्हें ढीठ, हेरती।
तुम मिलो मुझे धर्म छोड़के,
फिर मरूँ न क्यों मुण्ड फोड़के ?'

इसमें संदेह नहीं कि कवि ने ऊर्मिला के आदर्शवादी चरित्र का यह अतिरंजनापूर्ण वर्णन किया है, क्योंकि कुलीन एवं आदर्शमयी ऊर्मिला से ऐसे वाक्यों का प्रयोग असम्भव है, जो उसने अपने प्रियतम के लिए किये हैं। सम्भवतः ऊर्मिला के चरित्र की यह अलौकिक आदर्शवादिता कवि की उस अगाध भावना के कारण है जो वह अपने महाकाव्य में आदि से लेकर अन्त तक उसके लिए सँजोये रहा है। इस अतिशय आदर्शवादी चित्रण के कारण ऊर्मिला कुछ क्षणों के लिए लौकिक न रह कर अलौकिक बन जाती है, पर जब वह अपने शब्दों पर प्रायश्चित्त करती है तो फिर लौकिक धरातल पर उतर आती है—

'हट सुलक्षणे ! रोक तू न यों,
पतित मैं, मुझे टोक तू न यों।
विवश लक्—,'नहीं, ऊर्मिला हहा।'
किधर ऊर्मिला ? आलि, क्या कहा ?'

आदर्श गृहिणी के रूप में, ऊर्मिला कभी-कभी उस भाव-भूमि पर उतर आती है, जहाँ दाम्पत्य जीवन हास-परिहास से परिपूर्ण दिखाई देता है। निम्नलिखित छन्द में ऊर्मिला का यह रूप स्पष्ट है—

'आई हूँ सशोक मैं अशोक, आज तेरे तले,
आती है तुझे क्या हाय ! सुध उस बात की।
प्रिय ने कहा था—'प्रिये, पहले ही फूला यह,
भीति जो थी इसको तुम्हारे, पदाघात की !'

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवी उन कांता सती शांता को सुलक्ष कर,
वक्ष भर मैंने भी हँसी यों अकस्मात् की—
'भूलते हो नाथ, फूल फूलते ये कैसे, यदि
ननद न देती प्रीति पद-जलजात की।'

कहने का भाव यह है कि आदर्श गृहिणी के रूप में ऊर्मिला के चरित्र का अंकन करने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है, यद्यपि कहीं-कहीं अतिशय आदर्शवाद के कारण ऊर्मिला कुछ क्षणों के लिए लौकिक धरातल से ऊपर उठकर अलौकिक-सी दिखाई देती है।

सहृदया

यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि वेदना व्यक्ति को बहुत भावुक एवं सहृदय बना देती है। दूसरों के प्रति उसके हृदय में करुणा का अपार पारावार तरंगित होता रहता है, और अपने दुख को भूलकर वह दूसरों के दुःखों से अधिक द्रवीभूत होता है, या दूसरों के दुःखों को बाँटने का और उन्हें सुखी देखने का निरन्तर प्रयत्न करता रहता है। ऊर्मिला को भी उसकी वियोग-वेदना ने बहुत ही सहृदय तथा भावुक बना दिया है। सबसे पहले उसकी दृष्टि उन प्रोषितपतिकाओं के दुख की ओर जाती है जो उसी की भांति विरह-वेदना की आग में तड़प-तड़पकर जल रही हैं।

वह स्वयं वियोगिनी होने से उनकी व्यथा का अनुमान सहज ही लगा लेती है और इसीलिए अपनी सखी को आदेश देती है कि वह सारी विरहिणियों को बुला लाये, ताकि समदुःखिनी होने से उनका दुख बँटे, कुछ देर के लिए वे अपनी वियोग-व्यथा को भूल जायें—

'प्रोषितपतिकाएँ हों जितनी भी सखि, उन्हें निमंत्रण दे आ,
समदुःखिनी मिलें तो दुःख बँटे, जा, प्रणयपुरस्सर ले आ।'

तत्पश्चात् उसकी दृष्टि पड़ती है राजभवन के उन विहगों पर जो पिंजड़े में बंदी बनकर अपने परिजनों से अलग हो गये हैं। उन्हें देखकर उसका हृदय करुणा और दया से भर आता है। वह सोचती है कि अब तो ये बेचारे उड़ना भी भूल गये होंगे, इनके परिजन भी इन्हें भूल गये होंगे, अतः यदि इन्हें मुक्त भी कर दिया जाये तो यह इनके प्रति निर्दयता का ही व्यवहार होगा—

'विहग उड़ना भी ये हो बद्ध भूल गये, अये,
यदि अब इन्हें छोड़ूँ तो और निर्दयता दये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

परिजन इन्हें भूले, ये भी उन्हें, सब हैं बहे,
बस अब हमीं साथी-संगी, सभी इनके रहे।'

वस्तुतः उसका अभिप्राय यही है कि बंधन में पड़कर इन पक्षियों की कैसी दुर्दशा हो गई है कि इनके परिजन तक भी इन्हें भूल गये होंगे। परिजनों के वियोग की व्यथा कितनी मर्मांतक होती है, इसका अनुभव ऊर्मिला को है। तभी तो वह चाहती है कि लाल पक्षी अपनी मुनियों से मिलकर संयोग-सुख का भोग करें—

'मेरे उर-अंगार के, बने बाल-गोपाल,
अपनी मुनियों से मिले, पले रहो तुम लाल।'

शलभ प्रेमियों का आदर्श रहा है। प्रेम की महानता इसी बात में है कि जिस प्रकार शलभ हँसते-हँसते दीपक की लौ में स्वयं को भस्म कर देता है, उसी प्रकार प्रेमी को भी अपने प्रेमी के लिए अपनी आहुति सहर्ष एवं आनन्दपूर्वक दे देनी चाहिए। स्वयं को मिटा देना ही तो प्रेम का फल है, इसके अतिरिक्त आदर्श प्रेमी के सम्मुख और कोई विकल्प भी तो नहीं होता—

'बचकर हाय! पतंग मरे क्या ?
प्रणय छोड़कर प्राण धरे क्या ?
जले नहीं तो मरा करे क्या ?
क्या यह असफलता है ?
दोनों ओर प्रेम पलता है।'

शनैः शनैः उसकी सहृदयता का क्षेत्र व्यापक बनता चला जाता है। जो सहृदयता प्रोषितपतिकाओं से प्रारम्भ हुई थी, वह अन्त में समस्त जग के हित की ओर उन्मुख हो जाती है। ग्रीष्म-ऋतु को सम्बोधित करती हुई वह कहती है—

'तपोयोगि, आओ तुम्हीं, सब खेतों के सार।
कूड़ा-कर्कट हो जहाँ, करो जलाकर छार।'

उसके प्रियतम वन में कठोर तपस्या कर रहे हैं। वह सोचती है कि यह उन्हीं के तप की ज्वाला है, जो ग्रीष्म-ऋतु का रूप धारण करके समस्त प्राणियों को व्यग्र कर रही है। अतः वह अपने प्रियतम से विनती करती है—

'प्यासे हैं प्रियतम, सब प्राणी,
उन पर दया करो हे दानी,

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन प्यासी आँखों में पानी,
मानस, कभी न रीतो ।
मन को यों मत जीतो ॥'

अपनी करुणा के वशीभूत होकर ही वह सरस घटा के साथ बरसना चाहती है, ताकि पृथ्वी के सभी निवासी ताप से मुक्ति पाकर सुख का अनुभव कर सकें—

'बरस घटा, बरसूँ मैं संग,
सरसें अवनी के सब अंग,
मिले मुझे भी कभी उमंग,
सबके साथ समानी ।
मेरी ही पृथिवी का पानी ।'

इस प्रकार ऊर्मिला की सहृदयता और तज्जन्य करुणा की भावना केवल उसी तक सीमित नहीं रहती, वरन् वह सम्पूर्ण जगत् को घेर लेती है। वह अपना हित भूलकर विश्व के हित की कामना में लीन हो जाती है। यही तो हृदय की महानता और विरह की गरिमा है। निस्संदेह, ऊर्मिला इस महानता और गरिमा से मंडित है।

आशावती

प्राय: यह देखा जाता है कि दुखी प्राणी भावात्मक भावों को छोड़कर अभावात्मक भावों को अपना लेता है। वह उत्साह छोड़कर हतोत्साही और आशा छोड़ कर निराशावादी बन जाता है, पर ऊर्मिला के चरित्र की यह विशेषता है कि वह विरह-वेदना से अत्यन्त व्यथित होते हुए भी भावात्मक भावों को ही ग्रहण किये रही है। उसके मन में आशा का प्रकाश निरन्तर जगमगा रहा है। निम्नलिखित शब्दों में उसकी अटल आशा स्पष्टतया मुखरित है—

'फटते हैं, मैले होते हैं, सभी वस्त्र व्यवहार से,
किंतु पहनते हैं क्या उनको, हम सब इसी विचार से ?'

वेदना से सभी दूर भागते हैं, क्योंकि उसमें कष्ट छिपा हुआ है (जो प्राणी जीवन में भावात्मक भावों को लेकर चलता है, उसे सभी प्रकार के भावों में सृजन का रूप दिखाई देता है, यह सभी प्रकार के भावों को—चाहे वे कितने ही अभावात्मक क्यों न हों—सहर्ष अपने हृदय से लगाता है। ऊर्मिला का जीवन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

आशा से परिपूर्ण है, इसलिए वह वेदना में भी अपनी सम्पूर्ण इच्छा की पूर्ति और विरह में भी अभिसार-सुख देखती है—

'वेदने, तू भी भली बनी ।
पाई मैंने आज तुझी में, अपनी चाह घनी ।
नई किरण छोड़ी है तूने, तू वह हीर-कनी ।
सजग रहूँ मैं, साल हृदय में, ओ प्रिय-विशिख-अनी ।'

× × ×

'विरह संग अभिसार भी,
भरा जहाँ आभार भी ।
मैं पिंजड़े में पड़ी हुई हूँ किन्तु खुला है द्वार भी,
काल कठिन क्यों न हो किन्तु मेरे लिए उदार भी ।'

आशावती होने के कारण ही वह अपनी वेदना को सजीव बनाये रखना चाहती है । वह चाहती है कि उसकी विरह-बत्ती निरंतर जलती रहे, उसका विरह-दीपक चंचल न होकर निरन्तर प्रकाश देता रहे । तिल-तिल जलना ही तो जीवन की महानता की शिला है, ईंट-ईंट लेकर चुनने से ही तो कोसों लम्बे कोट का निर्माण होता है—

'होने दे निज शिखा न चंचल, ले अंचल का आट ।
ईंट-ईंट लेकर चुनते हैं, हम कोसों का कोट ।
ठंडी न पड़, बनी रह तत्ती,
स्नेह जलाता है यह बत्ती ।'

इतनी विषम विरह-वेदना को सहती हुई भी वह इस विश्वास को अपने मन में बनाये हुए है कि जब सबको सुख मिलेगा तो एक दिन उसके भी सुखी होने की बारी आयेगी—

'तरसूं मुझ-सी मैं ही, सरसे-हरसे-हँसे प्रकृति प्यारी,
सबको सुख होगा तो मेरी भी आयेगी बारी ।'

और निम्नलिखित पंक्तियों में भी यही विश्वास व्यक्त किया गया है—

'री, आवेगा फिर भी बसंत,
जैसे मेरे प्रिय प्रेमवंत ।
दुःखों का भी है एक अन्त,
हो रहिए दुर्दिन देख मूक ।'

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार ऊर्मिला के जीवन में आशा प्रारम्भ से अन्त तक बनी रहती है। एक क्षण के लिए भी उसके मन में उदासीनता या निराशा का भाव नहीं आता। आशा-भरा यही दृढ़ विश्वास तो परमात्मा के प्रति अगाध आस्था लेकर इन शब्दों में फूट पड़ता है—

'सिर माथे तेरा यह दान,
हे मेरे प्रेरक भगवान।'

सौन्दर्य का भण्डार

ऊर्मिला अपूर्व सुन्दरी है। इसलिए कवि इसके प्रथम दर्शन में ही इसके अपार सौन्दर्य को उद्‌घाटित करता है। राज-प्रासाद के प्रांगण में अरुण पट पहने हुए वह ऐसी प्रतीत होती है जैसे साकार ऊषा ही प्रकट हो गई हो। इसकी कांति की किरणें सारे प्रासाद में विकीर्ण होकर उसे प्रकाशित कर रही हैं। इस सोने की सजीव प्रतिमा को गढ़कर मानो ब्रह्मा ने अपने कला-कौशल की चरमसीमा दिखा दी हो—

'अरुण-पट पहने हुए आह्लाद में,
कौन यह बाला खड़ी प्रासाद में ?
प्रकट-मूर्तिमती उषा ही तो नहीं ?
कांति की किरणें उजेला कर रहीं।
यह सजीव सुवर्ण की प्रतिमा नई,
आप विधि के हाथ से ढाली गई।'

इसका सम्पूर्ण शरीर और शरीर का प्रत्येक अवयव अपूर्व शोभा से मंडित है। इसके नेत्र हीरकों में गोल नीलम से जड़े हुए, अधर पद्‌मराग-से और दाँत मोतियों-से हैं। इसके हृदय की तो कोई उपमा ही नहीं दी जा सकती। इस विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इसका हृदय इसके हृदय से ही बना है। इसकी कोमलता भी अतीव है। यदि इसके करों को शुभ कर्मों का सम्बल न हो तो चूड़ियों के भार से इसकी कलाइयाँ कभी की लचक जातीं। वस्तुतः यह स्वर्ग का सुमन है जो किसी कारण से धरती पर खिल गया है।

अतः कहा जा सकता है कि ऊर्मिला के चरित्र में कवि ने वे सभी गुण एकत्रित कर दिये हैं, जो एक आदर्श भारतीय गृहिणी में होने चाहिएं।

—:०:—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

: ६ :

महाकाव्यत्व

साकेत का महाकाव्यत्व विवादास्पद है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साकेत को बड़ा प्रबन्ध कहते हैं और उनकी दृष्टि साकेत के सदोष वस्तु-संगठन पर स्थिर हुई है। डॉ० नगेन्द्र ने इसे जीवन-काव्य की संज्ञा दी है और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने महाकाव्य की। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का मत है—

'साकेत महाकाव्य ही नहीं, आधुनिक हिन्दी का युग-प्रवर्तक महाकाव्य है। समस्त हिन्दी-जगत् को इसका गर्व और गौरव है।'

पंडित विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इसे एकार्थकाव्य माना है। इनका कथन है—

'महाकाव्य में कथा-प्रवाह विविध भंगिमाओं के साथ मोड़ लेता आगे बढ़ता है, किन्तु एकार्थकाव्य में कथा-प्रवाह के मोड़ कम होते हैं। अधिकतर वर्णनों या व्यंजनाओं पर ही कवि की दृष्टि रहती है।···गंगावतरण, प्रियप्रवास, साकेत, कामायनी आदि वस्तुतः एकार्थकाव्य ही हैं।'

इन मतों से स्वीकृति या अस्वीकृति व्यक्त करने से पूर्व महाकाव्य के तत्त्वों पर साकेत का परीक्षण करना आवश्यक है।

संस्कृत-काव्यशास्त्र में महाकाव्य के स्वरूप का विवेचन सर्वप्रथम आचार्य भामह में प्राप्त होता है जो आचार्य विश्वनाथ तक आते-आते पूर्ण विस्तृत बन जाता है। यह कहना अनुचित न होगा कि आचार्य विश्वनाथ का महाकाव्य-विषयक विवेचन संस्कृत-आचार्यों की सम्पूर्ण परम्पराओं को सँजोये हुए है। इनके अनुसार महाकाव्य के निम्नलिखित तत्त्व होते हैं—

१. महाकाव्य की कथावस्तु सर्गों में विभाजित होती है। ये सर्ग संख्या में आठ से अधिक और आकार में न बहुत छोटे होते हैं और न बहुत बड़े। एक सर्ग में केवल एक ही छन्द का प्रयोग होता है, किन्तु सर्गांत में भिन्न छन्द होता है। सर्ग के अन्त में आगामी कथा की सूचना होती है। सर्ग का नाम-करण उसमें वर्णित विषय के अनुसार होता है।

२. महाकाव्य का नायक सद्वंश में उत्पन्न, देवता या क्षत्रिय होता है जो

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धीरोदात्त होता है। एक ही वंश में उत्पन्न अनेक सत्कुलीन राजा भी महाकाव्य के नायक हो सकते हैं।

३. महाकाव्य का अंगीरस शृंगार, वीर या करुण रस होता है।

४. महाकाव्य की कथा सज्जनाश्रित होती है जो या तो लोक-प्रसिद्ध हो अथवा इतिहास-प्रसिद्ध हो। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से किसी एक फल की प्राप्ति का विधान होता है। इसमें आदि में नमस्कार, आशीर्वाद या वस्तु-निर्देश होता है। कहीं खल-निंदा या सज्जनों की प्रशंसा होती है। सारी नाटक संधियाँ इसकी कथावस्तु में होती हैं। इसमें यथासम्भव संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रभात, दोपहर, शिकार, पर्वत, ऋतु, वन, सागर, मंत्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का वर्णन होता है।

५. इसका नामकरण कवि के नाम पर, कथावस्तु के आधार पर या नायक के नाम पर होता है। इनके अतिरिक्त भी नामकरण के आधार होते हैं।

यदि हम इन लक्षणों के आधार पर देखें तो यह सहज ही बोध हो जाता है कि इनमें से अधिकांश तत्त्व साकेत में मिल जाते हैं। इसकी कथावस्तु सर्गों में विभाजित है। सर्गों की संख्या बारह है। प्रत्येक सर्ग न तो बहुत छोटा है और न बहुत बड़ा। कुछ सर्ग अवश्य बड़े हो गए हैं। एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग प्रायः किया गया है और सर्ग के अन्त में छन्द बदल भी दिया गया है। जैसे, प्रथम सर्ग में पीयूषवर्ष छन्द का प्रयोग किया गया है, किन्तु अन्त में रूपमाला है। दशम सर्ग में वियोगिनी छन्द है और सर्गान्त में मालिनी तथा अनुष्टुप। नवम सर्ग इस छन्द-योजना का अपवाद है, क्योंकि इसमें द्रुतविलम्बित, आर्या, दोहा, गीतिका आदि अनेक छन्दों का प्रयोग है। सर्ग के अन्त में आगामी कथा की सूचना भी कवि ने दी है, यथा—

'इसके आगे? विदा विशेष,
हुए दम्पती फिर अनिमेष।
किन्तु जहाँ है, मनोनियोग,
वहाँ कहाँ का विरह वियोग?'

यह छन्द प्रथम सर्ग का अन्तिम छन्द है। इस छन्द में स्पष्ट बताया गया है कि आगे चलकर लक्ष्मण और ऊर्मिला का वियोग होगा। गुप्त जी ने सर्ग का उसमें वर्णित विषय के अनुसार नामकरण न करके संख्या के आधार पर किया है। इस काव्य का नायक सद्वंश में उत्पन्न है। वह ब्रह्म का अवतार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

है, इसीलिए वह धीरोदात्त नायक होने के अतिरिक्त अन्य सभी उच्च गुणों से युक्त है, किन्तु नायकत्व की संयोजना इस काव्य में परम्परा से मुक्त है अर्थात् यह काव्य नायक-प्रधान नहीं, वरन् नायिका-प्रधान है। इस काव्य की नायिका ऊर्मिला है जो उच्च वंश में उत्पन्न हुई है और धीरता आदि सभी गुणों से युक्त है। इसका अंगीरस शृंगार रस है जिसका फल ऊर्मिला का लक्ष्मण के साथ पुनर्मिलन के रूप में मिला है—

'मान करूँगी आज ? मान के दिन तो बीते।
फिर भी पूरे हुए सभी मेरे मनचीते।
टपक रही वह कुंज-शिला वाली शेफ़ाली,
जा नीचे, दो चार फूल चुन, ले आ आली।
बनवासी के लिए सुमन की भेंट भली वह।'
'किन्तु उसे तो कभी पा चुका प्रिये, अली यह।'
देखा प्रिय को चौंक प्रिया ने, सखी किधर थी ?
पैरों पड़ती हुई ऊर्मिला हाथों पर थी।"

इसकी कथा लोक-प्रसिद्ध है। इसमें नायिका को काम-फल की प्राप्ति होती है। इसमें मंगलाचरण, नाटक की सन्धियाँ और यथासम्भव सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रभात आदि का भी वर्णन है। यथा—

'सूर्य का यद्यपि नहीं आना हुआ;
किन्तु समझो रात का जाना हुआ।
क्योंकि उसके अंग पीले पड़ चले;
रम्य-रत्नाभरण ढीले पड़ चले।

इन पंक्तियों में प्रभात का वर्णन है।

इस काव्य के नामकरण का आधार स्थान-विशेष है जो आचार्य विश्वनाथ द्वारा निर्दिष्ट कथावस्तु नामक आधार के अन्तर्गत आ सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि साकेत में आचार्य विश्वनाथ द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य के अधिकांश तत्त्व मिल जाते हैं। फिर भी मैथिलीशरण गुप्त केवल परम्परा का अनुसरण करना उचित नहीं समझते। इन्होंने साकेत के प्रणयन से पूर्व 'सरस्वती' में एक निबन्ध लिखा था—"हिन्दी कविता किस ढंग की हो।" उसमें इन्होंने महाकाव्य-विषयक अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"महाकाव्य के कितने ही विषय कवि पर एक प्रकार का दबाव डालते हैं। जिस कथा में उनकी आवश्यकता न हो उसमें ही उन्हें लाने से अप्रासंगिकता का डर है, पर उनके बिना महाकाव्यत्व नहीं रहता। बन-विहार-वर्णन, आखेट-वर्णन और समुद्र आदि के वर्णन, सभी महाकाव्यों के लिए आवश्यक हैं, परन्तु इस विषय में हमें परतन्त्र रहना उचित नहीं।...किसी एक विषय पर भी कविता लिख कर महाकवि होने का परिचय दिया जा सकता है और कविता-मर्मज्ञों से स्वीकार भी कराया जा सकता है। प्राचीनों के मत से मेघ-दूत खण्डकाव्य है, पर उसे महाकाव्य मानने में कोई बाधा का कारण नहीं। लोग उसे महाकाव्य मानते हैं। फिर उसके लिए कुछ विशेष बातों की प्रति-बन्धता हम लोग क्यों स्वीकार करें ?...कथानक के अनुकूल विषय-योजना होनी चाहिए। महाकाव्य में कितने ही विषय समयानुकूल भी नहीं। ऐसी दशा में उसके बिना महाकाव्य नष्ट नहीं हो सकता।"

इससे स्पष्ट है कि मैथिलीशरण गुप्त संस्कृत या अन्य भाषाओं के आचार्यों द्वारा प्रतिपादित तत्त्वों के पूर्ण निर्वाह में ही महाकाव्यत्व नहीं मानते और न उनका अन्धानुकरण किसी भी महाकाव्यकार के लिए समीचीन समझते हैं। इनके अनुसार, महाकाव्यकार को परम्पराओं का कुछ उल्लंघन करने की भी स्वतन्त्रता है। इस दृष्टि से साकेत को महाकाव्य कहा जा सकता है।

—:o:—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

: ७ :

अंगीरस

साकेत का अंगीरस श्रृंगार रस है। श्रृंगार को रस-राज माना गया है क्योंकि इस रस के अन्तर्गत मन की अधिकाधिक वृत्तियों का समावेश हो जाता है। श्रृंगार रस के दो भेद किये गए हैं—संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार। संयोग श्रृंगार में नायक-नायिका के मिलन की क्रियाओं का और तद्जन्य आनन्द का वर्णन होता है। इस रस के अन्तर्गत गुप्त जी ने लक्ष्मण और ऊर्मिला के मिलन के अत्यन्त सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं जिनमें इनका स्वाभाविक हास-परिहास वर्णित होने से संयोग श्रृंगार का वर्णन और अधिक प्रभावशाली हो गया है। यथा—

ऊर्मिला बोली 'अजी तुम जग गये ?
स्वप्न-निधि से नयन कब से लग गये ?'
'मोहिनी ने मन्त्र पढ़ जब से छुआ।'
'जागरण रुचिकर तुम्हें जब से हुआ।'
गत हुई संलाप में बहु रात थी।
प्रथम उठने की परस्पर बात थी।
'जागरण है स्वप्न से अच्छा कहीं।'
'प्रेम में कुछ भी बुरा होता नहीं।'

इन पंक्तियों में लक्ष्मण-ऊर्मिला की संयोगावस्था के हास-परिहास संयोग के वर्णन में विशेष प्रभाव उत्पन्न कर रहे हैं।

वियोग का महत्त्व

श्रृंगार रस का दूसरा भेद है वियोग या विप्रलम्भ श्रृंगार। विरह की महत्ता का वर्णन प्राचीन काल से ही होता आया है। संस्कृत के एक कवि ने लिखा है कि प्रिया के संयोग की अपेक्षा उसके वियोग का ही अधिक महत्त्व है क्योंकि संगम या संयोग की स्थिति में वही एक रह जाती है और विरह या वियोग स्थिति में वह तीनों लोकों में तन्मय हो जाती है, अर्थात् उसकी भावना की व्यापकता का पूर्ण विस्तार एवं प्रसार हो जाता है—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'संगमविरहविकल्प वरमिह विरहो न संगमस्तस्याः ।
संगे सैव तथैका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे ॥'

एक दूसरी दृष्टि से भी संयोग की अपेक्षा वियोग को महत्तर बताया गया है—

'न विना विप्रलम्भंन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते ।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्धते ॥'

अर्थात् जिस प्रकार वस्त्र का रंग उसमें पुट लगाये विना पक्का नहीं बनता, उसी प्रकार विप्रलम्भ के विना सम्भोग-सुख पुष्ट नहीं होता। अंग्रेजी के एक कवि ने भी उसी प्रेम को सुन्दरतम माना है जो आँसुओं से भीगा हुआ हो—

'And love is the loveliest when emblamed in tears.'

गुप्त जी भी विरह की इस महत्ता से परिचित हैं। ऊर्मिला के इस विरह-वर्णन की महत्ता बताते हुए इन्होंने लिखा है—

'उस रुदंती विरहिणी के रुदन-रस के लेप से,
और पाकर ताप उसके प्रिय-विरह-विक्षेप से,
वर्ण-वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के,
क्यों न बनते कविजनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के ?'

अर्थात् जिस प्रकार संजीवनी नामक जड़ी के रस का लेप करने से और उसे रासायनिक रीति से तपाने से ताँबा सोना बन जाता है, जिसके अनेक रूप के आभूषण बना कर कानों में पहने जाते हैं जो, बहुत ही सुन्दर प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार रात-दिन विलखने वाली विरहिणी ऊर्मिला के आँसुओं के रस के लेप से और लक्ष्मण के विरह से उत्पन्न भावोन्माद के संताप से कवियों का एक-एक अक्षर कानों को सुखद प्रतीत होगा, उसकी रचना स्वयमेव सरस एवं रमणीय बन जायेगी।

वेदना सहने वाले प्राणी के लिए भी वेदना का बहुत महत्त्व है। ऊर्मिला अपनी वेदना का महत्त्व इन शब्दों में व्यक्त करती है—

'वेदने तू भी भली बनी !
पाई मैंने आज तुझी में अपनी चाह घनी
नई किरण छोड़ी है तूने, तू वह हीर-कनी,
सजग रहूँ मैं, साल हृदय में, ओ प्रिय-विशिख-अनी ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

ठंडी होगी देह न मेरी, रहे दृगम्बु-सनी,
तू ही उसे उष्ण रक्खेगी, मेरी तपन-मनी।'

हे वेदने ! यद्यपि सारा संसार तेरी निंदा करता है और तुझसे घृ करता है, फिर भी तू मुझे अच्छी लगती है, क्योंकि तू मेरी हितकारिणी ब हुई है। आज मैं तुझमें ही अपनी विशाल इच्छा को जान पाई हूँ। अर्था मुझे अपने प्रियतम से कितना अधिक प्रेम है, यह मैं तेरे कारण ही जान सक हूँ। जिस प्रकार हीरे के टुकड़े से प्रकाश की किरणें निकलती हैं, उसी प्रका तू मुझे नवीन आशा प्रदान करने वाली है, प्रेम में दृढ़ता लाकर प्रियतम मिलन के लिए आशा बँधाने वाली है। तू बाण की नोक के समान मर्मांत होकर भी मुझे प्रिय लगने वाली है। अतः तू निरंतर मेरे हृदय को पीड़ि करती रह, ताकि मैं प्रियतम के प्रति अपने प्रेम में शिथिल न हो जाऊँ, बलि सदैव उनका ध्यान करती रहूँ। यद्यपि मेरा शरीर सदा आँसुओं से भीगा हु रहता है, फिर भी मुझे विश्वास है, यह कभी भी ठंडा नहीं होगा, क्यों तू सूर्यकांत मणि के समान उसे सदैव गर्म बनाये रक्खेगी।

विरहजन्य वेदना का इतना महत्त्व स्वीकार करने पर यदि गुप्तजी ऊर्मिला के विरह का इतना व्यापक और बहुमुखी चित्रण किया है तो य स्वाभाविक ही है।

विप्रलम्भ के भेद

शृंगार रस को सभी रसों से श्रेष्ठ माना गया है। आचार्य भोजराज तो यह मत है कि अगर कोई रस है तो शृंगार रस है, अन्य रसों को र मानना उचित नहीं—

'शृंगारमेव रनाद् रसमामनामः।'

इस रस के आलम्बन विभाव नायक और नायिका होते हैं, क्योंकि नाय की रति का आलम्बन नायिका और नायिका की रति का आलम्बन नाय होता है। नायक और नायिका की संयोग और विरह की स्थिति के आधा पर इस रस के दो भेद किये गए हैं—संयोग शृंगार और वियोग शृंगार इन्हें ही क्रमशः सम्भोग शृंगार और विप्रलम्भ शृंगार भी कहते हैं। संयोग सम्भोग शृंगार में नायक-नायिका की मिलन-क्रीड़ाओं का और तज्जन्य आन का वर्णन होता है। वियोग या विप्रलम्भ शृंगार में उन दोनों के बिछुड़ जाने उनकी वेदन और तज्जन्य क्रियाओं का वर्णन होता है। विप्रलम्भ शृंगार

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चार भेद माने गये हैं—पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण। विवाह से पूर्व साक्षात् देखने से या गुण आदि के श्रवण से जिस प्रेम की उत्पत्ति होती है और जिसके कारण शारीरिक मिलाप के अभाव से व्याकुलता बनी रहती है, उसे पूर्वराग कहते हैं। नायक और नायिका जब परस्पर मान कर बैठते हैं, या इनमें कोई एक दूसरे से रूठ जाता है और इस रूठने के कारण उनके हृदय में जो व्याकुलता होती है, उसे मान कहते हैं। जब किसी कारणवश नायक विदेश चला जाता है तो उसके विरह में नायिका की जो वेदनापूर्ण दशा होती है, उसे प्रवास कहते हैं और जब नायक या नायिका में से किसी एक की मृत्यु हो जाती है, किन्तु जन्मांतर में पुर्नमिलन की आशा बनी रहती है तो उसे करुण विप्रलम्भ कहते हैं। विप्रलम्भ के इन भेदों में प्रवास-विप्रलम्भ को ही अधिक महत्त्व दिया गया है, क्योंकि यही भेद सर्वाधिक मर्मान्तक एवं मनोवैज्ञानिक है। 'साकेत' में इसी भेद का सर्वाधिक वर्णन किया गया है।

राम अपने पिता का आदेश मानकर वन को चले जाते हैं। उनकी प्रिया सीता भी उनके साथ चली जाती है और चले जाते हैं ऊर्मिला के प्रियतम लक्ष्मण भी। प्रिय-विरह के कारण ऊर्मिला विषम व्यथा से भर जाती है और राजभवन भी उसके लिए वन के समान कष्ट-कारक बन जाता है—

'स्वामी-सहित सीता ने
नंदन माना सघन गहन कानन भी,
वन ऊर्मिला वधू ने
किया उन्हीं के हितार्थ निज उपवन भी।'

वियोग-दशाएँ

विरह-वेदना के कारण नायिका की अनेक प्रकार की दशाएँ होती हैं। आचार्यों ने इन्हें दस वर्गों में विभाजित किया है—अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण। कुछ आचार्यों ने केवल नौ ही दशाएं मानी हैं। मरण को वे वियोग-दशाओं के अन्तर्गत नहीं मानते, क्योंकि यह अमनोवैज्ञानिक है। 'साकेत' में ऊर्मिला की इन सभी दशाओं का चित्रण हुआ है।

१. अभिलाष—प्रिय से मिलने की इच्छा को अभिलाष कहते हैं। वस्तुतः यह विरह-दशा की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण दशा है, क्योंकि अन्य दशाओं का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

जन्म इसी से होता है। निम्नलिखित पंक्तियों में ऊर्मिला की अपने प्रियतम से मिलने की उत्कट इच्छा व्यक्त की गई है—

'यही आता है इस मन में,
छोड़ धाम-धन जाकर मैं भी रहूँ उसी वन में।
प्रिय के व्रत में विघ्न न डालूँ, रहूँ निकट भी दूर,
व्यथा रहे, पर साथ साथ ही समाधान भरपूर।
हर्ष डूबा हो रोदन में,
यही आता है इस मन में।
बीच बीच में उन्हें देख लूँ, मैं झुरमुट की ओट।
जब वे निकल जाएँ तब लौटूँ, उसी धूल में लोट।
रहें रत वे निज साधन में,
यही आता है इस मन में।'

२. चिन्ता—जब विरहिणी प्रियतम से मिलन के उपायों की चिन्ता करती है, तो उसे चिन्ता की विरह दशा कहते हैं। ऊर्मिला को ज्ञात है कि उसके और उसके प्रियतम के मध्य मिलन में बाधा डालने वाली चौदह वर्षों की अवधि है। अतः वह स्वयं अवधि बनकर और स्वयं को मिटा कर इस बाधा को दूर कर देना चाहती है, ताकि वह शीघ्र ही अपने प्रियतम से मिल सके—

'अब जो प्रियतम को पाऊँ!
तो इच्छा है, उन चरणों की रज में आप समाऊँ।
आप अवधि बन सकूँ कहीं तो क्या कुछ देर लगाऊँ,
मैं अपने को आप मिटाकर, जाकर उनको लाऊँ।'

३. स्मृति—अतीत में सम्पन्न प्रिय-मिलन की बातों और उसकी लीलाओं, गुणों तथा रूप आदि का उसके अभाव में स्मरण करना स्मृति-दशा कहलाती है। ऊर्मिला को ऐसी अनेक घटनाओं की याद आती है। एक रात रिमझिम बूंदें पड़ रही थीं और वह अपने अलिंद पर खड़ी हुई थी। चारों ओर केतकी की सुगंधि फैली हुई थी, झिल्ली झनकार रही थी। उस मादक वातवरण में वह मद-विभोर हो उठी और उसके नूपुर थिरक उठे। तभी बिजली चमकी, और उसने उसके प्रकाश में देखा कि उसके प्रियतम कोने में खड़े हुए उसकी मस्ती को देख रहे थे। वह लज्जित हो गई और उसने अपनी मुख-लज्जा प्रियतम की छाती से लिपट कर छिपा ली थी—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'मैं निज अलिंद में खड़ी थी सखि, एक रात,
रिमझिम बूँदें पड़ती थीं घटा छाई थी।
गमक रहा था केतकी का गन्ध चारों ओर,
झिल्ली-झनकार यही मेरे मन भाई थी।
करने लगी मैं अनुकरण स्वनूपुरों से,
चंचला थी चमकी, घनाली गहराई थी।
चौंक देखा मैंने, चुप कोने में खड़े थे प्रिय,
माई ! मुख-लज्जा उस छाती में छिपाई थी।'

प्राकृतिक पदार्थों को देख कर ऊर्मिला को अपने प्रियतम के रूप एवं गुणों का स्मरण हो आता है—

'त्रिविध पवन ही था, आ रहा जो उन्हा-सा,
यह घन-रव ही था, छा रहा जो उन्हीं-सा।
प्रिय-सदृश हँसा जो, नीप ही था, कहाँ वे ?
प्रकृत सुकृत फैले, आ रहा जो उन्हीं-सा।'

४. गुण-कथन—जब विरहिणी नायिका अपनी विरह-व्यथा को कम करने के लिए अपनी सखी आदि से अपने प्रिय के गुणों का वर्णन करती है तो इस दशा को गुण-कथन की दशा कहते हैं। ऊर्मिला समझती है कि उसके प्रेम का आधार उसके प्रियतम के सहज गुण ही हैं जो अब विरहाग्नि में डालकर उसकी परीक्षा ले रहे हैं—

'प्रिय ने सहज गुणों से, दीक्षा दी थी मुझे प्रणय जो तेरी।
आज प्रतीक्षा द्वारा लेते हैं वे यहाँ परीक्षा मेरी॥'

राजभवन में पले हुए पक्षियों के माध्यम से भी ऊर्मिला अपने प्रियतम के गुणों का कथन करती है—

'कह विहग, कहाँ हैं आज आचार्य तेरे ?
विकच वदन वाले वे कृती कांत मेरे ?'

× × ×

'तुझ पर मुझ पर हाथ फेरते साथ यहाँ,
शशक, विदित है तुझे आज वे नाथ कहाँ ?'

५. उद्वेग—जब विरहिणी की विरह-वेदना इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता, तब उद्वेग की दशा होती है। ऊर्मिला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

भी विरह-व्यथा के कारण इतनी व्याकुल हो जाती है कि वह सारे भोगों ही भूल जाती है—

'आखों में प्रिय मूर्ति थी, भूले थे सब भोग,
हुआ भोग से भी अधिक, उसका विषम वियोग।'

वह खाना-पीना तक त्याग देती है। सखी के बहुत प्रयत्न करने पर और लाये हुए व्यंजनों की प्रशंसा करने पर भी वह जब कुछ भी नहीं तो उसकी सखी उसके लिए दूध लाती है। वह उसे भी तो नहीं पीती, विना प्रयोक्ता के उसके लिए भोग भी रोग बन गये हैं—

'रस हैं बहुत, परन्तु सखि विष है विषम प्रयोग।
बिना प्रयोक्ता के हुए, यहाँ भोग भी रोग॥'

उसे साज-सज्जा भी अच्छी नहीं लगती। अच्छे वस्त्रों के प्रति अरुचि प्रकट करती हुई वह कहती है—

'धूलि-घूसर है तो क्या, यों तो मृन्मात्र गात्र भी;
वस्त्र ये वल्कलों से तो हैं सुरम्य, सुपात्र भी।'

६. प्रलाप—जब विरहिणी विरह-व्यथा से इतनी व्यथित हो जाती है अपना मानसिक संतुलन खो बैठती है और विक्षिप्तों की भाँति व्यर्थ के कहने लगती है तो प्रलाप दशा कहलाती है। रसमंजरीकार ने प्रलाप-दशा विवेचन इस प्रकार किया है—

'प्रियाश्रितकाल्पनिकव्याहारः प्रलापः।'

अर्थात् विरहिणी का अंतःकरण जब पागल सा हो जाता है तो वह प्रियतम का काल्पनिक स्वरूप मन में लाकर उसके सम्बन्ध में पागलों अनर्गल बचन बोलती है। इस स्थिति को प्रलाप की दशा कहा जाता है।

विरह-व्यथा के कारण ऊर्मिला आत्म-ज्ञान को खो बैठी है। इसी वह कभी तो अवधि की सुधि भूल कर प्रियतम को आने का निमंत्रण और कभी मर्यादा की सुधि करके या लज्जा के कारण उनसे वापिस लौट का अनुरोध करती है—

'भूल अवधि-सुध प्रिय से
कहती जगती हुई कभी—'आओ!'
किन्तु कभी सोती तो
उठती वह चौंक बोलकर—'जाओ!'

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस सर्ग के अन्त में तो ऊर्मिला की इस दशा का पर्याप्त वर्णन किया गया है। वह सोचती है कि उसका प्रियतम बन से वापिस लौट आया है और उसके द्वार पर खड़ा हुआ है। वह अपने प्रियतम के सौंदर्य का वर्णन करती हुई अपनी सखी से कहती है—

'त्वरित आरती ला, उतार लूँ,
पद दृगम्बु से मैं पखार लूँ।
चरण हैं भरे देख, धूल से,
विरह-सिंधु में प्राप्त कूल से।'

किन्तु जब उसे ध्यान आता है कि उसके प्रियतम ने बन से लौटकर, राम और सीता को छोड़ कर, वापिस लौट कर अनुचित कार्य किया है। उसके इस कार्य से उसकी भी बदनामी होगी, रघुकुल की निष्कलंक मर्यादा कलंकित हो जायेगी तो उसका नारी-आदर्श सजग हो उठता है। वह उससे वापिस लौट जाने का अनुरोध करती है और जब वह यह देखती है कि उसके अनुरोध का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है, वह द्वार पर ही खड़ा हुआ है तो उसकी भर्त्सना करती हुई कहती है—

'घर फिरे तुम्हीं मोह से कहीं,
तब हुए तपोभ्रष्ट क्या नहीं ?
च्युत हुए अहो नाथ, जो यथा,
धिक ! वृथा हुई ऊर्मिला-व्यथा।'

और जब इसके उत्तर में लक्ष्मण उसकी भर्त्सना करते हैं तो वह प्रायश्चित्त के स्वर में कहती है—

'फिर हुई अहा ! मत्त ऊर्मिला,
सखि, प्रियत्व था क्या मुझे मिला ?
यह वियोग या रोग, जो कहे,
प्रियमयी सदा ऊर्मिला रहे।'

७. उन्माद—जब विरहिणी विरह की उत्कंठा से उत्पन्न अज्ञानपूर्ण कार्य व्यर्थ में ही करने लगती है तो उसे उन्माद दशा कहा जाता है। इस अवस्था में रोना, गाना, हँसना, बैठ जाना, गिर पड़ना आदि अनुभाव होते हैं। ऊर्मिला का विरह-दुख अपार है। वह निरंतर रोती ही रहती है। वह किसी प्रकार अपने मन पर तो काबू पा लेती है, पर उसके आँसू तो थामे थमते ही नहीं—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

'अरे एक मन, रोक थाम तुझे मैंने लिया,
दो नयनों ने, शोक, भरम खो दिया, रो दिया ।'

गीत भी उसके हृदय से इतने निकलते हैं कि एक के बाद एक स्वतः उ
कंठ से फूट पड़ते हैं। इस सर्ग की विशाल गीत-योजना इस कथन का प्रमाण

८. व्याधि—विरहजन्य दुख से जब विरहिणी के शरीर में अतिशय दुर्ब
आ जाती है तो यह दशा व्याधि-दशा कहलाती है। ऊर्मिला भी विरह-
के कारण बहुत दुर्बल हो गई है। जब उसकी सखी उसका ध्यान उ
दुर्बलता की ओर आकर्षित करती है तो वह उत्तर देती है—

'मेरी दुर्बलता क्या दिखा रही तू अरी, मुझे दर्पण में ?
देख, निरख मुख मेरा वह तो धुँधला हुआ स्वयं ही क्षण में ।'

इन पंक्तियों में मुख के पीलेपन का संकेत है और निम्नलिखित पंक्तियों
विरहिणी ऊर्मिला की शारीरिक दुर्बलता का वर्णन है—

'एक अनोखी मैं ही क्या दुबली हो गई सखी, घर में,
देख, पद्मिनी भी तो आज हुई नालशेष निज सर में ।'

९. जड़ता—आचार्य भानुदत्त ने जड़ता-दशा का लक्षण इस प्रकार कि
है—

'विरहव्यथाऽऽविष्कारमात्रमेव जीवनावस्थानं जडता ।

अर्थात् जब विरहिणी की जीवित रहने की सूचना उसकी व्यथा-वेदना
ही जान पड़े तो उसकी यह दशा जड़ता की दशा कहलाती है।

ऊर्मिला भी विरह-व्यथा से बार-बार चौंक कर अपने जीवित रहने
सूचना देती है—

'क्या क्षण क्षण में चौंक रही मैं ?
सुनती तुझसे आज यही मैं ।
तो सखि, क्या जीवन न जनाऊँ ?
इस क्षणदा को विफल बनाऊँ ?'

१०. मरण—मरण में विरहिणी की मृत्यु का वर्णन होता है। यह द
अशुभ माना गया है, इसलिए अनेक आचार्य इसको विरह-दशा के अन्त
नहीं गिनते। इसके विपरीत, जो आचार्य इसे विरह-दशा मानते हैं, उनका क
यह है कि इस दशा में विरहिणी की मृत्यु की आकांक्षा वर्णित करनी चाहिए
आचार्य विश्वनाथ ने इन दोनों मतों को इस प्रकार व्यक्त किया है—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'रसविच्छेदहेतुत्वान्मरणं नैव वर्ण्यते ।
जातप्रायं तु तद्वाच्यं चेतसाऽऽकांक्षितं तथा ॥'

अर्थात् मृत्यु रस का विच्छेद कर देती है अतः काव्य में इस दशा का र्णन नहीं करना चाहिए। इस दशा में मृत्यु की स्थिति को बिल्कुल प्राप्त ही हना चाहिए या मृत्यु की आकांक्षा व्यक्त करनी चाहिए।

ऊर्मिला अपनी मृत्यु की आकाँक्षा इन शब्दों में प्रकट करती है—

'मुँह दिखायगी क्या उन्हें अरी,
मर ससंशया, क्यों न तू मरी।'

इस प्रकार ऊर्मिला के विरह-वर्णन में विरह-दशाओं की संयोजना करने कवि ने सफलतापूर्वक परम्पराओं का निर्वाह किया है।

इसमें संदेह नहीं कि ऊर्मिला का विरह-वर्णन काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का रिपालन करता हुआ भी अत्यन्त मर्मांतक एवं स्वाभाविक है, पर कहीं-कहीं विरह वर्णन में कवि ने ऊहात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। यथा—

'जा मलयानिल, लौट जा, यहाँ अवधि का शाप।
लगे न लू होकर कहीं, तू अपने को आप।'

यहाँ ऊर्मिला अवधि के शाप की सहायता लेकर विरह-ताप की ऊहा रती है। इसी प्रकार, निम्नलिखित छंद में भी ऊहा का सहारा लिया ा है—

'ठहर अरी, इस हृदय में लगी विरह की आग।
तालवृन्त से और भी धधक उठेगी जाग॥'

हर्ष का विषय है कि साकेत में ऐसे अधिक उदाहरण नहीं मिलते।

प्रकृति-चित्रण—आदिकाल से प्रकृति मानव के भावों का आलम्बन रही इसीलिए वह प्रकृति से प्रेरित होता रहा है तथा उसके माध्यम से अपने चारों को व्यक्त करता रहा है। विरह-वर्णन में प्रकृति का उद्दीपन रूप में ोग किया जाता है, क्योंकि प्रकृति के दृश्यों को देखकर विरही या विरहिणी विरह-भावनाओं को उद्दीप्ति मिलती है। साकेतकार ने भी ऊर्मिला-विरह वर्णन करते हुए प्रकृति के इसी रूप का प्रयोग किया है। इनका प्रकृति-र्णन ग्रीष्म ऋतु से प्रारम्भ होता है। ग्रीष्म ऋतु की ताप-प्रचण्डता से सर्वत्र ी सूख जाता है और सूख जाती है वह गृहवापी भी जिसमें संयोग-काल में र्मिला लक्ष्मण के साथ सानन्द विहार किया करती थी। वे परस्पर जो छींटे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

एक-दूसरे पर फेंकते थे, उनकी सुधि करके ऊर्मिला अत्यन्त व्यथि उठती है—

'आलि ! इसी वापी में हंस बने बार बार हम विहरे,
सुध कर उन छींटों की मेरे अंग आज भी सिहरे।'

ग्रीष्म ऋतु की तपन मिटाने के लिए और जलते हुए संसार को शी प्रदान करने के लिए वर्षा ऋतु आती है, पर आकाश में उमड़े हुए विरहिणी ऊर्मिला को किसी व्यथिता के उच्छ्वास जान पड़ते हैं—

'घूम उठे हैं शून्य में, उमड़-घुमड़ घन घोर
ये किसके उच्छ्वास से, छाये हैं सब ओर ?'

ऊर्मिला की करुण-भावना व्यापक है। वह सबके सुख को अपना मानती है। वह चाहती है कि वर्षा सभी के दुखों को नष्ट कर दे, इस बादल से विनती करती हुई कहती है—

'घट पूरो त्रिभुवन-मानस रस, कन-कन घन-घन, वरसो।
आज भीगते ही घर पहुँचें, जन जन के जन, बरसो।'

वर्षा ऋतु में खंजन पक्षी दिखाई देने लगते हैं। उन्हें देखकर वि ऊर्मिला को अपने प्रियतम की सुधि आ जाती है। उसे अनुभव होता है खंजन पक्षियों के रूप में उसके प्रियतम ने उसकी सुधि करके अपने रंजक को उसकी ओर फेरा हो—

'निरख सखी ये खंजन आये,
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मनभाये ?

और क्रौंच पक्षियों का आकाश में उड़ता हुआ समूह उसे वंदनवा भाँति दिखाई देता है जिससे उसकी विरह-वेदना द्विगुणित हो उठती है—

'चली क्रौंचमाला कहाँ लेकर वंदनवार ?
किस सुकृति का द्वार वह, जहाँ मंगलाचार।'

हेमन्त ऋतु के आगमन को ऊर्मिला अपने ऊपर तथा संसार के नि के ऊपर प्रकृति की दया समझती है—

'आया वह हेमंत दयाकर,
देख हमें संतप्त सभीत।'

यह ऋतु भी ऊर्मिला की विरह-वेदना को बढ़ाने वाली है। शीतलता को अनुभव करके ऊर्मिला को संयोग की वे सुखद घड़ियाँ याद

aiGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं जब वह शीत से बचने के लिए अपने प्रियतम के पास जा बैठती थी, प्रियतम उसका साहचर्य पाकर अत्यन्त आनंदित होते थे और हेमन्त ऋतु का आभार स्वीकार करते थे—

'सी-सी करती हुई पार्श्व में पाकर जब-तब मुझको,
अपना उपकारी कहते थे मेरे प्रियतम तुझको।'

हेमन्त ऋतु के बीत जाने पर शिशिर ऋतु आती है। विरहिणी ऊर्मिला को संयोग की सुखद घड़ियाँ एक-एक करके याद आती जाती हैं और उसके हृदय को बेंधती जाती हैं। इसलिए उसकी विरह-व्यथा का संताप इतना अधिक बढ़ जाता है कि वह स्वयं को जलती हुई अनुभव करने लगती है। अपनी इसी स्थिति का वर्णन वह अपनी सखी से करती है—

'करती है तू शिशिर का, बार बार उल्लेख।
पर सखि, मैं जल सी रही, धुवाँधार यह देख॥'

यही नहीं, वह तो अपनी विरह दशा में ही शिशिर ऋतु को निहित देखती है। शिशिर को सम्बोधित करती हुई वह कहती है—

'शिशिर, न फिर गिरि वन में,
जितना माँगे पतझड़ दूँगी, मैं इस निज नंदन में।
कितना कम्पन तुझे चाहिए, ले मेरे इस तन में।
सखी कह रही, पाँडुरता का क्या अभाव आनन में ?'

और इसके पश्चात् आता है ऋतुराज वसंत, विरहिणियों का चिर-परिचित शत्रु। खिली हुई तथा फूलों से लदी हुई लता को देखकर विरहिणी ऊर्मिला को अपने प्रिय का अभाव पीड़ा देने लगता है, वह अपने एकाकी जीवन से मर्माहत होकर सिहर उठती है—

'अपना सुमन लता ने निकाल कर रख दिया, बिना बोले,
आली, कहाँ बनमाली झड़ने के पूर्व झाँक ही जो ले।'

कितनी मार्मिकता है इन पंक्तियों में ! लता ने सुमन को जन्म दिया। सुमन खिला और झड़ने लगा, पर उसके बनमाली ने उसे झड़ते हुए भी तो नहीं देखा, अर्थात् झड़ते समय भी उस सुमन को अपने बनमाली के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। वस्तुतः सुमन के माध्यम से ऊर्मिला अपनी ही असहाय दशा का वर्णन कर रही है।

वसंत ऋतु सब ऋतुओं से अधिक मादक होती है। इस ऋतु में समूची

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्रकृति अपना सम्पूर्ण वैभव लेकर इठला उठती है। कोयल की मधुर सुनाई देने लगती है। कलियों पर भौंरे गूंजने लगते हैं। सरोवरों के जल में कमल सविलास खिल जाते हैं। ये सभी विरहिणी ऊर्मिला की वेदना को उद्दीप्त करते हैं। कोयल की सरस कूक उसे लूक सी लगती कलियों का और भौंरों का सम्मिलन देख कर वह अपने एकाकी जीव ... ... है और खिले कमलों को देखकर उसे अपने प्रियतम के सौंदर्य सु... ाती है—

'उठती है उर में हाय! हूक,
ओ कोइल, कह, यह कौन कूक ?
क्या ही सकरुण, दारुण, गभीर,
निकली है नभ का चित्त चीर,
होते हैं दो दो दृग सनीर,
लगती है लय की एक लूक !'

× × ×

गूंज उठी खिलती कलियों पर उड़ अलियों की टोली,
प्रिय की श्वास-सुरभि दक्षिण से आती है अनमोली।'

× × ×

'एकमात्र उपमान तू, हैं अनेक उपमेय।
रूप, रंग, गुण, गंध में, तू ही गुरुतम गेय।
ओ उन अंगों के आभास!
खिल सहस्रदल, सरस, सुवास।'

इस प्रकार ऊर्मिला के विरह के वर्णन को अधिक मार्मिक तथा भा बनाने के लिए कवि ने षट्ऋतुओं का उद्दीपन रूप में सफल चित्रण कि और साहित्य की परम्परा का निर्वाह भी किया है। परन्तु यह निर्वाह परम्परा की लकीर नहीं है, वरन् कवि की नवीन दृष्टि और भावमयत परिपूर्ण है।

इसमें संदेह नहीं कि ऊर्मिला के विरह-वर्णन में स्वभाविकता और कता है, परन्तु यह पूर्णतया निर्दोष हो, यह नहीं कहा जा सकता। कवि आग्रह ऊर्मिला के चरित्र को आदर्श बनाने का रहा है। यही आग्रह कहीं

iGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सके विरह-भाव की अजस्र धारा का बाधक बन गया है। उदाहरण के लिए, गीत प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

१. 'मेरी ही पृथिवी का पानी,
ले लेकर यह अंतरिक्ष सखि, आज बना है दानी।'

२. 'बरसो परसो घन, बरसो,
सरसो जीर्ण शीर्ण जगती के तुम नव यौवन, बरसो।'

३. 'हम राज्य लिए मरते हैं,
अच्छा राज्य परन्तु हमारे कर्षक ही करते हैं।'

इनके अतिरिक्त, इस सर्ग का अन्त भी, जब ऊर्मिला लक्ष्मण की भर्त्सना रती है, विरह की स्वाभाविकता एवं मार्मिकता में बाधक है। इन बाधक-त्वों के होते हुए भी, अपने समग्र रूप में, ऊर्मिला का विरह हिंदी-साहित्य ी अमर विभूति है।

—:o:—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

: ८ :

कलापक्ष

यदि भावपक्ष काव्य की आत्मा है तो कलापक्ष उस आत्मा को करने वाला शरीर है। जिस प्रकार महान् शरीर में ही महान् आत्मा रह है, उसी प्रकार भावपक्ष की गरिमा भी गरिमामय कलापक्ष में ही निहित है। भावपक्ष चाहे जितना गरिमा से मंडित हो, यदि उसको व्यक्त करने कलापक्ष दुर्बल है तो उसकी गरिमा कभी भी सुरक्षित नहीं रह सकती। प्रकार, यदि भावपक्ष गरिमाहीन है तो कलापक्ष की पूर्ण सक्षमता भी सबल नहीं बना सकती। यही कारण है कि महाकवि की रचना में ये दोनों एक दूसरे की गरिमा के पूरक होते हैं। उसका भावपक्ष जितना उदात्त है, कलापक्ष भी उतना ही सबल होता है।

कलापक्ष का मूलाधार होती है भाषा। भाषा की शक्ति को बढ़ाने अनेक तत्त्व होते हैं जिनमें शब्द-संयोजना, काव्य-गुण, अलंकार-विधान, विधान आदि प्रमुख हैं।

शब्द-संयोजना

वाणी के क्षेत्र में शब्द का जितना महत्त्व है, उतना ही महत्त्व इसके का भी है। इसी महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए महाभाष्यकार महर्षि पतं ने लिखा है कि एक भी शब्द का सम्यक् प्रयोग इहलोक और स्वर्गलो मनोवांछित फल को देने वाला होता है—

'एकः शब्दः सम्यक् प्रयुक्तः लोके स्वर्गे च कामधुक् भवति।'

गुप्त जी की किसी भी रचना को देखकर यह निष्कर्ष सहज ही आता है कि इनकी शब्द-संयोजना अत्यन्त समृद्ध है। स्थूल रूप से इस संयो को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—पहले वर्ग में वे शब्द जो अर्थ-गौरव में वृद्धि करते हैं। दूसरे वर्ग में वे शब्द आते हैं जो संगी कता के द्वारा भाषा की शक्ति को बढ़ाते हैं। पहले वर्ग में आने वाले श कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

iGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

'दो वंशों में प्रकट करके, पावनी लोक-लीला,
सौ पुत्रों से अधिक जिनकी, पुत्रियाँ पूतशीला,
त्यागी भी हैं शरण जिनके, जो अनासक्त गेही,
राजा-योगी जय जनक वे पुण्यदेही विदेही।'

शब्द-संयोजना की दृष्टि से इन पंक्तियों में प्रयुक्त दो शब्द विशेष रूप से विचारणीय हैं—पूतशीला और विदेही। पूतशीला के दो अर्थ हैं—पवित्र चरित्र वाली और पुत्रों के समान शीलवाली। प्रथम अर्थ में, केवल पुत्रियों की ही महत्ता का वर्णन नहीं है, वरन् राजा जनक के महत्त्व का भी संकेत है, क्योंकि उन्हें ऐसी पवित्र चरित्र वाली पुत्रियों का पिता होने का पद मिला है। द्वितीय अर्थ में, राजा जनक के चरित्र पर आने वाले उस दोष का परिहार किया गया है जो भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अनुसार उस व्यक्ति पर लगता है, साथ ही उसके वंश पर भी लगता है, जो पुत्रहीन होता है। इस शब्द-प्रयोग से कवि ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यद्यपि राजा जनक पुत्रहीन हैं, तथापि इस कारण से न तो उन्हें ही दूषित किया जा सकता है और न उनके वंश को ही, क्योंकि उनकी सभी पुत्रियाँ पुत्रों के समान शीलवाली हैं। 'विदेही' शब्द का प्रयोग 'पुण्यदेही' के साथ जुड़कर यमक शब्दालंकार के द्वारा जहाँ चमत्कार को जन्म देता है, वहाँ विरोधाभास के द्वारा अर्थ के प्रभाव को भी बढ़ाता है। यदि इन शब्दों के स्थानों पर इनके पर्यायवाची शब्द रख दिये जायें तो उपर्युक्त विशेषताएँ नष्ट हो जायेंगी। इसी प्रकार—

'चाहे फटा फटा हो, मेरा अम्बर अशून्य है आली।
आकर किसी अनिल ने, भला यहाँ धूलि तो डाली।'

इस छंद में 'अम्बर' और 'किसी' शब्दों का प्रयोग भावोत्कर्षक है। अम्बर के दो अर्थ होते हैं—आकाश और वस्त्र। आकाश का गुण है शून्य। अतः 'अम्बर अशून्य' में विरोधाभास अर्थ के गौरव में वृद्धि करता है। 'किसी' विशेषण ऊर्मिला की असहाय दशा का मर्मांतक चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ है। और—

'क्या क्षण-क्षण में चौंक रही मैं ?
सुनती तुझसे आज यही मैं।
तो सखि, क्या जीवन न जनाऊँ ?
इस क्षणदा को विफल बनाऊँ ?'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

यहाँ 'क्षणदा' शब्द का प्रयोग अत्यन्त भावपूर्ण है। सामान्यतया 'क्षणदा' रात्रि को कहते हैं, पर यदि इस शब्द की व्युत्पत्ति पर ध्यान दिया जाये तो कवि का शब्द-कौशल सहज ही स्पष्ट हो जाता है। 'क्षणदा' की व्युत्पत्ति इस प्रकार हैं—

१. 'क्षणं उत्सवं ददाति इति क्षणदा' अर्थात् सुख देने वाली।

२. 'क्षणं द्यु तिखण्डयति इति क्षणदा' अर्थात् दुख देने वाली।

इन व्युत्पत्तियों के संदर्भ में यदि उपर्युक्त पंक्तियों में इस शब्द के प्रयोग पर दृष्टिपात किया जाये तो निश्चय ही यह शब्द अत्यन्त भावपूर्ण एवं भावोत्कर्षक है। और—

'मेरी चिंता छोड़ो, मग्न रहो नाथ, आत्म-चिंतन में;
बैठी हूँ मैं फिर भी, अपने इस नृप-निकेतन में।'

इन पंक्तियों में 'इस नृप-निकेतन' में 'इस' विशेषण का प्रयोग भावोत्कर्षक है। यह शब्द राजमहल के वैभव का और तज्जन्य विविध सुखों का बोधक है। इस शब्द के द्वारा प्रस्तुत अर्थों से यदि उपर्युक्त पंक्तियों का अर्थ समझा जाये तो ऊर्मिला की अपने प्रियतम के प्रति अपार निष्ठा, अपने प्रति ग्लानि और उससे उत्पन्न विरह-वेदना की अधिकता साकार हो उठती है। वह सोचती है कि वह तो सब प्रकार के सुखों से परिपूर्ण राजमहल में रह रही है और उसका प्रियतम बन-बन में भटक रहा है। इससे अधिक दुखदायिनी स्थिति उसके लिए और क्या हो सकती है? इसके अतिरिक्त, उसके मन में अपने प्रियतम का वह भाव भी आता है कि वे इसे इतना अधिक प्रेम करते हैं कि वे उसे राजभवन के सुखों को भोगने के लिए छोड़ गये हैं, क्योंकि बन का दुख उनसे न देखा जाता। इस शब्द से यह अर्थ भी ध्वनित होता है कि मैं (ऊर्मिला) भी इतनी पतिव्रता हूँ कि इस सुख से भरे हुए राजभवन में भी किसी प्रकार के सुख-भाव का अनुभव नहीं कर रही हूँ, वरन् अपने प्रियतम के विरह में उनसे भी अधिक दुखी हूँ।

दूसरे वर्ग के शब्द संगीतात्मकता के द्वारा भाव-वृद्धि करते हैं। इस संगीतात्मकता के दो भेद किये जा सकते हैं—ध्वनि संगीत और लय-संगीत। ध्वनि संगीत में तो गुप्तजी इतने सिद्धहस्त हैं कि इनकी समता हिन्दी का कोई अन्य कवि कदाचित् ही कर सके। कुछ आलोचकों ने इनके इस गुण को अभावात्मक दृष्टि से देखते हुए इन्हें 'सफल तुक्कड़' कहा है। ध्वनि-संगीत के दो

aiGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

—चरणों के अन्त में ध्वनि-साम्य और चरणों के मध्य में ध्वनि-साम्य। काव्य-शास्त्रीय शब्दावली में इन्हें 'अंत्यानुप्रास' और 'पदांत्यानुप्रास' कहा जाता है। समस्त सर्ग की रचना तुकांत छन्दों में हुई है, अतः इसके सभी पद अंत्यानुप्रास युक्त हैं। पदांत्यानुप्रास का चमत्कार सर्वत्र तो नहीं, पर अधिकांश पदों में है। यथा—

'सखि, निरख नदी की धारा,
ढलमल ढलमल चंचल अंचल, झलमल झलमल तारा।
निर्मल जल अंतःस्तल भरके,
उछल-उछल कर छल-छल करके,
थल-थल तरके, कल-कल धरके,
बिखराता है पारा!
सखि, निरख नदी की धारा।'

इन पंक्तियों में नदी की धारा का वर्णन है। यहाँ शब्द-योजना के द्वारा धारा की ध्वन्यात्मकता एवं रूप दोनों ही साकार हो गये हैं। इन पंक्तियों को पढ़ते समय शब्दों से जो ध्वनि निकलती है, वह ऐसी प्रतीत होती है जैसे नदी की स्वच्छ तथा निर्मल धारा छलछलाती हुई बह रही हो। इसी प्रकार—

'मिलाप था दूर अभी धनी का,
विलाप ही था बस का बनी का।
अपूर्व आलाप वही हमारा,
यथा विपंची—दिर दार दारा।'

यहाँ 'मिलाप' और 'आलाप' का ध्वनि-साम्य भावोत्कर्षक है। इनको दीर्घ ध्वनियों से ऊर्मिला की विरह-वेदना की गहनता घनीभूत हो उठी है।

लय-संगीत के द्वारा भी कवि ने वक्तव्य को प्रभावशाली बनाने में सफलता प्राप्त की है। यथा—

'मिथिला मेरा मूल है, और अयोध्या फूल।
चित्रकूट को क्या कहूँ, रह जाती हूँ भूल।'

इस छन्द में दीर्घ-स्वरों की प्रधानता है जिससे ऐसा प्रतीत होता है मानो विरहिणी विरहाधिक्य के कारण दीर्घ उच्छ्वास ले रही हो। इसी प्रकार—

'विरह संग अभिसार भी,
भार जहाँ आभार भी।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

यहाँ दोनों पंक्तियों में ध्वनियों में समता विरह और अभिसार की सम नता को साकार बना रही है। और—

'दोनों ओर प्रेम पलता है।
सखि, पतंग भी जलता है हा! दीपक भी जलता है।'

इन दोनों पंक्तियों में पहली पंक्ति छोटी है और दूसरी लम्बी। दूसरी पंक्ति की लम्बी लय से प्रेम-मार्ग में आने वाली लम्बी-लम्बी यातनाओं का रूप साकार हो उठा है।

'या तो पेड़ उखाड़ेगा, या पत्ता न हिलायेगा,
बिना धूल उड़ाये हा! ऊष्मानिल न जायगा।'

इन पंक्तियों में गर्मी-रूपी आँधी का वर्णन है। आँधी का रूप भयंकर और विध्वंसकारी होता है। ओजपूर्ण शब्दों का वाहुल्य आँधी के उसी रूप को ध्वनि द्वारा व्यक्त कर रहा है।

निम्नलिखित पंक्तियों में गृहवापी की सरसता श्रुतिमधुर शब्दों से व्यक्त की गई है—

'गृहवापी कहती है—
'भरी रही, रिक्त क्यों न अब हूँगी?
पंकज तुम्हें दिये हैं,
और किसे पंक आज मैं दूंगी?'

कहने का भाव यह है कि गुप्तजी की शब्द-संयोजना अत्यंत भावोत्कर्षक है। इनके शब्द कहीं तो अपनी अर्थ-गरिमा से और कहीं अपनी ध्वनि से वक्तव्य को प्रभावशील एवं हृदयस्पर्शी बनाते हैं। पर कहीं-कहीं कवि ने ऐसे शब्दों का भी प्रयोग किया है जो या तो हिन्दी में प्रचलित नहीं हैं, या हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप नहीं हैं। यथा—

१. 'समदुःखिनी मिलें तो
दुःख वँटे, जा, प्रणयपुरस्सर ले आ।'
२. 'तालवृन्त से और भी धधक उठेगी आग।'
३. 'स्वरित प्रिय का नाम जपना।'
४. श्रुति-पुट लेकर पूर्वस्मृतियाँ खड़ी यहाँ पट खोल।'

प्रणयपुरस्सर, तालवृन्त, स्वरित और श्रुति-पुट शब्द संस्कृत में तो प्रचलित हैं, पर हिन्दी में इनका प्रचलन नहीं है। और—

aiGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

१. 'सखि नीलनभस्सर में उतरा यह हंस अहा ! तरता तरता ।'
२. 'तड़प-तड़प उठती है स्वजनि-घनालिंगता तड़िता ।'
३. 'सखि, न हटा मकड़ी को, आई है वह सहानुभूतिवशा ।
जालगता मैं भी तो, हम दोनों की यहाँ समान दशा ।'

घनालिंगता तड़िता, सहानुभूतिवशा और जालगता का प्रयोग हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुरूप नहीं है, क्योंकि हिन्दी में विशेष्य के साथ विशेषण का लिंग, संस्कृत भाषा की भाँति, इस प्रकार नहीं बदला करता।

पर ऐसे शब्द-दोष बहुत अधिक नहीं हैं। अधिकांशतया गुप्तजी का शब्द-चयन भावानुरूप और भावोत्कर्षक ही है

काव्य-गुण

जिस प्रकार शौर्य आदि गुण आत्मा का उत्कर्ष करते हैं, उसी प्रकार काव्य-गुण काव्य की आत्मा रस के उपकारक होते हैं। काव्य-गुणों की संख्या तीन मानी गई है—माधुर्य, ओज और प्रसाद। चित्त के द्रवीभाव से प्राप्त आनंद माधुर्य काव्य-गुण कहलाता है। श्रुतिसुखदता, समासहीनता, उक्तिवैचित्र्य आदि इस गुण की प्रमुख विशेषताएँ हैं। यह गुण सम्भोग श्रृंगार, विप्रलम्भ श्रृंगार और शांत रस का विशेष रूप से उपकार करता है।

नवम सर्ग का प्रतिपाद्य विप्रलम्भ श्रृंगार है, अतः इसमें माधुर्य गुण की प्रधानता स्वाभाविक ही है। यथा—

'निरख सखी, ये खंजन आये,
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मन भाये !
फैला उनके तन का आतप, मन ने सर सरसाये,
घूमे वे इस ओर वहाँ, ये हंस यहाँ उड़ छाये !
करके ध्यान आज इस जन का, निश्चय वे मुसकाये,
फूल उठे हैं कमल, अधर-से ये बँधूक सुहाये !
स्वागत, स्वागत, शरद, भाग्य से मैंने दर्शन पाये,
नभ ने मोती वारे, लो ये अश्रु अर्घ्य भर लाये।'

इन पंक्तियों में श्रुति-सुखदता और समासहीनता होने से चित्त को द्रवीभूत करने का गुण विद्यमान है अतः इनमें माधुर्य काव्य-गुण है। और उक्ति-वैचित्र्य होने से निम्नलिखित पंक्तियों में भी यही गुण है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'अपना सुमन लता ने, निकाल कर रख दिया, बिना बोले।
आलि, कहाँ बनमाली, झड़ने के पूर्व झाँक ही जो ले ?'

जो गुण श्रोता के मन में उत्साह, वीरता, आवेश आदि भावों को जा करता है, उसे ओजगुण कहते हैं। इस गुण में प्रयुक्त पदावली में समास की और कठोर तथा द्वित्व शब्दों की बहुलता होती है, इसीलिए यह वीर बीभत्स रस और रौद्र रस के लिए उपयुक्त होता है। नवम सर्ग में के विप्रलम्भ शृंगार रस का वर्णन है, इसीलिए इसमें ओज गुण का अभाव है, किन्तु साकेत में अन्यत्र इस गुण के पर्याप्त सफल प्रयोग हुए हैं।

प्रसाद गुण का आधार सरलता है। जैसे सूखे ईंधन में अग्नि भट व्याप्त हो जाती है, इसी प्रकार जो गुण चित्त में तुरन्त व्याप्त हो जाता उसे प्रसाद काव्य-गुण कहते हैं। यह गुण सभी रसों में रह सकता है। गुप्त की सभी रचनाओं में इस गुण का बाहुल्य है। इस सर्ग में भी इसकी प्रचुर सहज ही परिलक्षित हो जाती है। यथा—

'पिऊँ ला, खाऊँ ला, सखि, पहनूँ ला, सब करूँ,
जिऊँ मैं जैसे हो, यह अवधि का अर्णव तरूँ।
कहे जो, मानूँ सो, किस विध बता, धीरज धरूँ,
अरी, कैसे भी तो पकड़ प्रिय के वे पद मरूँ।'

इन पंक्तियों में विरहिणी ऊर्मिला की द्विविधामयी दशा का अत्यन्त सह और भावपूर्ण वर्णन है। इस वर्णन की सहजता और भावपूर्णता भाषा सरलता से और भी अधिक प्रभावशालिनी बन गई है। इसी प्रकार—

'यथार्थ था सो सपना हुआ है,
अलीक था जो अपना हुआ है।
रही यहाँ केवल है कहानी,
सुना वही एक नई-पुरानी।'

में पदों की सरलता में भावपूर्णता छिपी हुई है।

कहीं-कहीं गुप्त जी ने ऐसे पदों की भी रचना की है जिनमें प्रसाद का अभाव है और जिनका भाव श्रमसाध्य है। यथा—

'करुणे, क्यों रोती है ? 'उत्तर' में और अधिक तू रोई,
मेरी विभूति है जो, उसको 'भव-भूति' क्यों कहे कोई ?'

× × ×

aiGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

'उस रुदंती विरहिणी के रुदन-रस के लेप से,
और पाकर ताप उसके प्रिय-विरह-विक्षेप से,
वर्ण-वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के,
क्यों न बनते कविजनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के ?'

पर ऐसे पद गिने-चुने ही हैं।

अलंकार-विधान

गुप्त जी का अलंकार-विधान भावाभिव्यक्ति की सबलता तथा काव्य की स्वाभाविक शोभा का उत्कर्षक है। इन्होंने शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों का ही प्रयोग किया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास, काकुवक्रोक्ति, यमक, श्लेष, पुनरुक्ति, वीप्सा आदि सभी का प्रयोग भावपूर्ण है। अन्य शब्दालंकारों की अपेक्षा अनुप्रास को अधिक रसोत्कर्षक माना गया है। गुप्त जी ने इसका प्रयोग संगीतात्मकता और तज्जन्य प्रबल प्रभाव के लिए किया है। यथा—

'सखि, निरख नदी की धारा,
ढलमल-ढलमल चंचल अंचल, झलमल-झलमल तारा।
निर्मल जल अंत:स्थल भरके,
उछल-उछल कर छल-छल करके,
थल-थल तरके कल-कल धरके,
बिखराता है पारा।
सखि, निरख नदी की धारा।'

इन पंक्तियों में अनुप्रास के द्वारा कवि नदी की धारा और उसके रूप को साकार बनाने में पूर्ण सफल हुआ है। शब्दों की ध्वनि से जो संगीतात्मकता उत्पन्न होती है, उससे ऐसा लगता है जैसे हमारे सामने ही नदी की स्वच्छ एवं निर्मल धारा-छलछलाती हुई बह रही हो।

अंत्यानुप्रास के अतिरिक्त कवि ने पदांत्यानुप्रास का भी बहुलता से प्रयोग किया है। इससे वक्तव्य संगीतात्मक होकर अधिक ग्राह्य बन गया है। यथा—

'मेरे चपल यौवन-बाल !
अचल अंचल में पड़ा सो, मचल कर मत साल।
बीतने दे रात, होगा सुप्रभात विशाल।
खेलना फिर खेल मन के पहनके मणिमाल।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

यहाँ 'अचल मचल', 'रात सुप्रभात', 'मन के पहनके' में जो संगीतात्मकता है, वह निश्चय ही भाव एवं प्रभाववर्द्धक है।

काकुवक्रोक्ति में काकु-ध्वनि से अर्थ में परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन में हृदय को छूने की जो क्षमता होती है, वह साधारण उक्ति से कभी नहीं आ सकती। गुप्तजी ने इस अलंकार का भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। यथा—

'फटते हैं, मैले होते हैं, सभी वस्त्र व्यवहार से,
किन्तु पहनते हैं क्या उनको, हम सभी इसी विचार से ?'

यहाँ 'किन्तु पहनते हैं क्या उनको हम सभी इसी विचार से' में काकुवक्रोक्ति अलंकार है। काकु-ध्वनि से इसका यही अर्थ निकलता है कि हम इसी विचार से उन वस्त्रों को नहीं पहनते, अर्थात् इस विचार की ओर बिल्कुल भी ध्यान नहीं देते। इसी प्रकार—

'मिली मैं स्वामी से, पर कह सकी क्या सँभल के ?'

में 'कह सकी क्या सँभल के' में काकुवक्रोक्ति है। इसका अर्थ है कि मैं सँभलकर कुछ भी तो नहीं कह पाई, अर्थात् इतना भाव-विमोर हो गई कि कुछ भी बोल न सकी।

यमक अलंकार का प्रयोग इन्होंने अधिकांशतया संगीतात्मकता के लिए किया है, इसीलिए इन्होंने निरर्थक-निरर्थक अथवा सार्थक-निरर्थक शब्दों की आवृत्ति से युक्त यमक का ही अधिक प्रयोग किया है। यथा—

'राजा योगी जय जनक वे पुण्य देही विदेही।'

यहाँ 'पुण्य देही' और 'विदेही' में 'देही' शब्द की आवृत्ति है। यह आवृत्ति निरर्थक शब्दों की है, पर इससे संगीत के द्वारा वक्तव्य के प्रभाव में वृद्धि हुई है। और—

'आँखों में प्रिय-मूर्ति थी, भूले थे सब भोग,
हुआ योग से भी अधिक उसका विषम वियोग।'

इन पंक्तियों में 'योग' शब्द की (योग और वियोग में) सार्थक और निरर्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार है। इसी प्रकार—

'रस हैं बहुत, परन्तु सखि, विष है विषम प्रयोग।'

में भी 'विष' शब्द की सार्थक और निरर्थक आवृत्ति है।

श्लेष में एक ही शब्द में एक से अधिक अर्थ निहित होते हैं। इन अर्थों

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

को प्राप्त करने के लिए कभी तो शब्द को खंडित करना पड़ता है और कभी अखंड रूप में ही एकाधिक अर्थों का बोध होता है। इसलिए श्लेष के खण्ड-श्लेष और अखंड-श्लेष, जिन्हें क्रमश: भंग-श्लेष और अभंग-श्लेष भी कहते हैं, ये दो भेद माने गये हैं। यदि भाव-दृष्टि से इन दोनों भेदों पर विचार किया जाये तो खंड-श्लेष में चमत्कार की प्रधानता और अखण्ड-श्लेष में भाव की प्रधानता होती है। गुप्त जी ने श्लेष प्रयोग में प्राय: अखंड-श्लेष को ही अपनाया है। यथा—

'विफल जीवन व्यर्थ बहा बहा,
सरस दो पद भी न हुए हहा।'

यहाँ पर 'विफल', 'जीवन', 'सरस' और 'पद' शब्दों के दो-दो अर्थ हैं और इन अर्थों की प्राप्ति के लिए इन शब्दों को खंडित भी नहीं करना पड़ता। अत: अखंड-श्लेष है। इसी प्रकार—

'उस रुदंती विरहिणी के रुदन-रस के लेप से,
और पाकर ताप उसके प्रिय-विरह-विक्षेप से।
वर्ण-वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के,
क्यों न बनते कविजनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के ?'

में भी 'रुदंती', 'रस', 'ताप,' 'वर्ण,' 'विभूषण,' 'सुवर्ण' आदि शब्दों के अखंड रूप से एकाधिक अर्थ हैं। अत: यहाँ भी अखंड-श्लेष अलंकार है।

पुनरुक्ति अलंकार में वक्तव्य को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए समान स्वर एवं व्यंजन तथा अर्थों वाले पदों की आवृत्ति की जाती है। गुप्त जी ने इस अलंकार का भी सफल प्रयोग किया है। यथा—

'आओ हो, आओ, तुम्हीं प्रिय के स्वप्न विराट
अर्घ्य लिए आँखें खड़ी हेर रही हैं बाट।'

यहाँ 'आओ' पद की भावपूर्ण आवृत्ति होने से पुनरुक्ति अलंकार है।

वीप्सा अलंकार में भी समान स्वरूप एवं अर्थों वाले पदों की आवृत्ति होती है, पर यह आवृत्ति वक्तव्य को प्रभावशाली बनाने के लिए नहीं, वरन् भावावेश की अभिव्यक्ति के लिए की जाती है। ऊर्मिला के भावावेश की अभिव्यक्ति इसी अलंकार के द्वारा निम्नलिखित पंक्तियों में की गई है—

'प्रिय, फिरो, फिरो हा ! फिरो, फिरो।
न इस मोह की घम से घिरो।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

यहाँ 'फिरो' पद की आवृत्ति भावावेश की सूचिका है। अतः वीप्सा अलंकार है।

शब्दालंकारों में चित्रालंकार का भी स्थान है, पर आधुनिक काल में अधिकांश आचार्यों ने इसे अलंकार ही नहीं माना है, क्योंकि इसमें दृष्टि का ही चमत्कार होता है, भाव का नहीं। गुप्त जी ने ऊर्मिला-विरह का वर्णन करते समय इस अलंकार का भी प्रयोग किया है। इस अलंकार का केवल यही छन्द नवम सर्ग में मिलता है—

'कैसी हिलती डुलती अभिलाषा है कली तुझे खिलने की,
जैसी मिलती जुलती उच्चाशा है भली मुझे मिलने की।'

यह चित्रालंकार गोमूत्रिकाबंध का उदाहरण है।

अर्थालंकारों में उपमा अलंकार का मूर्धन्य स्थान है। अनेक आचार्य तो इसी अलंकार को समस्त अलंकारों का मूल मानते हैं। उपमा के चार अंग होते हैं—उपमेय, उपमान, वाचकशब्द और साधारण-धर्म। जहाँ इन चारों अंगों का कथन होता है वहाँ पूर्णोपमा, और जहाँ किसी एक अथवा एक से अधिक अंगों का लोप होता है, वहाँ लुप्तोपमा होती है। पूर्णोपमा की अपेक्षा लुप्तोपमा में अधिक चमत्कार एवं वक्तव्य को ग्राह्य बनाने की शक्ति होती है, क्योंकि इसमें लुप्त अंगों का अध्याहार चमत्कृति का कारण होता है। इसीलिए गुप्त जी ने पूर्णोपमा की अपेक्षा लुप्तोपमा का ही अधिक प्रयोग किया है। यथा—

'अवध को अपनाकर त्याग से,
वन तपोवन-सा प्रभु ने किया।'

यहाँ 'तपोवन' उपमान है, 'वन' उपमेय है, 'सा' वाचकशब्द है, पर साधारणधर्म का लोप है। अतः धर्मलुप्तोपमा अलंकार है।

'हुआ एक दुःस्वप्न-सा सखि कैसा उत्पात।'

इस पंक्ति में भी 'उत्पात' उपमेय, 'दुःस्वप्न' उपमान, 'सा' वाचक शब्द है, पर धर्म का कथन नहीं है। अतः यहाँ भी धर्मलुप्तोपमा अलंकार है। और—

'मक्खी-सी भिन्ना रही मही।'

में पूर्णोपमा अलंकार है क्योंकि इसमें उपमा के चारों अंगों का—मही उपमेय, मक्खी उपमान, सी वाचक शब्द, भिन्ना रही साधारण धर्म का—कथन है।

रूपक में उपमेय पर उपमान का अभेद आरोप किया जाता है। यह आरोप दो प्रकार से होता है—अंगों के कथन के द्वारा और अंगों का कथन न करके।

aiGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

जहाँ अंगों के कथन-सहित आरोप होता है, वहाँ सांगरूपक अलंकार होता है। गुप्तजी ने दोनों प्रकार के ही रूपक अलंकार का प्रयोग किया है। यथा—

'सखि, नील नभस्सर में उतरा, यह हंस अहा ! तरता तरता।
अब तारक-मौक्तिक शेष नहीं, निकला जिनको चरता चरता।
अपने हिम-बिन्दु बचे तब भी, चलता उनको धरता धरता।
गड़ जायँ न कंटक भूतल के, कर डाल रहा डरता डरता॥'

इन पंक्तियों में 'आकाश' पर 'सरोवर' का अंगों-सहित अभेद आरोप किया गया है, अतः सांगरूपक अलंकार है। इसी प्रकार निम्नलिखित छंद में भी 'मानस' पर 'मंदिर' का अंगों-सहित अभेद आरोप किया गया है—

'मानस-मंदिर में सती, पति की प्रतिमा थाप।
जलती-सी उस विरह में, बनी आरती आप॥'

सांगरूपक की अपेक्षा गुप्तजी ने निरंगरूपक का अधिक प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१. 'जिऊँ मैं जैसे हो, यह अवधि का अर्णव तरूँ।'
२. 'लाते तुम्हीं हा, प्रिय-पत्र-पोत वे,
दुखाब्धि में जो बनते सहारे।'
३. 'व्योम-सिंधु सखि देख, तारक-बुद्बुद् दे रहा।'
४. 'तू सुषमा का कर कमल, रति मुखाब्ज उद्ग्रीव।
तू लीला-लोचन नलिन, ओ प्रभु-पद राजीव।'

प्रकृत का निषेध करके अन्य के स्थापन में अपह्नुति अलंकार होता है। गुप्तजी के निम्नलिखित छंद में आँसुओं को आँसू न बताकर छींटे बताने से अपह्नुति अलंकार है—

'पहले आँखों में थे, मानस में कूद मग्न प्रिय अब थे
छींटे वही उड़े थे, बड़े बड़े अश्रु वे कब थे?

प्रस्तुत की अप्रस्तुत में भी सम्भावना की जाने में उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। गुप्तजी ने इस अलंकार का सफलता से प्रयोग किया है। यथा—

'नहलाती है नभ की वृष्टि,
अंग पोंछती आतप-सृष्टि,
करता है शशि शीतल दृष्टि,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

देता है ऋतुपति शृंगार।
ओ गौरव-गिरि, उच्च उदार।'

यहाँ अहेतु में हेतु की कल्पना होने से हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है। और—

'चंचल सी किरणों का
चरित्र क्या ही पवित्र है भोला,
देकर साख उन्होंने
उठा लिया लाल-लाल वह गोला।'

यहाँ पर एक वस्तु (सूर्य) के स्थान पर दूसरी वस्तु (आग का गोला) सम्भावना होने से वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

विरोधाभास गुप्तजी का सर्वाधिक प्रिय अलंकार प्रतीत होता है। इस इस अलंकार का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग मिलता है। नवम सर्ग के प्रारम्भि छंद में ही इसके दर्शन होते हैं। राजा जनक की महत्ता का वर्णन करते इन्होंने लिखा है—

'त्यागी भी हैं शरण जिनके, जो अनासक्त गेही,
राजा योगी जय जनक वे पुण्यदेही विदेही।'

त्यागियों का शरण में आना, अनासक्त होकर भी गेही (गृहस्थी) हो राजा होकर भी योगी होना, पुण्यदेही होकर भी विदेही होना, ये सब विरो बातें प्रतीत होती हैं। पर वास्तव में विरोध नहीं है, वरन् विरोध का आभ है। अतः विरोधाभास अलंकार है। इसी प्रकार—

'अवध को अपनाकर त्याग से,
वन तपोवन-सा प्रभु ने किया।
भरत ने उनके अनुराग से,
भवन में वन का व्रत ले लिया।'

इस छंद में भी विरोधाभास अलंकार है, क्योंकि 'त्याग से अपनाकर' में 'राजभवन में वन का व्रत लेने' में, विरोध का आभास है।

'स्वामि-सहित सीता ने नंदन माना सघन गहन कानन भी,
वन ऊर्मिला बधू ने किया उन्हीं के हितार्थ निज उपवन भी।'

यहाँ गहन कानन को नंदन मानने में, दोष में गुण स्वीकार कर लेने और उपवन को वन मानने में, अर्थात् गुण में दोष मानने में लेश अलंकार है

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

साथ ही 'सघन' और 'गहन' एकार्थवाची शब्दों की आवृत्ति का आभास होने से पुनरुक्तवदाभास अलंकार है।

'आँखों में प्रिय-मूर्ति थी, भूले थे सब भोग।
हुआ भोग से भी अधिक, उनका विषम वियोग।'

इसमें उपमान (भोग) की अपेक्षा उपमेय (वियोग) का उत्कर्ष वर्णित होने से व्यतिरेक अलंकार है। इसी प्रकार—

'छूट गया पीछे स्वयं उससे आत्मज्ञान।'

में भी आत्मज्ञान की हीनता का वर्णन होने से व्यतिरेक अलंकार है।

'हुआ एक दुःस्वप्न-सा सखि, कैसा उत्पात।
जगने पर भी वह बना वैसा ही दिन-रात।''

इसमें कारण के होने पर भी कार्य के न होने का वर्णन है। अतः विशेषोक्ति अलंकार है।

'खान-पान तो ठीक है, पर तदनंतर हाय।
आवश्यक विश्राम जो उसका कौन उपाय?'

ऊर्मिला खाना-पीना तो इसलिए नहीं चाहती कि विरह-व्यथा के कारण उसकी कोई रुचि नहीं रह गई है। पर वह अपनी बात को घुमा-फिराकर कह रही है, भंग्यंतर से अभीष्टार्थ को व्यक्त कर रही है। अतः पर्यायोक्ति अलंकार है।

'रोती हैं और दूनी निरखकर मुझे
दीन-सी तीन सासें,
होते हैं देवरश्री नत, हत बहनें
छोड़ती हैं उसासें।'

यहाँ एक ही अर्थ वाले 'रोना', 'नत होना', 'उसासें छोड़ना' पदों की आवृत्ति होने से अर्थावृत्ति दीपक अलंकार है।

'वह कोइल जो कूक रही थी, आज हूक भरती है,
पूर्व और पश्चिम की लाली, रोष-वृष्टि करती है।
लेता है निःश्वास समीरण, सुरभि-धूलि भरती है,
उबल सूखती है जलधारा, यह धरती मरती है।'

इन पंक्तियों में केवल 'कोइल', 'लाली', 'समीरण' आदि उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'बता अरी, अब क्या करूँ, रुपी रात से रार।
भय खाऊँ, आँसू पियूँ, मन मारूँ झख मार।'

इसमें 'भय खाऊँ', 'आँसू पियूँ', 'मन मारूँ' क्रियाओं का एक ही कर्त्ता होने से दीपक अलंकार है।

'स्नेह जलाता है यह बत्ती !
फिर भी वह प्रतिभा है इसमें, दीखे जिसमें राई-रत्ती।
रखती है इस अन्धकार में सखि, तू अपनी साख।
मिल जाती है रवि-चरणों में कर अपने को राख।
खिल जाती है पत्ती-पत्ती।
स्नेह जलाता है यह बत्ती।'

इन पंक्तियों में प्रस्तुत अर्थ के द्वारा अप्रस्तुत अर्थ का भी बोध होता है अतः समासोक्ति अलंकार है।

'भीगी या रज नें सनी, अलिनी की यह पाँख ?
आलि, खुली किंवा लगी, नलिनी की वह आँख ?'

इसमें अनिश्चयात्मक भाव होने से संदेह अलंकार है।

'ठहर अरी, इस हृदय में, लगी विरह की आग।
तालवृन्त से और भी धधक उठेगी जाग।'

तालवृन्त (पंखा) से गर्मी नष्ट होती है, पर यहाँ पर उससे उसकी वृ[द्धि] वर्णित है, अर्थात् कारण के विरुद्ध कार्य होने का वर्णन है। अतः विभाव[ना] (पंचम) अलंकार है।

'सृष्टि दृष्टि के अंजन रंजन, ताप विभंजन, बरसो।'

यहाँ 'सृष्टि' के साथ 'अंजन' का और 'दृष्टि' के साथ 'रंजन' का क्रम[शः] अन्वय होने से यथासंख्य अलंकार है।

'तरसूँ मुझ-सी मैं ही, सरसे-हरसे-हँसे प्रकृति प्यारी।'

इसमें 'मुझ-सी मैं ही' में एक ही वस्तु का उपमेय-उपमान भाव से क[थन] होने के कारण अनन्वय अलंकार है।

'बुँदियों को भी आज इस तनु-स्पर्श का ताप।
उठती हैं वे भाप-सी गिरकर अपने आप।'

इस छंद में अत्युक्ति अलंकार है, क्योंकि इसमें विरहिणी की विरह-व्य[था] का मिथ्या वर्णन किया गया है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'रह चिर दिन तू हरी-भरी,
बढ़, सुख से बढ़ सृष्टि-सुन्दरी।'

यहाँ पर वर्षा-ऋतु के लिए 'सृष्टि-सुन्दरी' विशेषण का प्रयोग बहुत ही भावपूर्ण है। वर्षा के कारण ही गर्मी से उजड़ी हुई सृष्टि पुनः हरी-भरी हो जाती है। जिस प्रकार कोई सुन्दर नारी अपने सहज सौन्दर्य से सभी को आकर्षित कर लेती है, उसी प्रकार वर्षा-ऋतु भी सबको प्रिय लगती है। अतः इस विशेषण का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकर अलंकार है।

'शफरी, अरी, बता तू
तड़प रही क्यों निमग्न भी इस सर में ?
जो रस निज गागर में,
सो रस-गोरस नहीं स्वयं सागर में।'

इन पंक्तियों में विशेष कथन का सामान्य कथन से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

'जन प्राची जननी ने शशि-शिशु को जो दिया डिठौना है।
उसको कलंक कहना, यह भी मानो कठोर टोना है।'

यहाँ एक असत्य कथन की पुष्टि के लिए दूसरे असत्य का कथन होने से मिथ्याध्यवसिति अलंकार है।

'जो प्राप्ति हो फूल तथा फलों की,
मधूक, चिंता न करो दलों की।
हो लाभ पूरा, पर हानि थोड़ी,
हुआ करे तो यह भी निगोड़ी।'

यहाँ लाभ-हानि के कथन से अर्थात् विनिमय होने से परिवृत्ति अलंकार है।

अतः कहा जा सकता है कि गुप्तजी का अलंकार-विधान अत्यन्त समृद्ध है। इन्होंने यद्यपि अलंकारों का प्रयोग भावोत्कर्ष के लिए ही किया है, पर कहीं-कहीं केवल चमत्कार-प्रदर्शन भी इनका उद्देश्य रहा है। कला को केवल मनोरंजन न मानने वाला कवि यदि भावों के धरातल से कभी-कभी चमत्कार के धरातल पर भी उतर आये तो यह आश्चर्य की बात नहीं वरन् बहुमुखी कवि-प्रतिभा की स्वाभाविकता है। डॉ० उमाकांत के शब्दों में—

"...गुप्तजी के काव्य में प्रायः सभी अलंकार विद्यमान हैं। अभिव्यंजना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

की सभी श्रेष्ठ प्रणालियों का सुष्ठु प्रयोग हुआ है। अपेक्षाकृत औपम्यमूलक अप्रस्तुत-योजनाएँ अधिक हैं। उनके प्रसूत निदर्शन सहज उपलब्ध हैं, किन्तु चमत्कारमूलक अलंकार बहुत कम हैं, और जो हैं भी, वे साधन-रूप में ही आये हैं, साध्य कभी नहीं बन पाये। यह कवि की समृद्ध भावुकता का परिणाम है।'

छन्द-विधान

गुप्तजी की छंद-योजना भी केवल संगीत की उत्पत्ति के लिए ही नहीं वरन् वक्तव्य को अधिक सक्षम बनाने के लिए भी हुई है। 'साकेत' की छंद-योजना इस कथन की पुष्टि करती है। यह महाकाव्य बारह सर्गों में विभाजित है और प्रत्येक सर्ग के मूलवक्तव्य के अनुसार ही कवि ने छंद-विधान किया है। निम्नलिखित तालिका से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

सर्ग संख्या	मूल प्रतिपाद्य	मूल छंद
एक	लक्ष्मण-ऊर्मिला का प्रणय-परिहास	पीयूषवर्षण
दो	कैकेयी-मंथरा-वार्तालाप	शृंगार
तीन	दशरथ का विलाप	सुमेरु
चार	गार्हस्थ-चित्रण	हाकलि (मानव)
पाँच	बनवास	प्लवंगम
छः	दशरथ की मृत्यु	पदपादाकुलक
सात	भरत का शोक और ग्लानि	सरस
आठ	चित्रकूट-वास	राधिका
नौ	ऊर्मिला का विरह	विविध छंदों का प्रयोग
दस	विरह-वर्णन	वियोगिनी
ग्यारह	युद्ध-वर्णन (हनुमान की प्रधानता)	वीर
बारह	युद्ध-वर्णन	रोला

ऊपर बताया जा चुका है कि नवम सर्ग का मूल प्रतिपाद्य ऊर्मिला विरह का वर्णन है। अतः सम्पूर्ण सर्ग में उसकी विरहजन्य मनोस्थितियों विविध चित्रण हैं जो विविध छंदों से व्यक्त किये गए हैं। जिस प्रकार ऊर्मिला की भावनाओं में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है, उसी प्रकार कवि के छंद भी बदलते रहते हैं। इस सर्ग में प्रयुक्त छंदों के कुछ उदाहरण ये हैं—

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मंदाक्रांता—

'दो वंशों में प्रकट करके पावनी लोक-लीला,
सौ पुत्रों से अधिक जिनकी पुत्रियाँ पूतशीला।
त्यागी भी हैं शरण जिनके जो अनासक्त गेही,
राजा योगी जय जनक वे पुण्यदेही विदेही।'

द्रुतविलम्बित—

'विफल जीवन व्यर्थ बहा बहा,
सरस दो पद भी न हुए हहा!
कठिन है कविते, तव भूमि ही,
पर यहाँ श्रम भी सुख-सा रहा।'

गीति—

'करुणे, क्यों रोती है?' 'उत्तर' में और अधिक तू रोई—
'मेरी विभूति है जो, उसको 'भव-भूति' क्यों कहे कोई?'

गीतिका—

'उस रुदंती विरहिणी के रुदन-रस के लेप से,
और पाकर ताप उसके प्रिय-विरह-विक्षेप से।
वर्ण-वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के,
क्यों न बनते कविजनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के?'

दोहा—

'उसे बहुत थी विरह के, एक दण्ड की चोट।
धन्य सखी देती रही, निज पत्रों की ओट।'

उपेन्द्रवज्रा—

'मिलाप था दूर अभी धनी का,
विलाप ही था बस का बनी का।
अपूर्व आलाप वही हमारा,
यथा विपंची—दिर दार दारा।'

शार्दूलविक्रीडित—

'सींचें ही बस मालिनें, कलश ले, कोई न ले कर्त्तरी,
शाखी फूल फलें यथेच्छ बढ़के, फैलें लताएँ हरी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

क्रीड़ा-कानन-शैल यन्त्र-जल से, संसिक्त होता रहे,
मेरे जीवन का, चलो सखि, वहीं सोता भिगोता रहे।'

शालिनी—

'क्या क्या होगा साथ, मैं क्या बताऊँ ?
है ही क्या, हा ! आज जो मैं जताऊँ ?
तो भी तूली, पुस्तिका और वीणा,
चौथी मैं हूँ, पाँचवीं तू प्रवीणा।'

सुमेरु—

'अरी, व्यर्थ है व्यंजनों की बड़ाई, हटा थाल, तू क्यों इसे आप लाई ?
वही पाक है जो बिना भूख भावे, बता किंतु तू ही, उसे कौन खावे ?

स्रग्धरा—

'रोती हैं और दूनी निरख कर मुझे दीन-सी तीन सासें,
होते हैं देवरश्री नत, हत बहनें छोड़ती हैं उसासें।
आली, तू ही बता दे, इस विजन बिना मैं कहाँ आज जाऊँ ?
दीना हीना अधीना ठहर कर जहाँ शाँति दूँ और पाऊँ ?'

सार—

'आगे जीवन की संध्या है, देखें क्या हो आली,
तू कहती है—'चन्द्रोदय ही, काली में उजियाली ?
सिर आँखों पर क्यों न कुमुदिनी लेगी वह पद लाली ?
किन्तु करेंगे कोक-शोक की तारे जो रखवाली ?'

राधिका—

'कह विहग, कहाँ हैं आज आचार्य तेरे ?
विफ़ज वदन वाले वे कृति कांत मेरे ?
सचमुच 'मृगया में ?' तो अहेरी नये वे,
यह हत हरिणी क्यों छोड़ यों ही गये वे ?'

चंद्रिका—

'विरह संग अभिसार भी,
भार जहाँ आभार भी।'

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सोरठा—

'लिखकर लोहित लेख, डूब गया है दिन अहा!
व्योम-सिंधु सखि देख, तारक-बुदबुद दे रहा।'

सवैया—

'सखि, नील नभस्सर में उतरा, यह हंस अहा! तरता तरता।
अब तारक-मौक्तिक शेष नहीं, निकला जिनको चरता चरता,
अपने हिम-बिन्दु बचे तब भी चलता उनको धरता धरता।
गड़ जायँ न कंटक भूतल के, कर डाल रहा डरता डरता॥

पादाकुलक—

'आकाश-जाल सब ओर तना, रवि तन्तुवाय है आज बना;
करता है पद-प्रहार वही, मक्खी-सी भिन्ना रही मही!

कुंडलिया—

'चौदह चक्कर खाएगी जब यह भूमि अभंग।
घूमेंगे इस ओर तब प्रियतम प्रभु के संग।
प्रियतम प्रभु के संग आयेंगे तब हे सजनी!
अब दिन पर दिन गिनो और रजनी पर रजनी।
पर पल पल ले रहा यहाँ प्राणों से टक्कर।
कलह भूल यह भूमि लगावे चौदह चक्कर।'

घनाक्षरी—

'छोड़, छोड़, फूल मत तोड़, आली, देख मेरा,
हाथ लगते ही यह कैसे कुम्हलाये हैं?
कितना विनाश निज क्षणिक विनोद में है,
दुःखिनी लता के लाल आँसुओं से छाये हैं।
किन्तु नहीं, चुन ले सहर्ष खिले फूल सब,
रूप, गुण, गंध से जो तेरे मनभाये हैं।
जाये नहीं लाल लतिका ने झड़ने के लिए,
गौरव के संग चढ़ने के लिए जाये हैं।'

माला—

'अरे एक मन, रोक थाम तुझे मैंने लिया।
दो नयनों ने, शोक भरम खो दिया रो दिया!'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्रमाणिक—

'न जा अधीर धूल में,
दृगम्बु, आ, दुकूल में।'

भुजंगी—

'यही वाटिका थी, यही थी मही, यही चन्द्र था, चाँदनी थी यही।
यही वल्लकी मैं लिये गोद में, उसे छेड़ती थी महामोद में।'

बरवै—

'अवधि-शिला का उर पर था गुरु भार।
तिल तिल काट रही थी दृग-जल-धार।'

इनके अतिरिक्त कवि ने और भी अनेक प्रकार के छंदों का प्रयोग है जिसके द्वारा विरह-भाव के विविध पक्षों को अभिव्यक्ति दी है। उ प्रथम चार छंदों को छोड़कर शेष सभी में ऊर्मिला के विरह का वर्णन प्रथम छंद में जनक के गौरव को व्यक्त किया गया है जिसके लिए क मंदाक्रांता छंद को चुना है। इस छंद में दीर्घ वर्णों का वाहुल्य होने से ग गरिमा एवं लाघव है। इस गति से राजा जनक की गरिमा एवं उसका मुखरित हो उठा है। द्वितीय छंद में जीवन की विफलता का वर्णन है, द्रुतविलम्बित छंद का प्रयोग किया गया है। इस छंद की गति तीव्र है, कोई धारा द्रुतगति से बह रही हो। तृतीय छंद में गीति छंद है जिसमें स्वरों की वहुलता तथा गति का विस्तार है। लगता है जैसे किसी व्यथा से दबे हृदय के गहरे तथा लम्बे उच्छ्वास फूट रहे हों। चौथे छंद की न्था शब्द-योजना भी वक्तव्य को प्रभावशाली बनाने में सक्षम है।

शेष सभी छंदों में ऊर्मिला के विरह का वर्णन है। दोहे में विरह की का वर्णन है। इस छंद में प्रयुक्त कठोर शब्दों से वास्तव में हृदय पर लगती है। विरह के कारण विरहिणी के मन में स्थिरता नहीं रहती। चंचल होकर आशा और निराशा के बीच झूलता रहता है। ऐसी ही उपेन्द्रवज्रा की है। शार्दूलविक्रीडित छंद की लम्बी लय ऊर्मिला की करुणा-भावना को मूर्तित करती है। विरह के कारण असहाय विरहि जीवन की ही नहीं, उसकी वाणी की भी एकसूत्रता टूट जाती है। शालि की ध्वनि में भी तो एकसूत्रता नहीं है। ऊर्मिला अपने दुख से इतनी दुखी

iGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होती, जितना वह अपने परिवार के दुख को देखकर होती है। उस समय उसकी वेदना अपार हो उठती है। स्रग्धरा की लम्बी तथा आरोह-अवरोहों से युक्त लय उसकी अपार वेदना तथा उसके हृदय की धड़कनों को साकार बनाती है। विरह में आशा की किरणें चमकती तो हैं, पर कुछ ही क्षणों के लिए। उनका जन्म क्षण-भंगुर होता है। चंद्रिका छंद की लघुतम लय आशा की इसी क्षण-भंगुरता को व्यक्त करती है।

कहने का भाव यह है कि गुप्त जी का छंद-विधान भावों का मूर्तीकरण करने में पूर्णतया सक्षम है। भावाभिव्यक्ति को सबल और साकार बनाने में इन्होंने उपयुक्त छंदों का ही चयन किया है। डॉ० नगेन्द्र ने इनके छंद-विधान का मूल्यांकन इन शब्दों में किया है—

'विभिन्न छन्दों के सफल प्रयोक्ता होने पर भी गुप्त जी टेकनीशियन नहीं हैं। उन्होंने छंदों की एक स्वरता (Monotony) तोड़ने के लिए एक दूसरे छंद का ही प्रयोग किया है, छंद में परिवर्तन नहीं किया। उन्होंने निराला और पंत की भाँति छंद की टेकनीक पर प्रयोग नहीं किये और न उनके कान ही उतने शिक्षित प्रतीत होते हैं। नवम सर्ग में आर्या में अवश्य कुछ-थोड़ा सा परिवर्तन कहीं-कहीं भावना के विस्तार के अनुकूल कर लिया है, परन्तु वह भी नियमानुकूल ही है। उनके छंदों में अनुक्रम (Symmetry) सर्वत्र मिलेगा। हाँ, कहीं-कहीं यति की विभिन्नता द्वारा वैचित्र्य का समावेश होता रहा है।'

इस विवेचन से सहज ही यह निष्कर्ष निकल आता है कि भावपक्ष की भाँति गुप्त जी का कलापक्ष भी अत्यन्त समृद्ध है। एक सफल कलाक़ार में जिन गुणों की अपेक्षा होती है, वे सब इनके कलापक्ष से अभिव्यक्त होते हैं।

—:o:—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

: ९ :

नवम सर्ग का कथासार

नवम सर्ग साकेत का सबसे बड़ा सर्ग है। इसमें ऊर्मिला की व्यापक बहुमुखी वेदना का चित्रण है, पर इसमें प्रबंधात्मकता नहीं है। अनेक छंदों सज्जित यह सर्ग पूर्णतया मुक्तक शैली में लिखा गया है। इसीलिए इसमें ऊर्मि की विरह-वेदना के विविध पक्षों का उद्‌घाटन करने में कवि को सफल मिली है।

राजा जनक में वीतरागी और गृहस्थी दोनों के गुण विद्यमान थे। राजा भी थे और योगी भी, अनासक्त भी थे और गेही भी। उनकी पुत्रियाँ थीं—सीता, ऊर्मिला, मांडवी और श्रुतिकीर्ति। राम राजसिंहासन त्याग कर और अयोध्या को तपोवन-सी सूनी बनाकर लक्ष्मण के साथ वन चले गये। भरत उनके अनुराग के कारण राजा होकर भी योगी का सा जी बिताने लगे। सीता अपने स्वामी राम के साथ बन को चली गई, इसलिए बन भी नंदन के समान सुखद बन गया। ऊर्मिला अपने पति लक्ष्मण के बन को न जा सकी, इसलिए उसके लिए निज उपवन भी बन की भाँति दु बन गया। विरह की इस अपार ज्वाला में ऊर्मिला ने अपने धर्म का अपनी मर्यादा का सदैव ध्यान रखा, इस प्रकार उसन अपने आदर्श त्याग उस कलंक को धो दिया जो रानी कैकेयी ने अपनी निंद्य आसक्ति से रघुवंश लगा दिया था।

लक्ष्मण के बन को चले जाने पर ऊर्मिला उसके विरह में पागल-सी गई। कभी वह अवधि-सुधि को भूलकर अपने प्रियतम से आने के लिए कह और कभी सोती हुई भी चौंक कर अपने प्रियतम से वापिस जाने की विन करती। इस भाँति वह ममता और आदर्श के बीच झूलती हुई, अपने प्रियत को निरंतर याद करती हुई स्वयं को विरह-ज्वाला में जला रही थी। उस विषम-वियोग उसके लिए योग से भी अधिक कठिन बन गया था। आठ चौंसठ घड़ी उसे अपने प्रियतम का ही ध्यान रहता था। उसकी आँखों निरंतर आंसू बहते रहते थे। उसकी अंतरंगिनी सखी सुलक्षणा सदैव

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

विरहजन्य वेदनाओं से बचाने का प्रयत्न करती रहती थीं, पर उसके प्रयत्न भी विफ़ल हो जाते थे। वह रात-दिन अपने प्रियतम की इस प्रकार रट लगाए रहती थी, जैसे वीणा से 'दिर दार दारा' की ध्वनियाँ निकल रही हों। ऊर्मिला की वेदना इतनी व्यापक बन जाती है कि वह किसी की भी वेदना को सहन करने में असमर्थ है। यहाँ तक कि वह अपने उपवन की लताओं को तथा पौधों को भी यथेच्छ बढ़ते हुए देखना चाहती है। इसलिए वह अपनी मालिनों को आदेश भिजवा देती है कि कोई भी किसी पौधे को या लता को न छाँटे, वरन् उन्हें उनकी इच्छा के अनुसार बढ़न दे।

विरह-वेदना को भुलावा देने के लिए विरहिणी द्वारा चित्र बनाना प्राचीन परम्परा है। इसके साथ ही पुस्तक पढ़ना और वीणा बजाना भी विरह-वेदना को कम करने के साधन हैं। इसीलिए ऊर्मिला अपनी सखी से तूली, पुस्तिका और वीणा भी मँगा लेती है, पर इन साधनों से भी उसकी वेदना कम नहीं होती। उसे प्रियतम मिलन एक दुःस्वप्न-सा जान पड़ता है जो रात और दिन दोनों में कष्टदायक होता है। उसकी खाने पीने में कोई रुचि नहीं रह गई। न तो उसे व्यंजनों का खाना ही अच्छा लगता है और न उनकी बड़ाई को। वह तो यही चाहती है कि यदि उसके प्रियतम भी होते तो वह सभी को अपने हाथों से खाना बना कर खिलाती। वस्तुतः उसके लिए भोग भी रोग बन गये हैं। जब वह खाना नहीं खाती तो उसकी सखी उसके लिये दूध लाती और पीने की हठ करती है, पर निरंतर आँसुओं में डूबी हुई ऊर्मिला दूध तो नहीं पी पाती।

ऊर्मिला विरह-वेदना के कारण प्रियतम के प्रति इतनी व्याकुल हो गई है कि वह स्वयं को एकदम अनाथ और असहाय समझ बैठती है। वह तो सभी पदार्थों का भोग केवल इसलिए करना चाहती है, ताकि वह जीवित रहे और चौदह वर्षों की अवधि को पार करके अपने प्रियतम के दर्शन कर सके। जब वह यह देखती है कि उसके दुख को देखकर उसकी तीनों सासें बिलख कर रो पड़ती हैं, देवरों के सिर दुख के कारण झुक जाते हैं और उसकी बहिनें लम्बे-भरे साँस छोड़ती हैं तो वह और भी अधिक दुखी हो उठती है। अपनी पराधीना, हीना तथा अधीना दशा पर उसे भारी व्यथा होती है, क्योंकि उसी के कारण तो परिवार के सारे जन दुखी और व्याकुल हैं। कभी उसे अपना बहिन का वह रूप याद आता है जब वह हर्षोल्लास लेकर राजभवन में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्रविष्ट हुई थी। इससे उसकी व्यथा और भी अधिक हो जाती है। वह अपनी माँ की इस बात को याद करके छटपटा उठती है कि उसे न तो व मिला और न राजभवन ही। राजा जनक इस गृह-कलह को निबटाने के अपना राज्य भरत को देने के लिये आये थे, परन्तु दुर्भाग्यवश यह सम भी कार्यान्वित न हो सका। वह चित्रकूट जाकर अपने प्रियतम से भी थी, लेकिन वहाँ भी वह उनसे अपने मन की बात न कह पाई, केवल बहाती ही रह गई। न वह अपनी कुछ कह सकी और न उनकी पूछ वह तो स्वयं को उस शिला की भाँति सूनी अनुभव करती है जिस पर से करने वाला योगी उठ कर कहीं चला गया है।

अपनी अपार विरह-वेदना से वह इतनी उदार बन गई है कि नगर की सारी विरहिणियों को निमंत्रण देकर अपने पास बुला लेना चाह ताकि समदु:खिनी होने से उनका दुख बँट जाये। कभी वह अपनी कलाओं का आश्रय लेकर अपनी वेदना को भूल जाना चाहती है, इसलि पुरवाला शाला खोलने का आदेश देती है। कभी वह चित्र बनाने बैठ है जिसमें एक नाला अंकित है। उसके किनारे पर राम और सीता दोनं हुए हैं। लक्ष्मण नाले में घुस कर उसकी थाह ले रहे हैं। या सीता काँटा लग जाने से व्यथित है और लक्ष्मण उनका काँटा निकाल रहे हैं लक्ष्मण फूलों की लता को झुकाये हुए खड़े हैं, सीता उससे सहर्ष फूल रही है। और राम वाहवाही दे रहे हैं। वह समझती है कि उसे इतनी वेदना देकर, इतनी लम्बी अवधि के द्वारा उसके प्रियतम उसकी परी रहे हैं।

दुख के दिनों में सुख के दिनों का स्मरण हो आना सहज स्वाभावि ऊर्मिला को जब अपने बीते हुए सुखों के दिनों की याद आती है तो वह उठती है, उसका हृदय कसक से भर जाता है और फिर उसे अपना अन्धकारमय दिखाई देता है। सखी के द्वारा उज्ज्वल भविष्य के आश्वा उसे थोड़ा-बहुत संतोष हो जाता है। अपनी विरह-वेदना के कारण वह उदार बन गई है कि राजमहल में पले हुए और पिंजड़ों में बंद सभी को मुक्त करा देती है, ताकि वे अपना जीवन सुखपूर्वक यापन कर सकें पक्षियों को देखकर उसे अपनी संयोगावस्था के सुखद दिनों की भी जाती है और वह उनसे पागल की भाँति आलाप करने लगती है। वेदना

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

सहते वह उसकी इतनी अभ्यस्त हो गई है कि उसे वही अच्छी लगने लगती है। प्रियतम के प्रति अपार प्रेम को वढ़ावा देने में उसका बहुत हाथ भी है। वह सोचती है कि उसे अपनी वियोग-दशा से विचलित नहीं होना चाहिए, क्योंकि विरह और अभिसार का अटूट सम्बन्ध है।

वह शलभ को दीपक की लौ पर जलते देखती है तो यही निष्कर्ष निकालती है कि प्रेम की पूर्णता दोनों ओर से प्रेम-पालन में ही होती है, जैसे कि पतंग के साथ-साथ दीपक भी जलता रहता है। कभी वह विरह से इतनी अधिक व्यथिन हो जाती है कि उसकी व्यथा को ही नहीं सँभाल पाती और रात में नींद न आने के कारण अपनी सखी से पूछ बैठती है कि ऐसा लगता है कि मेरा रात से संघर्ष छिड़ गया है। तभी तो वह मुझे चैन से सोने नहीं देती। वह सोती हुई बार-बार चौंक-चौंक पड़ती है। पुष्पों की सुवासित सुगंधि उसे सहन नहीं होती। वह प्रिय-मिलन के लिए अत्यंत अधीर हो जाती है। कभी वह नींद को इस प्रकार वहका कर अपने पास बुलाती है जैसे खिलौने का लोभ देकर बच्चों को पास बुलाया जाता है। उसकी सारी रात जागते-जागते बिलखते-तड़पते ही बीत जाती है। तारे छिप जाते हैं। प्रभात आता जाता है। वह प्रातःकालीन सुषमा में कुछ देर के लिए डूबकर अपनी विरह-व्यथा को भूल जाती है।

कुछ समय बीतन पर बसंत ऋतु आ जाती है। यह ऋतु विरहिणी के लिए अत्यंत कष्टदायक होती है। बसंत ऋतु के आने से चारों ओर प्राकृतिक सुषमा बिखर जाती है। निर्मल जल से भरी हुई वापी में हंसों को सानंद किलोलें करते देखकर ऊर्मिला का हृदय कसक उठता है, क्योंकि उसने भी तो इन वापियों में अपने प्रियतम के साथ अनेक प्रकार की आनंद-क्रीड़ाएँ की थीं।

ग्रीष्म ऋतु की भीषणता भी उसकी विरह-वेदना को उद्दीप्त करती है। सब प्राणियों को प्यासे देखकर उसकी उदारता सजग हो उठती है। पर वह इससे विचलित नहीं होती, क्योंकि वह जानती है कि ग्रीष्म के ताप से ही फलों में परिपक्वता आती है।

तत्पश्चात् वर्षा-ऋतु का प्रारम्भ होता है। आकाश में उमड़-घुमड़कर घोर घन छा जाते हैं और समूची पृथ्वी जल से भीगकर शीतल बन जाती है। सारी प्रकृति सरसती और दरसती है, पर विरह-व्यथिता ऊर्मिला को अपनी वेदना से फिर भी मुक्ति नहीं मिलती। फिर भी वह आनंद से नृत्य करते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मयूर आदि के सुख का पूर्णतया ध्यान रखती है। ऊर्मिला को अपनी संयोगावस्था की एक सुखद घटना याद आ जाती है। वर्षा ऋतु में एक बार वह हिंडोले में झूल रही थी कि तभी उसका प्रियतम वहाँ आ गया। उसने उसे भी हिंडोले में बैठा लिया। भय का बहाना करके वह वहीं उससे लिपट गया। इस घटना की याद आते ही विरहिणी ऊर्मिला व्यथित हो उठती है और सोचती है कि उसकी कोई भी तो कामना पूरी न हो सकी। अपने आराध्य पर वह मनभाये फूल भी तो न चढ़ा सकी। आकाश में उमड़ते और कड़कते बादल उसकी विरह-वेदना को और भी अधिक बढ़ा देते हैं। उसे ऐसा प्रतीत होता है जैसे बादलों के रूप में किसी व्यथिता के हृदय के भाव अटक-भटक कर भड़क रहे हो। उसे अपनी संयोगावस्था की एक और घटना याद आ जाती है। वह अपने अलिंद पर खड़ी हुई थी। चारों ओर आकाश में बादल छाये हुए थे और रिमझिम फुहारें पड़ रही थीं। वर्षा के मादक वातावरण को देखकर उसका मन मतवाला हो उठा। वह भावावेश में आकर नृत्य करने लगी। तभी बिजली चमकी और उसने उसके प्रकाश में देखा कि उसका प्रियतम वहीं कोने में छिपा हुआ खड़ा था। वह लज्जा से भर गई। एक और घटना का वर्णन भी वह अपनी सखी से करती है कि हे सखि! तुझे तो याद होगा ही कि एक बार मालिनें जब डाली लाई थीं तो जीजी ने तो जम्बूफल ले लिए और मैंने आम लिए। प्रिय देवर वहीं खड़े थे। मैंने पूछा कि हे रसिक! तुम्हारी रुचि किस में है तो उन्होंने विनोदपूर्वक उत्तर दिया था कि मुझे तो दोनों ही अच्छे लगते हैं। आज वही विनोद तो भारी विषाद बन गया है। ऊर्मिला अपने प्रिय से मिलने के लिए इतनी आतुर है कि वर्षाकाल में उड़ते हुए खंजन उसे ऐसे प्रतीत होते हैं। जैसे उसके प्रियतम ने उधर मनभाये अपने नेत्र फिरा दिये हों; अर्थात् वे लौटकर वापिस घर आ रहे हों।

इसके पश्चात् हेमंत ऋतु आती है। सारा संसार उसके दिये हुए सुख से सुखी है, पर ऊर्मिला तो अपने विरह-दुख में ही डूबी हुई है। उसे याद आता है कि जब वह सी-सी करती हुई अपने प्रियतम के पास पहुँच जाती थी तो वे कितने प्रसन्न होते थे और हेमंत को अपना उपकारी समझते थे। अपनी इस विरहावस्था में भी ऊर्मिला को अपनी प्रजा का ध्यान निरंतर बना रहता है। वह अपने देवर से पूछती है कि इस बार कपास, धान और ईख की पैदावार कैसी हुई है? अपने देवर से ही इसे पता चलता है कि यद्यपि इस बार भी कृषक

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

की फसल अच्छी हुई है, अन्न, गुड़, गोरस में वृद्धि हुई है, परन्तु इन पदार्थों में कोई स्वाद नहीं है, क्योंकि राम-बनगमन से सारे पदार्थ नीरस बन गये हैं। ऊर्मिला के मन में कुछ देर के लिए कृषक-जीवन का महत्त्व जागृत हो जाता है और वह सोचती है कि इन लोगों का जीवन कितना साधनामय है। इसके विपरीत, राज्य सभी प्रकार के अनर्थों का मूल है, क्योंकि इसी के कारण राम को बनवास मिला, मुझे कारागार का-सा भयंकर दुख मिला और महाराज दशरथ को मृत्यु का वरण करना पड़ा। फिर वह सोचती है कि प्रियतम तभी लौट पायेंगे, जब पृथ्वी चौदह चक्कर पूरे कर लेगी; अर्थात् चौदह वर्ष पूरे हो जायेंगे। फिर उसे संयोगावस्था की एक अन्य घटना याद आ जाती है। वह उसका वर्णन करती हुई अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! ऐसी ही हेमंत ऋतु का जाड़ा था। प्रियतम द्वार का परदा हटाकर अन्दर आये और रोमपट को मेरी गोद में फेंककर बोले कि इस परिधान को ओढ़कर देखो। मैं उसे ओढ़ने के लिए जैसे ही अपने बिस्तरे से उठी कि उन्होंने तुरन्त मुझे अपने बाहु-पाश में बाँध लिया। हम दोनों को इस बात से अतीव आनन्द हुआ।

शिशिर ऋतु भी विरहिणी के भावों को उद्दीप्त करने वाली होती है। शिशिर से जहाँ ऊर्मिला कस्तूरी-गंध से उन्मत्त रहती थी, वहाँ आज सूनापन छाया हुआ है। वह तो इस ऋतु को अपने शरीर में ही देखती है, जहाँ भावों का पतझड़ भी है, शरीर का कम्पन भी है, मुख की पांडुरता भी है और नेत्रों का पानी भी है। वह शिशिर ऋतु में झरोखे से झाँकती हुई किरण का भी स्वागत करती है, और पीतपत्र के प्रति अपनी दया भी व्यक्त करती है। वह ध्वंस में निर्माण देखती है, अतः शिशिर का स्वागत करती है, क्योंकि उसके अन्त में बसंत ऋतु का आदि छिपा हुआ है।

बसंत ऋतु सर्वाधिक मादक एवं उत्तेजक होती है। कवि ने इस ऋतु का भी उद्दीपक रूप में चित्रण किया है। बसंत ऋतु में नवीन पुष्प खिल गये हैं, कोयल मधुर वाणी में गीत गाने लगी है, भौंरों की टोलियाँ खिलती हुई कलियों पर मंडराने लगी हैं। सर्वत्र सुषमा ही सुषमा बिखर गई है। मलयानिल मंद-मंद बहकर विरहिणी को संताप देता है। पुष्पों की चोट करके कामदेव उसे आहत करता है। अशोक वृक्ष भी फूल उठा है। सरोवर अपना सम्पूर्ण वैभव लेकर सुशोभित हो रहे हैं। मधुमक्खी अपने संयम में लग गई है। बसंत ऋतु में खिलती हुई कलियों को देखकर ऊर्मिला को अपने सुख-सम्पन्न दिनों की याद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

आ जाती है और वह सोचती है कि इन कलियों के समान वह भी कभी खिलती हुई और महकती हुई कली थी, पर अब उसे उसका प्रिय भ्रमर छोड़ कर चला गया है। विरह-वेदना से वह इतनी उदार हो गई है कि फूलों का तोड़ना भी उसे कष्ट पहुंचाता है, इसलिए वह अपनी सखी से निवेदन करती है कि वह फूलों को न तोड़े, पर खिले हुए फूलों को चुनने में उसे कोई आपत्ति नहीं है। कभी वह सोचती है कि उसके प्रियतम के चले जाने से उसकी सभी आशा-कलियाँ बिखर गई हैं। इसलिए उसे कोयल की कूक भी लूक की तरह लगती है। फिर भी उसे आशा है कि एक-न-एक दिन उसका प्रियतम अवश्य लौटकर आ जायेगा और उसके विरह-दुख का अन्त हो जायेगा। इसलिए वह अपने दृगम्बु को अपने आँचल में ही सँभाल लेती है, उसे धूल में मिलने नहीं देती।

अपने अपार विरह में भी ऊर्मिला को अपने प्रियतम के हित का ध्यान सदा बना रहता है। इसलिए वह रोकर अपने मन को संकीर्ण नहीं बनने देना चाहती। वह अपने रुदन को भी गीत के समान मधुर मानती है। कभी-कभी उसके मन में यह आता है कि वह भी धाम-धन को छोड़कर उसी बन में जा बसे, जहाँ उसका प्रियतम रहता है। पर साथ ही उसकी यह भी इच्छा है कि वह अपने प्रियतम की साधना में किसी प्रकार का विघ्न न बने। वह सोचती है कि यदि इस बार उसे उसका प्रियतम मिल जाये तो वह उसके चरणों की रज को अपने शरीर पर रमा ले। उसे अपने प्रिय से मिलने की इतनी प्रबल इच्छा है कि वह स्वयं अवधि बनकर और फिर स्वयं को मिटाकर अपने प्रियतम को शीघ्रातिशीघ्र वापिस बुला लेना चाहती है। उसे फिर अपनी संयोगावस्था की वह घटना याद आ जाती है जब उसके प्रिय ने उसके कानों में बात करने के बहाने से उसका चुम्बन कर लिया था और वह उस चुम्बन को पाकर गद्‌गद् हो गई थी। वाटिका, चन्द्र और चाँदनी को देखकर भी उसे संयोग की एक सुखद घटना याद आ जाती है और याद आ जाता है वह परिहास जो उसके प्रियतम ने उसके साथ किया था। इसी परिहास के साथ-साथ झंकार और टंकार (शांति और युद्ध) के विषय में भी उन दोनों में वाद-विवाद छिड़ गया था। ऊर्मिला को विश्वास है कि उसके सुख के दिन फिर लौटेंगे, क्योंकि बारह वर्षों में तो कूड़े के दिन भी फिर आते हैं। वह अपनी विरह-वेदना से अधीर होकर अपनी सखी से विनती करती है कि वह उसे बिल्कुल एकांत

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

रहने दे और उसकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं पर ध्यान न दे। कभी उसे ध्यान आता है कि उसका प्रियतम वन से लौट आता है और छिप-छिपकर सबको देख जाता है। सम्भवत: वह यह देखने के लिए आता है कि हम लोग उसके विरह में किस प्रकार जी रहे हैं। कभी वह सोचती है कि अपने बनवास की अवधि पूर्ण करके उसके प्रियतम आ गये हैं, पर वह उनसे मिलने में संकोच कर रही है।

कभी वह सोचती है कि अवधि को पूर्ण किये बिना ही, और राम तथा सीता को बन में ही छोड़कर, मोह के वशीभूत होकर उसके प्रियतम बन से लौट आये हैं और उसके द्वार पर खड़े हैं। उसे अपने प्रियतम पर बहुत क्रोध आता है, क्योंकि इस बात से उसके सम्मान को तथा उसकी मर्यादा को बहुत ठेस लगी है। वह जी-भर कर उसकी भर्त्सना करती है और उसे वापिस लौट जाने के लिए कहती है। तभी उसे यह अनुभव होता है जैसे उसके प्रियतम उससे कह रहे हों कि तुमने राजसुख भोगा है, अत: तुम बन की विपत्तियों को क्या समझो। किसी की समालोचना करना आसान है, पर स्वयं उस पर खरा उतरना कठिन है। यह कहकर लक्ष्मण तिरोहित हो जाते हैं, और तब ऊर्मिला को अनुभव होता है कि उसने अपने प्रियतम की भर्त्सना करके बहुत ही अनुचित कार्य किया है। वह अपने शब्दों पर अत्यधिक प्रायश्चित्त करती है। वह यह भी स्वीकार करती है कि सुख और दुख दोनों परमात्मा की ही देन हैं। ये दोनों भाव उसके विधान के अनुसार निरंतर चलते रहते हैं। प्रभु की इच्छा के सम्मुख समर्पण कर देना ही मनुष्य का सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। जिसने दुख दिया है वही सुख भी देगा—

'दहन दिया तो भला सहन क्या, होगा तुझे अदेय ?
प्रभु की ही इच्छा पूरी हो, जिसमें सबका श्रेय।'

इस प्रकार अवधि-शिला का भारी भार अपने हृदय पर रखकर वह अपनी अश्रु-धारा से उसे तिल-तिल करके काट रही थी।

—:o:—

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

: १० :

नवम सर्ग का औचित्य

इसमें संदेह नहीं कि 'साकेत' का नवम सर्ग ही साकेत की रचना का आधार है। इसीलिए ऊर्मिला के विषाद का इतना व्यापक एवं बहुमुखी चि... करने पर भी कवि को संतोष नहीं हुआ, क्योंकि उसकी दृष्टि में यह सर्ग ... भी 'अधूरा' है। फिर भी इसका औचित्य विवादहीन नहीं है। गांधी जी... गुप्त जी को लिखे गये एक पत्र में इसके औचित्य पर इन शब्दों में प्र... डाला है—

'ऊर्मिला का विषाद अगरचे भाषा की दृष्टि से सुन्दर है, परन्तु 'सा... में उसको शायद ही स्थान हो सकता। तुलसीदास जी ने ऊर्मिला के बारे... बहुत-कुछ नहीं कहा है, यह दोष माना गया है। मैंने इस अभाव को ... दृष्टि से नहीं देखा। मुझको उसमें कवि की कला प्रतीत हुई है। मानस... रचना ऐसी है कि ऊर्मिला जैसे योग्य पात्र का उल्लेख अध्याहार में रखा... है और उसी में काव्य का और उन पात्रों का महत्त्व है। ऊर्मिला इ... के गुणों का वर्णन सीता के गुण-विशेष बताने के लिए ही आ सकता... परन्तु ऊर्मिला के गुण सीता से कम थे ही नहीं। जैसी सीता, वै... उसकी भगनियाँ। मानस एक धर्म-ग्रंथ है। प्रत्येक पृष्ठ में और प्रत्येक ... में सीताराम का ही जप जपाया है। 'साकेत' में भी मैं वही चीज देखना चा... था, इसमें कुछ भंग उपरोक्त कारण के लिए हुआ।'

इस पत्र का उत्तर, ऊर्मिला के व्यापक विषाद का औचित्य सिद्ध करते... गुप्त जी ने पर्याप्त विस्तार से दिया था। उस पत्र के कुछ आवश्यक ... ये हैं—

'मानस की रचना में ऊर्मिला का अध्याहार करने की बात मैंने पहले भी... है। क्यों नहीं, यह भी एक कला है। इस प्रकार की कला अपने मौन से ... कह देती है, जितना वाणी से नहीं कहा जा सकता। वह अपने विषय को ... नीय अथवा गूँगे का गुड़ बना देती है, परंतु यह भी यथार्थ जान पड़ता ... तुलसीदास को राम और सीता के चरित्र को ही प्रधानता देनी थी। उनके...

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

उचित भी यही था। ऐसी दशा में ऊर्मिला के थोड़े से वर्णन से कदाचित् उन्हें संतोष न होता और अधिक वर्णन से सम्भवतः मुख्य विषय में बाधा पड़ती। जैसा आपने कहा है, उन्होंने प्रत्येक पृष्ठ में और प्रत्येक वाक्य में सीताराम का ही जप जपाया है। रामचरितमानस के नाम से भी यही प्रकट होता है। इसी कारण मैंने अपनी रचना का नाम 'साकेत' रखा। उसमें मुझे सबके दर्शनों की सुविधा मिल गई है और आपने देखा होगा, उसमें मैंने कुछ देर तक मांडवी की झांकी के एवं एक झलक श्रुतिकीर्ति के भी दर्शन पाये हैं तथा शत्रुघ्न का भाषण भी सुना है। मैं नम्रतापूर्वक आपको विश्वास दिलाता हूँ कि तुलसीदास का दोष मानकर अथवा उनसे स्पर्धा करने के लिए मैंने ऊर्मिला का वर्णन नहीं किया है। आपके शब्दों में उनके इस अनुपम धर्मग्रंथ ने ही मुझे इस ओर प्रेमाभिभूत करके आकर्षित किया है। × × × मुख्यतया ऊर्मिला की अनुभूति और अपनी रचना में कुछ नवीनता की इच्छा पर ही 'साकेत' का अस्तित्व है। फिर भी तुलसीदास के उद्देश्य से मेरे उद्देश्य में कुछ भिन्नता तो है ही। सख्य-भाव की उपासना में दीक्षित होते हुए भी मानस के राम के समीप मुझे बहुत सावधान रहना पड़ता है। उनकी मित्रता मानो राजा की मित्रता है, जो हाथी पर चढ़ाते-चढ़ाते शूली पर भी चढ़ा सकती है। इसलिए मुझे उनसे डर लगा रहता है। वह अभ्यस्त भय साकेत में भी नहीं छूटा और मुझे उन्हें प्रभु कहते ही बना है। × × × मेरे लिए तो यही आधार है कि स्वयं देवता नहीं, करुणा तथा लीलामय स्वयं ब्रह्म अपने को अवतीर्ण करके मेरे बाल-विनोद में सम्मिलित हो जायें। इसलिए 'साकेत' के प्रधान पात्रों ने मानो अपनी अलौकिकता को छोड़कर अधिकतर लौकिकता ही धारण कर ली है। तथापि जैसा मैं कह चुका हूँ 'साकेत' में मुझे राम को प्रभु कहते ही बना है। लक्ष्मण में सैनिक भाव की प्रबलता रहते हुए भी वह लौकिकता यथेष्ट मात्रा में होने से मेरी उनके साथ सरलता से निभ जाती है। ऐसी दशा में आप ही बताइये, ऊर्मिला के अध्याहार से मेरा काम कैसे चल सकता था ?

यह ठीक है कि जैसी सीता, वैसी ही उनकी भगनियाँ, परन्तु तत्त्वतः एक होते हुए भी, जैसे मनुष्य-रूप में राम और लक्ष्मण के स्वभाव में विभेद-वैचित्र्य है वैसे ही ऊर्मिला और सीता में होना स्वाभाविक है। यह वैचित्र्य लीलाशील सीताराम को भी इष्ट था। इसी से चार मूर्तियों में वे अवतीर्ण हुए। वस्तुतः रामचरितमानस के सीताराम 'साकेत' में नायकों के भी नायक और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

सबके शिक्षक अथवा शासक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इस नाट्यलीला में
पात्र हैं, सीताराम ही सबके सूत्रधार हैं। मेरे मानस में वे अपना जप
हैं, किन्तु 'साकेत' में पाठ पढ़ाते हैं। 'साकेत' में सीता ही ऊर्मिला
आत्म-विश्वास की शिक्षा देती हैं। × × × ऊर्मिला के विषाद में उसका
विश्वास डूब नहीं गया। यदि अनुकरण करने वालों से ही अनुकरणीय
सार्थकता होती है, तो आत्म-विश्वास के अनुकरण के लिये 'साकेत' में
का एक विशेष स्थान होना चाहिए। परन्तु यदि हम उसे लेंगे तो हमें
विषाद भी लेना पड़ेगा। × × × मैं तो उसके विषाद की हलचल को
भी बढ़ाने की इच्छा रखता था, परन्तु आगे उसमें और भाग न लेने के
पर ही आप मुझे निष्कृति दे दें, तो भी मैं समझूँगा कि मेरा आवेदन
हो गया और कहीं उस विषाद को आप भाषा की दृष्टि से सुन्दर मान
साथ भाव की दृष्टि से भी असुन्दर न समझें तो फिर आपका निर्णय मेरे
में है।'

स्वयं कवि द्वारा पूर्ण वकालत करने पर भी इस सर्ग का औ
असंदिग्ध नहीं माना जा सकता। इसके औचित्य में दो बाधक तत्त्व स्पष्ट हैं
अनावश्यक विस्तार और मनोवैज्ञानिक विरोध। ये दोनों तत्त्व इसके प्रति
की प्रभावान्विति में भी बाधा डालते हैं। पर सत्य है कि जिन परिस्थि
में ऊर्मिला को वियोग मिला, उसकी विरह-वेदना में मार्मिक कसक
स्वाभाविक है। विरहिणी जितना रोये, उतना ही कम है। पर कवि
यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उसका रुदन उसी सीमा तक रहे,
तक वह दूसरों की सहानुभूति पाती रहे। उस सीमा को पार करने के प
दूसरे लोग उसके रुदन से उदासीन होने लगते हैं और एक सीमा ऐसी
है कि वे उससे ऊबकर अपनी सहानुभूति खो बैठते हैं। व्यावहारिक
से भी, और कला की दृष्टि से भी, विरहिणी जितना कम रोती है,
वेदना को अनकही छोड़ देती है, दूसरों से उसे उतनी ही अधिक सहानु
मिलती है। ऊर्मिला सामान्य वर्ग की विरहिणी नहीं है जो सब-कुछ भूल
केवल विरह में ही संतप्त रहती है, आँसू बहाया करती है (यद्यपि इस
की विरहिणियाँ भी ऐसा नहीं करतीं) वरन् विशेष वर्ग की विरहि
जो असीम विरह-वेदना में भी अपनी मर्यादा का, अपने सामाजिक स
का, निरन्तर ध्यान रखती है। ऐसी विरहिणी जितनी कम रोये, उतन

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

श्लाघ्य है। इसी दृष्टि से, गाँधीजी ने अध्याहार की बात की है, जिसका समर्थन करते हुए भी कवि ने इसकी विरह-वेदना को इतना अनावश्यक विस्तार दिया है कि वह भाव और कला दोनों ही दृष्टियों से पंगु बन गया है और अपेक्षित प्रभाव को उत्पन्न करने में असफल रह गया है। इस असफलता का कारण डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में, इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

'नवम सर्ग में विरह का नग्न भाव-चित्र है। भावना सर्वथा अस्त-व्यस्त है। इसीलिए विभिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है। छन्द भी सभी गतिहीन हैं।'

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी इस सर्ग का अनौचित्य सहज सिद्ध है। किन्हीं सबल और सम्मान्य परिस्थितियों के अभाव में विरोध-कथन मनोविज्ञान का सबसे सबल भीषण शत्रु और प्रभाव का प्रबल घातक है। ऊर्मिला के चरित्र के तीन पक्ष इस सर्ग में पूर्णतया स्पष्ट हैं—सामान्य नारी, पतिव्रता नारी और मर्यादाशील नारी। सामान्य नारी के रूप में वह अपनी विरह-वेदना में रोती है, खूब रोती है। पतिव्रता नारी के रूप में वह अपने पति की साधना में किसी भी प्रकार बाधक बनना नहीं चाहती, भले ही उसे कितनी ही विषम विरहाग्नि को सहन करना पड़े। मर्यादाशील नारी के रूप में वह अपने पति को अपने द्वार पर आया जानकर उसकी इतनी भर्त्सना करती है कि उसकी सभ्यता और शालीनता सुवक पड़ती हैं। जिस नारी को अपनी मर्यादा इतनी प्रिय हो, उसका बिल्कुल न रोना तो निस्संदेह मनोवैज्ञानिक है, परन्तु इतना रोना जितना ऊर्मिला रोती है, तो एकदम अमनोवैज्ञानिक है। उसके चरित्र का यह अन्तर्विरोध अमनोवैज्ञानिक होने के कारण प्रभावान्विति में बाधक होकर अनौचित्यपूर्ण है। इनके अतिरिक्त कृषकों के जीवन की प्रशंसा, शान्ति और युद्ध (झंकार और टंकार) आदि प्रसंग भी अनावश्यक और प्रभावान्विति में बाधक हैं।

—:०:—

SriGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

व्याख्या-भाग

दो वंशों में……विदेही।

शब्दार्थ—दो वंशों में—दो कुलों में, रघुकुल और निमिकुल। पावनी—पवित्र। पूतशीला—(१) पवित्रशीलवाली, (२) पुत्रों के समान शीलवाली। अनासक्त—आसक्तिहीन। गेही—गृहस्थी। पुण्यदेही—पुण्य शरीर वाले, अत्यधिक धर्मात्मा। विदेही—सांसारिक विषयों से विमुख।

अर्थ—राजा जनक के विलक्षण गुणों का वर्णन करते हुए गुप्त जी कहते हैं कि उस राजा जनक की जय हो जिन्होंने अपनी पवित्र-लीला को रघु और निमि दोनों वंशों में प्रकट करके अपने विलक्षण गुणों से इन्हें गौरवान्वित किया, अर्थात् निमिवंश में स्वयं जन्म लेकर और रघुवंश में अपनी पुत्रियों का विवाह करके दोनों वंशों का गौरव बढ़ाया, जिनकी पवित्र शीलवाली अथवा पुत्रों के समान शीलवाली पुत्रियाँ सौ पुत्रों से भी अधिक अपने वंश के गौरव को बढ़ाने वाली हैं, त्यागी पुरुष भी जिनकी शरण में आकर आश्रय लेते हैं, जो आसक्तिहीन होकर भी गृहस्थी हैं, गृहस्थ-धर्म का पालन करने वाले राजा होकर भी योगी हैं, अत्यन्त धर्मात्मा हैं और सांसारिक विषयों से विमुख रहने वाले हैं।

विशेष—१. प्रस्तुत सर्ग का प्रतिपाद्य है ऊर्मिला का विरह-वर्णन। ऊर्मिला राजा जनक की पुत्री हैं। राजा जनक के गुणों का वर्णन करके कवि ने प्रकारान्तर से ऊर्मिला के गौरव का वर्णन किया है।

२. भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि से वह व्यक्ति तथा वंश हेय समझा जाता है जिसमें कोई पुत्र न हो। कवि ने राजा जनक के इस दोष का यह कह कर परिहार किया है—'सौ पुत्रों से अधिक जिनकी पुत्रियाँ पूतशीला।'

३. 'दो वंशों में प्रकट करके पावनी लोक-लीला' में 'लीला' शब्द का प्रयोग राजा जनक की विलक्षणता तथा असाधारणता का सूचक है।

४. यह पद मंगलाचरण है। भारतीय साहित्य में मंगलाचरण के तीन रूप मिलते हैं—आशीर्वादात्मक, नमस्क्रियात्मक और वस्तुनिर्देशात्मक। आशीर्वादात्मक मंगलाचरण में भव-बाधा आदि के हरण की प्रार्थना की जाती

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

है, नमस्क्रिया मंगलाचरण में केवल स्तुति की जाती है और वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण में ग्रन्थ के प्रतिपाद्य का भी निर्देश या संकेत कर दिया जाता है। प्रस्तुत मंगलाचरण है तो नमस्क्रियात्मक, पर इसमें इस सर्ग के प्रतिपाद्य का भी संकेत है। इस सर्ग का प्रतिपाद्य है ऊर्मिला का विरह-वर्णन और उसके माध्यम से उसके उज्ज्वल किन्तु उपेक्षित चरित्र का अंकन। राजा जनक के विलक्षण गुणों के द्वारा कवि बताना चाहता है कि जिस ऊर्मिला ने चौदह वर्षों तक लोक-हित के लिए विरह की भीषण व्यथाएँ झेलीं, वह किसी साधारण परिवार या पिता की पुत्री न थी।

अलंकार—१. 'सौ पुत्रों से अधिक जिनकी पुत्रियाँ पूतशीला' में उपमेय (पुत्रियाँ) का उपमान (पुत्र) से अधिक उत्कर्ष का वर्णन होने से व्यतिरेक अलंकार।

२. 'पूतशीला' में 'पूत' शब्द के दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

३. 'अनासक्त गेही' और 'राजा योगी' में अर्थ के विरोध का आभास होने से विरोधाभास अलंकार।

४. 'पुण्यदेही विदेही' में 'देही' शब्द की निरर्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार।

विफल जीवन········सुख-सा रहा।

शब्दार्थ—विफल—(१) असफल, (२) फलहीन। जीवन—(१) जीवन (२) जल। बहा—(१) व्यतीत हो गया, (२) बह गया। सरस—(१) रसयुक्त, (२) जल से युक्त। दो पद—(१) कविता के दो पद, (२) राम के दो चरण। तव भूमि—(१) तुम्हारा क्षेत्र, (२) तुम्हारी रचना।

प्रथम अर्थ—कवि समय रहते राम की वंदना न कर सका। अपनी इसी दयनीय दशा पर प्रायश्चित्त करता हुआ वह कहता है कि मेरा जीवन असफल होकर व्यर्थ ही व्यतीत हो गया। मुझे खेद है कि मैं राम के चरण-युगल की पूजा करके, उन्हें जल से पखारकर, अपनी कविता के दो पदों को भी रसयुक्त नहीं बना पाया। हे कविते! तुम्हारा क्षेत्र कठिन है, सत्काव्य की रचना सरल काम नहीं है, फिर भी कवि-प्रतिभा के अभाव में केवल श्रम से ही काव्य की रचना करके मुझे उसी प्रकार का सुख मिल रहा है, जिस प्रकार का सुख कवि-प्रतिभा के द्वारा रची हुई कविता से मिलता!

भाव यह है कि यद्यपि सुखदायिनी कविता की रचना करने के लिए कवि-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr
प्रतिभा अपेक्षित है, तथापि राम-विषयक कविता यदि श्रम से भी रची ग वह भी उसी प्रकार का सुख देती है जिस प्रकार का सुख प्रतिभाजन्य क मिलता है क्योंकि राम का चरित्र स्वयमेव सत्काव्य है।

द्वितीय अर्थ—जल का गुण है फलों की उत्पत्ति करना। यही सार्थकता है। किंतु यह जल व्यर्थ में ही बह गया, क्योंकि यह दो पग भी पुष्पित और पल्लवित नहीं कर सका। जिस प्रकार प्रस्तर-भूमि पर कोई प्रभाव नहीं होता, उसी प्रकार प्रतिभाहीन व्यक्ति के लिए सरस रचना दुष्कर है, और जिस प्रकार पर्वत-प्रदेश पर छलछलाता पानी वाला होता है, उसी प्रकार श्रमसाध्य कविता भी, यदि उसका महद् प्रतिभाजन्य कविता की भाँति सुख देने वाली होती है।

तृतीय अर्थ—गुप्त जी से पूर्व महर्षि वाल्मीकि और गोस्वामी तुल ने भी रामायण लिखीं, पर ये दोनों ऊर्मिला के आदर्श चरित्र को अंकित भूल गये। ऊर्मिला के प्रति इनका उपेक्षा-भाव ही बना रहा। गुप्त ज और संकेत करते हुए कहते हैं कि यद्यपि ऊर्मिला का जीवन अत्यंत उज्ज्व पर वह व्यर्थ ही गया, क्योंकि वाल्मीकि और तुलसीदास की कविता के भी उससे सरस नहीं बने, अर्थात् इन दोनों महाकवियों ने इसके चरि उजागर करने के लिए दो पद भी नहीं लिखे। यद्यपि मुझमें इन दोनों की सी कवि प्रतिभा नहीं है, तथापि ऊर्मिला के चरित्र का श्रमसाध्य कवि वर्णन करके भी मैं सहज कविता का-सा आनंद प्राप्त कर रहा हूँ।

विशेष—१. 'विफल जीवन व्यर्थ बहा बहा, सरस दो पद भी न हुए से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं—

(क) कवि की राम के प्रति अनन्य भाव की भक्ति, जो जीवन की सता का मूल कारण है।

(ख) भारतीय काव्य-शास्त्र की यह परम्परा रही है कि कवि अपने के प्रारम्भ में ही वर्गचतुष्टय का—काव्य की रचना का प्रयोजन आदि निर्देश करे। इस पद में कवि ने बताया है कि इस ग्रंथ का प्रयोजन ऊर्मि उस चरित्र का अंकन करना है जो महर्षि वाल्मीकि तथा गोस्वामी तुलसी द्वारा उपेक्षित रहा है।

(ग) इससे कवि की शालीनता भी प्रकट होती है। तुलसीदास ने भी कहा है—

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

'कवित्त विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे।'

२. 'कठिन है कविते ! तव भूमि ही, पर यहाँ श्रम भी सुख-सा रहा' से कवि का यह काव्य-शास्त्रीय सिद्धांत स्पष्ट है कि यद्यपि प्रतिभाजन्य कविता ही आनन्ददायिनी होती है, तथापि महदुद्देश्य के लिए लिखी गई श्रमसाध्य कविता भी उतना ही आनन्द देती है।

अलंकार—१. 'विफल,' 'जीवन,' 'बहा,' 'सरस' और 'पद' के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

२. 'विफल जीवन व्यर्थ बहा बहा,' में 'बहा' शब्द की भावाभिव्यंजक पुनरुक्ति होने से पुनरुक्ति अलंकार।

३. 'पर यहाँ श्रम भी सुख-सा रहा' में साधारण धर्म (आनन्ददायक) का लोप होने से धर्मलुप्तोपमा अलंकार।

करुणे ! क्यों रोती है·········कहे कोई ?

शब्दार्थ—करुणे—हे करुणा ! उत्तर में—(१) जवाब में, (२) उत्तर-रामचरित नामक काव्य में। विभूति—ऐश्वर्य। भवभूति—(१) संसार का ऐश्वर्य, (२) शिव की भस्म, (३) भवभूति नामक कवि जो करुण-भाव के मूर्धन्य कवि माने जाते हैं और जिनका काव्य 'उत्तररामचरित' करुण-भाव का सर्वश्रेष्ठ काव्य है।

अर्थ—हे करुणे ! तू क्यों रोती है ? भवभूति के 'उत्तररामचरित' में तो तू पहले ही बहुत रो चुकी है। यह सुनकर करुणा उत्तर देती है कि मैं इस कारण रो रही हूँ कि जो विरह-भाव मेरी विभूति है, उसे संसार का ऐश्वर्य या शिव की भस्म या भवभूति कवि को ही इसका अंतिम कवि क्यों माना जाये ?

कवि इन पंक्तियों में अपने द्वारा वर्णित विरह-वेदना का औचित्य बता रहा है। वह मानता है कि यद्यपि भवभूति कवि ने विरह-वेदना का इतना सांगोपांग वर्णन किया है कि परवर्ती कवियों के लिए कुछ कहने के लिए प्रायः बचा ही कुछ नहीं है, तथापि यह भाव तो अनंत है, व्यक्ति-विशेष की अपनी-अपनी विरह-वेदना और अपना-अपना रूप होता है। यह भाव संसार-व्यापी है, शिव की भस्म की भाँति कल्याणकारी भी है, अतः इसे तुच्छ या सांत मानना उचित नहीं है। इसलिए विरह-वेदना का जितना भी वर्णन किया जाये उतना ही कम है।

विशेष—१. इन पंक्तियों में कवि ने विरह-वेदना से सम्बद्ध अपने विचार

Sri Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

व्यक्त किये हैं। कवि के अनुसार विरह-वेदना अनंत, संसार-व्यापी और क... कारी भाव है। कवि इस विषय में महाकवि कालिदास से सहमत ... पड़ता है—

'स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वयोगाद् ।
इष्टे वस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशी भवन्ति ॥'

अर्थात् प्रेम को वियोग-दशा में ध्वंसशील बताया गया है, पर वास्त... इष्ट के विरह के कारण उसके प्रति उत्तरोत्तर प्रवृद्ध होते हुए भाव ... राशि के रूप में संचित होता रहता है।

२. पूर्ववर्ती महाकवियों का स्मरण करना भी भारतीय साहित्य की प्रमुख विशेषता रही है। यह सर्ग करुणा-प्रधान है, अतः करुणा के सं... कवि भवभूति का स्मरण करना उचित ही है। भवभूति ने करुण रस ... मूल रस माना है। इस विषय में इनका यह श्लोक अत्यधिक प्रचलित है—

'एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्—
भिन्नः पृथक्पृथगिव श्रयते विवर्तान् ।
आवर्तबुद्बुदतरंगमयान्विकारा—
नम्भो यथा, सलिलमेव हि तत्समस्तम् ।'

अर्थात् एक करुण रस ही निमित्त-भेद से भिन्न होता हुआ पृथक्-... शृंगार आदि परिणामों को आश्रय करता है, ऐसा मालूम पड़ता है। य... एक जल ही भँवर, बुद्बुद् और तरंग-रूप विकारों का आश्रय करता है ... वास्तव में जल ही है।

अलंकार—१. 'करुणा' का चेतन-रूप में वर्णन होने से मानवी... अलंकार।

२. 'उत्तर' और 'भवभति' पदों द्वारा उत्तररामचरित और भवभूति के नाम का बोध होने से मुद्रा अलंकार।

अवध को अपनाकर············व्रत ले लिया !

शब्दार्थ—तपोवन-सा—तपोवन के समान सुख देने वाला। अनुरा... प्रेम। वन का व्रत—वीतरागी होने का व्रत।

अर्थ—अयोध्या को त्याग से अपनाकर राम ने बन को भी तपोव... समान सुख देने वाला बना दिया। भाव यह है—राम ने सहर्ष राजसि... का त्याग कर दिया। उनके इस अपूर्व त्याग ने अयोध्यावासियों को बहुत ...

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

प्रभावित किया। इस प्रकार अपने त्याग के द्वारा राम ने अयोध्यावासियों का हृदय जीत लिया और भरत ने राम के प्रेम के कारण राजभवन में रहकर भी बन का व्रत ले लिया, अर्थात् वे राजभवन में रहकर भी बन-निवासी योगियों का-सा जीवन बिताने लगे।

विशेष—१. ऊर्मिला के विरह का वर्णन करने से पूर्व कवि पृष्ठभूमि के रूप में उन घटनाओं का उल्लेख कर रहा है, जो उसके विरह का कारण बनीं। यद्यपि इन घटनाओं का सविस्तार वर्णन पिछले सर्गों में हो चुका है, तथापि इनका यहाँ पर पुनः उल्लेख इसलिए आवश्यक समझा गया है जिससे ऊर्मिला का विरह और अधिक प्रभावशाली बन जाये।

२. 'अवध को अपनाकर त्याग से' में लक्षणा शब्दशक्ति है, क्योंकि 'अवध' से तात्पर्य 'अवध-निवासियों' से है।

३. राजभवन को पाकर भी भरत ने अपना जीवन वीतरागियों का-सा बिताया। इसका वर्णन गोस्वामी तुलसीदास ने इस प्रकार किया है—

'नन्दगांव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा।
जटाजूट सिर मुनि पटधारी। महि खनि कुस साँथरी संवारी।
असन बसन बासन व्रत नेमा। करत कठिन रिषि-धरम सप्रेमा।
भूषन बसन भोग सुख भूरी। तब तक बचन तजे तिन तूरी।'

अलंकार—१. 'अवध को अपनाकर त्याग से' में अर्थ के बिरोध का आभास होने से विरोधाभास अलंकार।

२. 'वन तपोवन-सा प्रभु ने किया' में 'वन' शब्द की सार्थक और निरर्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार। 'वन तपोवन-सा' में साधारण धर्म का लोप होने से धर्मलुप्तोपमा अलंकार।

३. 'भवन में वन का व्रत ले लिया' में अर्थ के विरोध का आभास होने से विरोधाभास अलंकार और 'वन' शब्द की निरर्थक-सार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार।

स्वामी सहित.............**उपवन भी।**

शब्दार्थ—स्वामि-सहित—पति के साथ। नंदन—स्वर्ग का उपवन। सघन-गहन—भारी और भयानक। कानन—वन। हितार्थ—भलाई के लिए।

अर्थ—सीता ने अपने पति के साथ भारी और भयानक बन को भी स्वर्ग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE, Gr

के उपवन के समान सुखदाई माना और ऊर्मिला ने उन्हीं की भलाई के लि अपने उपवन को भी वन बना लिया।

कहने का भाव यह है कि सीता तो अपने पति के साथ वन चली ग इसलिए उन्हें पति का संग होने के कारण वन में भी सुख मिला। सीता औ राम की भलाई के लिए, उनकी सेवा करने के लिए, ऊर्मिला ने अपने लक्ष्मण को उनके साथ भेजकर अपने सुख को भी विरह के कारण दुः बदल लिया।

विशेष—१. इन पंक्तियों में सीता की अपेक्षा ऊर्मिला के चरित्र महत्ता का वर्णन किया गया है।

२. भारतीय नारी अपने पति को ही अपना सर्वस्व समझती है और उ साथ रहने में ही सुख मानती है। रहीम कवि ने इस भाव को इस प्रकार व्य किया है—

'कहा करौं बैकुण्ठ ले, कल्पवृक्ष की छाँह।
रहिमन ढाक सुहावने, जो प्रीतम गल बाँह॥'

अलंकार—१. 'नंदन माना सघन-गहन कानन भी' में दोष को गुण मा से लेश अलंकार, और 'सघन-गहन' में एकार्थवाची शब्दों की आवृत्ति का आभ होने से पुनरुक्तवदाभास अलंकार।

२. उपवन को वन मानने में अर्थात् गुण को दोष मानने में लेश अलंकार

अपने अतुलित...........धो डाला।

शब्दार्थ—अतुलित—अद्वितीय। कुल-बाला ने—ऊर्मिला ने। अ सलिल—आँसू-रूपी जल।

अर्थ—ऊर्मिला के चरित्र की महत्ता का वर्णन करते हुए कवि कहता कि अपने अद्वितीय कुल में जो काला कलंक प्रकट हुआ था, अर्थात् कैकेयी स्वार्थपरता के कारण रघुकुल को जो कलंक लगा था, वह ऊर्मिला ने सारे सारा अपने आँसू-रूपी जल से धो दिया।

कहने का भाव यह है कि कैकेयी ने अपनी स्वार्थ-साधना के लिए नि राम को चौदह वर्ष के लिए बन भेजकर रघुकुल पर जो कलंक लगा दिया उसी कलंक को ऊर्मिला ने अपने अपूर्व त्याग से मिटा दिया था।

विशेष—१. गुप्त जी कैकेयी के चरित्र के प्रति भी उदार हैं। राम बन भिजवाने का सारा दोष इन्होंने कैकेयी पर नहीं आरोपित किया। ये

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

मानते हैं कि यह तो एक होने वाली घटना ही थी जो कैकेयी के माध्यम से घटित हुई। इसलिए इन्होंने प्रस्तुत पंक्तियों में 'प्रकट हुआ था' क्रिया का प्रयोग किया है। यह प्रयोग इनकी इसी मान्यता का सूचक है।

२. 'कलंक जो काला' में 'काला' विशेषण निरर्थक जान पड़ता है, क्योंकि कलंक तो काला होता ही है। किन्तु इस विशेषण से कवि 'कलंक' की भीषणता बताना चाहता है। अतः इस विशेषण को निरर्थक नहीं मानना चाहिए।

अलंकार—'अश्रु-सलिल' में 'अश्रु' पर 'सलिल' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

भूल अवधि-सुध............जाओ।

शब्दार्थ—अवधि-सुध—लौटकर आने की अवधि की सुधि।

अर्थ—कवि ऊर्मिला की विरह-दशा का वर्णन करता हुआ कहता है कि जब कभी वह लक्ष्मण के चौदह वर्ष पश्चात् लौटने की अवधि की सुधि को भूल जाती थी तो मिलनातुर होकर प्रिय से आने की प्रार्थना करने लगती थी, किंतु जब कभी वह सोती हुई होती थी तो भी अवधि-सुधि आने पर, चौंक कर उठ बैठती थी और चिल्ला उठती थी कि तुम वापिस ही चले जाओ।

भाव यह है कि ऊर्मिला अपनी मर्यादा का सदैव ध्यान रखती थी। उसकी इच्छा थी कि चाहे उसे कितना ही दुख क्यों न सहना पड़े, पर उसकी मर्यादा अकलंकित बनी रहे। यदि उसमें मानव-सुलभ दुर्बलता आ भी जाती थी और वह प्रियतम से मिलने के लिए अत्यन्त आतुर हो उठती थी तो दूसरे ही क्षण वह अपनी इस दुर्बलता पर नियंत्रण कर लेती और अपने प्रियतम से चौंककर कह उठती कि वह वापिस लौट जाये, क्योंकि अवधि की समाप्ति से पूर्व उसका आना कुल की मर्यादा को लांछित कर देगा। इसीलिए वह स्वप्न में भी नहीं चाहती थी कि उसका प्रियतम कुल की मर्यादा को कुचलकर उसके पास आये।

विशेष—१. इन पंक्तियों में कवि ने विरहिणी ऊर्मिला की उद्वेग-दशा का वर्णन किया है।

२. डा० नगेन्द्र ने इन पंक्तियों का विवेचन करते हुए लिखा है—

'उसकी (ऊर्मिला की) मनोदशा में इस समय एक प्रकार की जटिलता है, यहाँ आदर्श और कामना के बीच में संघर्ष है। आदर्श कहता है—'जाओ',

Sri Sri Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

भाव कहता है —'आओ।' इसी द्वन्द्व की अन्तर्धारा उसकी अर्ध-विस्मृति मूल में बह रही है।'

३. डॉ० कन्हैयालाल सहल ने इन पंक्तियों का विश्लेषण करते हुए लिखा है—

'जागृतावस्था में भी जब ऊर्मिला को चौदह वर्षों की अवधि का स्मरण रहता तो वह अपने प्रिय को संयोग-सुख के लिए आमंत्रित करती थी। निद्रा की अवस्था में जब कभी लक्ष्मण से उसका मिलन होता तो वह मध्या नायिका की भाँति चौंककर 'जाओ' कह उठती थी। 'आओ' और 'जाओ' क्रमशः काम और लज्जा के द्योतक हैं। ध्वनि यह है कि ऊर्मिला को सोते-जागते पति का ही ध्यान है। आठ पहर चौंसठ घड़ी ऊर्मिला को स्वामी का ही ध्यान रहता था, इसलिए उसका आत्मज्ञान भी उससे पीछे छूट गया।'

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने इस मंतव्य पर अपनी सम्मति देते हुए लिखा है—

'भूल अवधि-सुध प्रिय से' वाले पद्य में 'आओ' और 'जाओ' से आप (डॉ० सहल ने) जो मध्या की उद्भावना की है, वह मेरे मन में नहीं आई थी। मैंने तो वहाँ यही कहना चाहा था कि जागते में ऊर्मिला भले ही अवधि की सुध भूलकर पीड़ा के कारण कभी अपने प्रिय को पुकार उठती थी, परन्तु स्वप्न में भी वह अवधि के पहले उनका आना नहीं चाहती थी। यदि वे कभी स्वप्न में आ जाते तो 'जाओ' कहकर वह जाग उठती थी।'

अलंकार—भावों का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वाभावोक्ति अलंकार।

मानस-मन्दिर में········आरती आप।

शब्दार्थ—मानस-मन्दिर—हृदय-रूपी मंदिर। प्रतिमा—मूर्ति। थाप—स्थापित करके।

अर्थ—वह सती ऊर्मिला अपने हृदय-रूपी मंदिर में अपने प्रियतम लक्ष्मण की मूर्ति स्थापित करके और स्वयं आरती बन कर उस विरह में जलती रहती थी।

भाव यह है कि ऊर्मिला अहर्निश अपने प्रियतम की याद में डूबी रहती थी और उसके विरह में अत्यंत दुखी होती रहती थी।

विशेष—१. विरहिणी के विरह-दुख को संताप या ताप कहा जाता है। इसमें कवि ने जिस ताप का वर्णन किया है, वह मर्यादित है। डॉ० नगेन्द्र का मंतव्य इन पंक्तियों के विषय में यह है—

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

'ताप का वर्णन साकेत में कम ही हुआ है, उसमें ऊहा है, परन्तु वह सम्भावना और स्वाभाविकता की मर्यादा के परे नहीं जाती।'

२. ऊर्मिला को 'आरती' बताना बहुत ही उपयुक्त एवं भावपूर्ण है। जिस प्रकार आरती स्वयं जलकर अपने आराध्य को आलोकित और सुगंधित करती रहती है, उसी प्रकार ऊर्मिला स्वयं तो विरह-संताप में जल रही है, पर अपने विरह को अपने प्रिय के पथ में बाधा नहीं बनाना चाहती।

अलंकार—१. 'मानस-मंदिर' में 'मानस' पर 'मंदिर' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

२. 'सती पति' में छेकानुप्रास अलंकार।

३. 'बनी आरती आप' में ऊर्मिला पर 'आरती' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

आँखों में········विषम-वियोग।

शब्दार्थ—भोग—सांसारिक सुख। योग—योग-साधना। विषम-वियोग—भारी विरह।

अर्थ—अपने प्रियतम के प्रति ऊर्मिला की तन्मयता का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि विरह के कारण वह सभी प्रकार के सांसारिक सुखों को भूल गई थी; अर्थात् वह सांसारिक सुखों से एकदम उदासीन हो गई थी। उसकी आँखों में सदैव उसके प्रिय की मूर्ति बसी रहती थी। इस प्रकार उसका भारी विरह उसके लिए योग-साधना से भी बढ़ गया।

कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार योग के द्वारा योगी चित्त-वृत्तियों को सांसारिक विषयों से हटाकर अपने आराध्य में तन्मय हो जाता है, उसी प्रकार विरहिणी ऊर्मिला के विरह ने उसे सांसारिक सुखों से हटाकर उसके प्रिय में तल्लीन कर दिया था। इस प्रकार उसका विरह योग से भी अधिक बढ़कर सिद्ध हुआ।

विशेष—भारतीय दार्शनिकों ने योग की व्याख्या की है—'योगश्चित्त-वृत्तिः निरोधः।' अर्थात् चित्त-वृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं। इन पंक्तियों में विरह की योग से तुलना बहुत ही भावपूर्ण है। जिस प्रकार योग से चित्तवृत्तियाँ ईश्वरोन्मुखी हो जाती हैं, उसी प्रकार विरह में विरहिणी के समस्त भाव अपने प्रिय में ही केन्द्रित हो जाते हैं। इसलिए अनेक कवियों ने विरहिणी की तुलना योगिनी से की है। उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

'विषय-संग हुआ सब अस्त था,
नयन-उत्पल अर्ध खुले हुए;
'श्वसन-श्वासन ध्यान-समाधि से,
बन गई थी वियोगिनी योगिनी ।'

अलंकार—१. 'हुआ योग से भी अधिक उसका विषम-वियोग' में उपमान (योग) की अपेक्षा उपमेय (वियोग) का उत्कर्ष वर्णित होने से व्यतिरेक अलंकार।

२. 'योग' और 'वियोग' में 'योग' शब्द की सार्थक और निरर्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार।

आठ पहर··············आत्मज्ञान ।

शब्दार्थ—आठ पहर चौंसठ घड़ी—हर समय । आत्मज्ञान—(१) अपनी सुधि, (२) ब्रह्मज्ञान ।

अर्थ—अपने प्रियतम के प्रति ऊर्मिला की तन्मयता का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि उसे हर समय अपने प्रियतम का ही ध्यान रहता था। अपने प्रिय के ध्यान में वह इतनी डूब गई कि स्वयं अपनी भी सुधि भूल गई। अथवा वह अपने प्रियतम के ध्यान में इतनी निमग्न हुई कि ब्रह्मज्ञान भी स्वयं उससे पिछड़ गया, अर्थात् हीन बन गया।

विशेष—जब विरहिणी अपने प्रियतम की याद में डूब जाती है, तब उस का अपनी सुधि खो देना स्वाभाविक ही है। बिहारी ने भी विरहिणी नायिका की इस दशा का इस प्रकार वर्णन किया है—

'जब जब वै सुधि कीजियै, तब तब सब सुधि जाँहि।
आँखिन आँखि लगी रहैं, आँखौ लागति नाँहि ॥'

अलंकार—१. आत्मज्ञान' के दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

२. 'छूट गया पीछे स्वयं उससे आत्मज्ञान' में 'आत्मज्ञान' (ब्रह्मज्ञान) की हीनता का वर्णन होने से व्यतिरेक अलंकार।

उस रुदंती विरहिणी·········सुवर्ण के ?

शब्दार्थ—रुदंती—(१) संजीवनी नामक जड़ी जिसके लेप से तांबा सोना बन जाता है, (२) रोती हुई, विलखती हुई। रुदन-रस—रुदन-रूपी रस। ताप—(१) ताप, गर्मी, (२) संताप, विरह-दुख। प्रिय-विरह-विक्षेप—प्रिय के विरह से उत्पन्न ... (१) ... (२) ...

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

विभूषण—(१) आभूषण, (२) गौरव की बात। ताम्रपत्र—ताँबे का पत्र।
सुवर्ण—(१) सोना, (२) अच्छा रूप, असाधारण।

अर्थ—कवि ऊर्मिला के विरह के महत्त्व का वर्णन करता हुआ कहता है कि उस रुदंती-रूपी विलखती हुई विरहिणी के रुदन-रूपी रस के लेप से और प्रियतम के विरह से उत्पन्न भावोन्माद-रूपी ताप के द्वारा तपाने से जिनके रूप-रूपी सभी अक्षर कानों के विभूषण-रूपी गौरव की बात होती है. उससे कविजनों के ताम्रपत्र (साधारण काव्य) सोने के (असाधारण) क्यों नहीं बनेंगे?

भाव यह है कि जिस प्रकार संजीवनी नामक जड़ी के रस का लेप करने से और उसे रासायनिक रीति से तपाने से ताँबा सोना बन जाता है, जिसके अनेक रूप के आभूषण वनाकर कानों में पहने जाते हैं, जो वहुत ही सुन्दर प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार रात-दिन विलखने वाली विरहिणी ऊर्मिला के आँसुओं के रस के लेप से और लक्ष्मण के विरह से उत्पन्न भावोन्माद के संताप से कवियों का एक-एक अक्षर कानों को सुखद प्रतीत होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि ऊर्मिला के सात्विक और आदर्श विरह में वह शक्ति है कि यदि कोई कवि इसका वर्णन करे तो उसकी रचना स्वयमेव सरस और रमणीय बन जाती है। अतः ऊर्मिला का विरह सामान्य विरहिणी का विरह नहीं है, वरन् उस आदर्श नारी का विरह है जो साधारण कवियों की कविता को भी सहज ही असाधारणता प्रदान कर देती है।

विशेष—१. इन पंक्तियों में कवि ने ऊर्मिला के महत्त्व का वर्णन किया है, पर कलापक्ष की प्रधानता होने के कारण भाव की सहजाभिव्यक्ति दब गई है।

२. डॉ० कन्हैयालाल सहल ने इन पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार किया है—'रसायन वह कल्पित योग है जिसके द्वारा ताँबे से सोना बनना माना जाता है। रसायन-शास्त्रज्ञ ताम्र को सुवर्ण बना देते हैं। ताम्रपत्र पर लिखी गई ऊर्मिला की कथा रसायन का काम करेगी। ताम्र से स्वर्ण बनाते समय जिस प्रकार रस के लेप और ताप की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार यहाँ रुदंती विरहिणी का रुदन-रस अर्थात् उसके आँसू लेप का काम देंगे और प्रिय विरह का भावोन्माद ताप का काम करेगा। जिस प्रकार ताँबे से सोना बन जाने पर उससे तरह-तरह के कर्णभूषण तैयार हो सकते हैं. उसी प्रकार जिन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

कवियों का एक-एक अक्षर कर्ण-सुखद होता है, उन कवियों के ताम्रपत्र सु... के क्यों नहीं बन जायेंगे ?

अलंकार—१. 'रुदंती', 'ताप', 'वर्ण', 'विभूषण', 'सुवर्ण' आदि में ... अलंकार।

२. 'रुदन-रस' में 'रुदन' पर 'रस' का अभेद आरोप होने से ... अलंकार।

३. 'क्यों न बनते कविजनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के' में काकु के द्वारा ... परिवर्तन होने से काकुवक्रोक्ति अलंकार।

पहले आँखों में थे.........कब थे ?

शब्दार्थ—मानस—(१) हृदय, (२) सरोवर। मग्न—डूबे हुए। अश्... आँसू।

अर्थ—कवि ऊर्मिला के आँसुओं के लिए एक अत्यंत रम्य कल्पना कर... हुआ कहता है कि संयोगावस्था में लक्ष्मण सदैव ऊर्मिला की आँखों के ... रहा करते थे; अर्थात् वह उनकी रूप-छवि देखकर सदा आनंद-विभोर ... थी। वियोगावस्था में वे उसी प्रकार उसके हृदय में समाकर छिप गये, ... प्रकार कोई व्यक्ति किसी सरोवर में कूदकर और उसके पानी में डूबकर ... जाता है। ऊर्मिला की आँखों से निकलने वाले आँसू आँसू नहीं थे, वर... छींटे थे जो लक्ष्मण के द्वारा उसके हृदय-रूपी सरोवर में कूदने से उ... हुए थे।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि की कल्पना का अत्यंत रमणीय रूप दि... देता है। 'वियोगावस्था में लक्ष्मण उसके हृदय-रूपी सरोवर में छिप गये' ... कवि का अभीष्टार्थ यह है कि ऊर्मिला एक पल के लिए भी लक्ष्मण को ... भूलती थी। लक्ष्मण सदैव उसके हृदय में बसे रहते थे।

अलंकार—१ 'मानस' के दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

२. आँसुओं का (उपमेय का) निषेध करके उसके स्थान पर बूंदों (उपमान की) स्थापना किये जाने से अपह्नुति अलंकार।

उसे बहुत थी.........की ओट।

शब्दार्थ—दण्ड—(१) डण्डा, (२) पल। ओट—सहारा, बचाव।

अर्थ—जिस प्रकार किसी दुर्बल व्यक्ति के लिए 'डंडे की एक ही ... ...फी होती है और उसी में उसका प्राणांत हो जाता है, उसी प्रकार सुकु...

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

ऊर्मिला के लिए एक पल का ही विरह काफी था; अर्थात् वह इतनी सुकुमारी और अपने प्रियतम के प्रति आसक्त थी कि एक पल का वियोग भी सहन करना उसकी शक्ति से बाहर था। यह तो उसकी सखी ने प्रशंसनीय कार्य किया कि उसे अपने यत्नों की ओट के द्वारा बचाती रही; अर्थात् यत्न करके उसे मरने से बचाती रही।

विशेष—इन पंक्तियों में ऊर्मिला की सुकुमारता और प्रियतम के प्रति उसके अपार प्रेम का वर्णन है।

अलंकार—१. 'दण्ड' शब्द के दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

२. 'यत्नों की ओट' में 'यत्नों' पर 'ओट' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

मिलाप था..............दार दारा।

शब्दार्थ—धनी—पति, प्रियतम। बनी—नवविवाहिता। आलाप—तान। पंची—वीणा।

अर्थ—ऊर्मिला की विवशता तथा उसके विरह की महत्ता का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि अभी प्रियतम से मिलन दूर था, क्योंकि वह तो चौदह वर्षों के लिए वन गया हुआ था। इस स्थिति में केवल विलाप करना ही नवविवाहिता ऊर्मिला के बस की बात थी; अर्थात् वह केवल विलाप करती थी, इसके अतिरिक्त वह और कुछ कर भी नहीं सकती थी। जिस प्रकार वीणा से दिर दार.दारा आदि स्वर निकल कर अपूर्व करुण रस की सृष्टि कर देते हैं उसी प्रकार ऊर्मिला का विलाप ही हमारे लिए अपूर्व तान है।

कहने का भाव यह है कि ऊर्मिला का विरह बहुत ही कारुणिक है। उसका वर्णन करने से उसी प्रकार स्वयमेव करुण गीत की रचना हो जाती है, जिस प्रकार वीणा के तारों से करुण तान निकलने लगती है।

विशेष—१. इन पंक्तियों में कवि की यह मान्यता स्पष्ट है कि वियोग से सफल गीत की रचना होती है, क्योंकि वियोग गीत अथवा कविता का जनक है। छायावादी कवि पंत ने इस मान्यता को इस प्रकार व्यक्त किया

'वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान,

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

निकलकर आँखों से चुपचाप,
वही होगी कविता अनजान।'

गुप्त जी ने 'यशोधरा' में यही भाव इन शब्दों में प्रकट किया है—

'रुदन का हँसना ही तो गान !
गा-गाकर रोती है मेरी तन्त्री की तान।'

२. भावपक्ष की दृष्टि से पद बहुत महत्त्वपूर्ण है। डॉ० कन्हैयालाल ने इसके भावपक्ष का विश्लेषण करते हुए लिखा है—

'संस्कृत के वर्णिक वृत्त सामान्यतः तुकांत नहीं होते। 'सिद्धार्थ' 'प्रियप्रवास' में भिन्न-तुकांत वर्णिक छंदों का ही प्रयोग हुआ है, किंतु गुप्त की यह विशेषता है कि वे संस्कृत के वर्णिक वृत्तों में भी तुक का निर्वाह चलते हैं। ऊपर के वर्णिक वृत्त (मिलाप था···दार दारा) में केवल तुकांत ही निर्वाह नहीं हुआ है, 'मिलाप', विलाप' और 'आलाप' के कारण आंत तुक भी आ गया है जिसके कारण पद्य में नाद-सौंदर्य की छटा दर्शनीय है। 'विलाप ही अपूर्व आलाप बन गया था' इस प्रकार के विरोधात्मक प्रयोगों काव्य-सौंदर्य में वृद्धि होती है। संगीत की वह तान भी सचमुच अपूर्व है जहाँ विलाप ही आलाप बन गया हो।

अलंकार—१. 'मिलाप ही था बस का बनी का', 'अपूर्व आलाप वही हमा में विलाप को आलाप बताने में अर्थ के विरोध का आभास होने से विरोधाभास अलंकार।

२. 'दिर दार दारा' में ध्वन्यर्थव्यंजना अलंकार।

सींचें ही बस·········भिगोता बहे ?

शब्दार्थ—कलश—घड़ा। कर्त्तरी—कैंची। शाखी—वृक्ष। यथेच्छ इच्छा के अनुसार। क्रीड़ा-कानन-शैल—आनंद-क्रीड़ा वाला उपवन से पर्वत। यंत्रजल—फव्वारा। संसिक्त होना—भीगना। सोता—स्रोत।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि वह उसकी से सभी मालिनों को आज्ञा दे दे कि वे घड़ों में पानी लेकर मेरे उपवन केवल सींचती रहें। कोई भी कैंची लेकर वृक्षों तथा लताओं को न काटें, अपनी इच्छा के अनुसार ही वृक्ष बढ़कर फूल और फल सकें, हरी बेलें अपनी ही इच्छा के अनुसार फैल सकें। आनन्द-क्रीड़ा वाला उपवन से

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

पर्वत फव्वारे से सदा भीगता रहे। हे सखि! चलो, वहीं पर मेरे जीवन का स्रोत सबको भिगोता हुआ बहता रहे।

विरह के कारण ऊर्मिला के भाव बहुत ही करुण हो गये हैं। वह कहती है कि संसार का कोई भी प्राणी या पदार्थ दुखी न रहे। इसीलिए वह अपनी मालिनों को आज्ञा देती है कि वे उसके उपवन को पानी से सींचकर केवल शीतल बनाती रहें। किसी भी प्रकार से किसी वृक्ष की शाखा को या लता को कैंची से न काटा जाये। जहाँ संयोगावस्था में वह पर्वत-खण्ड या प्रस्तर-खण्ड पर लक्ष्मण के साथ आनन्द-क्रीड़ाएँ किया करती थी, उस पर्वत या प्रस्तर-खण्ड पर सदा फव्वारा पानी बरसाता रहे और उसे निरन्तर शीतल बनाए रखे। वह भी अपनी सखी के साथ उसी स्थान पर रहकर अपने विरह-दुख को भुलाती रहे, जहाँ वह अपने प्रियतम के साथ बैठकर आनन्द से क्रीड़ाएँ किया करती थी और अपने जीवन की करुण भावना से संसार के सभी प्राणियों तथा पदार्थों पर दया-भाव दिखाकर उन्हें स्वेच्छा से पनपने का अवसर देती रहे।

विशेष—यह माना जाता है कि वियोग-दशा में व्यक्ति के मन की वृत्तियों का विकास हो जाता है। इन पंक्तियों में विरहिणी ऊर्मिला के करुण भाव की व्यापकता का वर्णन किया गया है। यह वर्णन अत्यन्त मनोवैज्ञानिक तथा ऊर्मिला के उज्ज्वल चरित्र का परिचायक है।

अलंकार—विरहिणी की स्वाभाविक उक्तियों का कथन होने से स्वभावोक्ति अलंकार।

क्या क्या होगा·········तू प्रवीणा!

शब्दार्थ—जताऊँ—आज्ञा दूँ। तूली—तूलिका, चित्र बनाने का ब्रुश। प्रवीणा—चतुर सखी।

अर्थ—जब ऊर्मिला अपनी सखी से यह विनय करती रही है कि वह उसी स्थान पर रहकर अपनी विरह-अवधि को काटना चाहती है, जहाँ वह संयोगावस्था में अपने प्रियतम के साथ आनन्द-क्रीड़ाएँ किया करती थी, तो उसकी सखी पूछती है कि वहाँ पर क्या-क्या सामान पहुँचा दिया जाए? सखी के इस प्रश्न का उत्तर देती हुई ऊर्मिला कहती है कि मैं क्या बताऊँ कि वहाँ क्या-क्या सामान ले जाना चाहिए। आज मेरे पास सामान ही क्या रह गया है जिसके विषय में तुम्हें आज्ञा दूँ। फिर भी तू चित्र बनाने के लिए तूलिका, मन बहलाने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

के लिए पुस्तक और वीणा लेती आना। इनके अतिरिक्त, वहाँ पर ... और पाँचवीं तू होगी। तू तो चतुर सखी है और सारी बातों को जानती है अतः तुझे कुछ विशेष बताने की आवश्यकता नहीं है।

विशेष—१. 'है ही क्या, हा!' से ऊर्मिला की असहाय अवस्था ... प्रियतम के प्रति उसका प्रगाढ़ प्रेम साकार हो उठा है। भारतीय नारी का सर्वस्व उसका पति ही है। यदि उसके पास उसका पति है तो कुछ भी न होते हुए उसके पास सब-कुछ है और यदि उसके पास उसका पति नहीं है तो सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं है। इन शब्दों में ऊर्मिला का यही आदर्श ... मुखरित है।

२. विरहिणी अपना विरह दुख कम करने के लिए या उसे कुछ समय के लिए भूल जाने के लिए या तो अपने प्रियतम का चित्र बनाती है या वीणा बजाती है। यह साहित्यिक परम्परा है। कवि ने इन पंक्तियों में इसी परम्परा का निर्वाह किया है।

अलंकार—'प्रवीणा' विशेषण का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकर अलंकार।

हुआ एक दुःस्वप्न-सा······दिन रात !

शब्दार्थ—दुःस्वप्न-सा—भयानक स्वप्न के समान। उत्पात—... घटना।

अर्थ—अपनी विरह-व्यथा का वर्णन अपनी सखी से करती हुई ऊर्मिला कह रही है कि हे सखि! यह विरह तो भयानक स्वप्न के समान ... घटना उत्पन्न करने वाला बन गया है जो जगने पर भी दिन-रात बना रहता है।

कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार कोई भयानक स्वप्न देखकर व्यक्ति को सारी रात नींद तो आती ही नहीं, दिन में भी वह उसकी ... कर-करके भयभीत होता रहता है, अर्थात् रात-दिन उसे चैन नहीं पड़ता, ... प्रकार यह विरह-व्यथा भी रात-दिन मुझे परेशान किये रहती है। ... कारण न दिन को चैन मिलता है और न रात को।

विशेष—ऊर्मिला की विरह-व्यथा का मार्मिक वर्णन है।

अलंकार—१. 'हुआ एक दुःस्वप्न-सा सखि कैसा उत्पात' में साधारण धर्म का लोप होने से धर्मलुप्तोपमा अलंकार।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

२. 'जगने पर भी वह बना वैसा ही दिन-रात' में कारण के होते हुए भी कार्य के न होने का वर्णन होने से विशेषोक्ति अलंकार।

खान-पान तो ठीक है........कौन उपाय ?

शब्दार्थ—तदनन्तर—उसके पश्चात्।

अर्थ—अपनी विरह-व्यथा का वर्णन करती हुई ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि खाना-पीना तो जीवन के अत्यन्त अनिवार्य अंग हैं और जीवित रहने के लिए खाना-पीना पड़ता ही है। तुम्हारे अनुरोध से मैं कुछ खा-पी लूंगी, लेकिन खाने-पीने के पश्चात् जिस विश्राम की आवश्यकता होती है, उसका तो मेरे पास नितान्त अभाव है।

कहने का तात्पर्य यह है कि मैं अपनी विरह-व्यथा से रात-दिन इतनी दुखी रहती हूँ कि मुझे क्षण भर को भी विश्राम नहीं मिलता। जब मेरा विश्राम ही छूट गया है तो अब खाने-पीने से भी कोई लाभ नहीं है। अतः तुम मुझसे खाना खाने का अनुरोध मत करो।

विशेष—विरह-व्यथा के कारण विरहिणी के सारे सुख नष्ट हो जाते हैं। संसार के किसी भी सुख के प्रति उसकी आसक्ति नहीं रह जाती, यहाँ तक कि उसे खाने-पीने से भी अरुचि हो जाती है। इन पंक्तियों में विरहिणी ऊर्मिला की इसी दशा का वर्णन किया गया है।

अलंकार—प्रकारान्तर से अभीष्टार्थ की अभिव्यक्ति होने से पर्यायोक्ति अलंकार।

अरी व्यर्थ है......कौन खाये ?

शब्दार्थ—व्यंजनों की—भोजनों की। पाक—भोजन। भावे—अच्छा लगता है।

अर्थ—ऊर्मिला की सखी उनके लिए तरह-तरह के भोजन लाई है और उन भोजनों की इसलिए प्रशंसा करती है जिससे ऊर्मिला कुछ-न-कुछ अवश्य खा ले। उसकी बातों को सुनकर ऊर्मिला कहती है, क्योंकि मुझे खाने-पीने की बिल्कुल भी इच्छा नहीं है। इसीलिए तो मैंने तुझसे भोजन नहीं मँगाया, बल्कि तू स्वयं ही इन्हें ले आई है। अतः तू इस थाल को ले जा। यद्यपि अच्छे भोजन में वह स्वाद होता है कि वह बिना भूख के भी अच्छा लगता है, पर उसके प्रति रुचि ही न हो तो तू ही बता, उस भोजन को कौन खा सकता है ?

भाव यह है कि ऊर्मिला अपनी सखी को स्पष्ट बता देती है कि वह भोजन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

नहीं कर पायेगी, क्योंकि उसकी उसके प्रति बिल्कुल भी रुचि नहीं है। वह भोजन का थाल उठाकर ले जाये।

विशेष—१. 'अरी' सम्बोधन घनिष्ठ आत्मीयता का सूचक है।

२. 'तू क्यों इसे आप लाई ?' से यह स्पष्ट होता है कि सखी भोजन लाई थी, ऊर्मिला ने उससे मँगाया नहीं था। इससे सखी की के प्रति घनिष्ठता और ऊर्मिला की भोजन के प्रति अरुचि प्रकट होती है।

अलंकार—'वही पाक है जो बिना भूख भावे' में लोकोक्ति अलं

बनाती रसोई……… अलोंना-सलोंना ?

शब्दार्थ—तृप्ति—संतोष। अलोंना-सलोंना—'नमकहीन और न अर्थात् मीठा और नमकीन।

अर्थ—ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि यदि मेरे प्रियतम यहाँ होते तो मुझे भोजन से इतनी अरुचि न होती, बल्कि अपने ही हा रसोई बनाकर सभी को खिलाती और इस कार्य से मुझे बहुत संतोष मिल लेकिन अब तो विरह-व्यथा के कारण मुझे केवल रोने का ही काम रह है। अपने हाथों से जिस प्रियतम को मीठा और नमकीन भोजन ब खिलाती थी, वह तो बन को गया हुआ है, अतः अब मैं किसके लिए स्वा भोजन बनाऊँ ?

विशेष—१. इन पंक्तियों में ऊर्मिला का आदर्श गृहिणी का रूप चि किया गया है जो अपने ही हाथों से रसोई बनाकर सभी को खिलती है इस कार्य में अतीव तृप्ति का अनुभव करती है।

२. 'खिलाऊँ किसे मैं अलोंना-सलोंना' से ऊर्मिला की अपार वि व्यथा व्यक्त हो रही है।

अलंकार—'अलोंना-सलोंना' में छेकानुप्रास अलंकार।

बन की भेंट……… स्वयं ही जी से।

शब्दार्थ—जीजी से=सीता से। गुड़=मीठा पदार्थ। गोबर=स्वादहीन।

अर्थ—विरह-व्यथिता ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि जब मैं बहन सीता से मिली थी तो उन्होंने भेंट में मुझे एक नई जड़ी दी जिसके खाने से मीठा पदार्थ भी स्वादहीन या कड़ुवा लगने लगता है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

विशेष—१. जब भरत चित्रकूट में राम से मिलने के लिए गये थे तो ऊर्मिला भी साथ थी। सीता ने अपनी बहनों को भेंट में जो जड़ी दी थी, उसका उल्लेख कवि ने 'साकेत' के आठवें सर्ग में इस प्रकार किया है—

'गुरुजन-समीप थे एक समय जब राघव,
लक्ष्मण से बोलीं जनकसुता साऽलाघव—
हे तात ! तालसम्पुटक तनिक ले लेना,
बहनों को बन-उपहार मुझे है देना।'

ऊर्मिला का संकेत उसी जड़ी की ओर है। इस जड़ी को 'गुड़मार' कहा जाता है। इसके खाने से खाने वाले का स्वाद जाता रहता है और गुड़ भी उसे मिट्टी के समान लगने लगता है।

२. इन पंक्तियों का यह अर्थ भी हो सकता है कि जिस प्रकार सीता अपने सारे स्वादों को समाप्त करके अपने प्रियतम के साथ कन्दमूल आदि खाकर ही सुख मानती हैं अर्थात् उन्होंने अपनी जिह्वा का स्वाद समाप्त कर दिया है, उसी प्रकार, जब मैं उनसे बन में मिली थी तो उनसे प्रेरणा पाकर मैंने भी अपनी जिह्वा के सारे स्वाद नष्ट कर दिये हैं। यह प्रेरणा मेरे लिए गुड़मार बूटी के समान है।

अलंकार—'गुड़ गोबर-सा लगे' में उपमा अलंकार !

रस हैं बहुत·········रोग !

शब्दार्थ—रस—(१) वनस्पतियों से खींचा हुआ तरल पदार्थ, (२) आनंद की वस्तुएँ। विषम-प्रयोग—गलत प्रयोग। प्रयोक्ता—(१) वैद्य, (२) प्रियतम। भोग—राजसी सुख।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! यद्यपि इस संसार में अनेक प्रकार के रस हैं, पर बिना वैद्य के उनका गलत प्रयोग विष बनकर जिस प्रकार प्राण-हानि कर देता है, उसी प्रकार यद्यपि मुझे भी अनेक प्रकार की आनंद देने वाली वस्तुएँ प्राप्त हैं, परन्तु प्रियतम के अभाव में उनका प्रयोग अनुचित ही है। इसीलिए राजसी सुख भी मेरे लिए रोग की भाँति कष्टकारक ही बनें हुए हैं।

विशेष—भारतीय नारी का आदर्श यही है कि उसके जीवन का समस्त सुख उसके प्रियतम के साथ ही है। यदि प्रियतम पास नहीं है तो सभी प्रकार

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

की आनंद देने वाली वस्तुएं भी उसके लिए दुखदायिनी बन जाती हैं। के जीवन का यही आदर्श इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है।

अलंकार—१. 'विष है विषम' में 'विष' शब्द की सार्थक और नि आवृत्ति होने से यमक अलंकार।

२. 'रस' और 'प्रयोक्ता' के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

लाई है क्षीर............राज्यशाली ?

शब्दार्थ—क्षीर—दूध। आली—सखी। रंक—गरीब, निर्धन।

अर्थ—जब ऊर्मिला की सखी उसके लिए दूध लेकर आती है तो कहती है कि हे सखि ! तू मेरे लिए दूध क्यों ले आई ? तू मुझसे इसे पी हठ मत कर, क्योंकि मैं इसे नहीं पिऊंगी। मेरे हठ को देखकर तू मुझे हठीले बच्चे की तरह मत समझ लेना जो निर्धन तो है, पर जिसका राजाओं के समान चलता है।

कहने का भाव यह है कि हठ करके यह दूध नहीं पी रही हूँ, बल्कि कुछ भी खाने-पीने की इच्छा नहीं करती है।

विशेष—१. ऊर्मिला अपनी सखियों के प्रति भी सहृदयता का व्य करती है। उसके चरित्र की यह विशेषता इन पंक्तियों में व्यक्त की गई है।

२. बच्चे को राजा बताने से कवि का अभिप्राय यह है कि जिस प्र राजा के प्रत्येक आदेश का पालन होता है, उसी प्रकार बच्चे की भी प्र इच्छा पूरी की जाती है।

अलंकार—१. स्वयं पर शिशु का अभेद आरोप होने से रूपक अलं

२. 'रंक भी राज्यशाली' में अर्थ के विरोध का आभास होने से विरो भास अलंकार।

माना तूने मुझे.........क्या हा !

शब्दार्थ—तरुण विरहिणीयु—वती विरहिणी। आँखों का नीर—आँ

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! मानती हो कि मैं युवावस्था में ही विरहिणी हो गई हूँ और मेरा विवाह वीर पुरुष के साथ हुआ है। इस स्थिति में यदि मैं आँसू बहाती हूँ तो मेरे लि यही बहुत है। इनके अतिरिक्त मुझे और चाहिए भी क्या ?

ऊर्मिला के कहने का भाव यह है कि मेरा विरह-दुख असह्य है, क्यों मैं युवावस्था में ही विरहिणी बन गई हूँ। पर एक वीर-पुरुष की पत्नी होने

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

नाते मुझे वीरोचित धैर्य और मर्यादा का पालन करना चाहिए। इस स्थिति में यदि मैं अपना धैर्य खोकर रो भी लेती हूँ तो मेरे लिए यही बहुत है, अन्यथा वीर-पुरुष की पत्नी होने के नाते तो मुझे रोना भी नहीं चाहिए। इस छूट के अतिरिक्त मुझे और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है; अर्थात् तुम मुझको निरंतर रोती रहने दो। इसमें ही मुझे बहुत सुख और संतोष मिलता है जिसके भाग्य में आँसू पीने लिखे हैं, उसे दूध पिलाने की ज़िद न करो।

विशेष—१. 'वीर के साथ ब्याहा' पदांश के ये अर्थ भी हो सकते हैं—

(क) मैं वीर-पुरुष की पत्नी होते हुए भी अपने धर्म का निर्वाह न कर सकी, अन्यथा मुझे भी अपने प्रियतम के साथ ही बन को चला जाना चाहिए था। मैं अपने धर्म का निर्वाह न कर सकने के कारण प्रायश्चित्त-स्वरूप यदि आँसू ही बहा लूँ तो यही क्या कम है ?

(ख) मैं वीर-पुरुष की पत्नी हूँ। वीर-पुरुष कभी घर पर नहीं रहा करते, वे काम के वशीभूत होकर पत्नी की कोमल भुजाओं में बँधे हुए नहीं रहा करते। अतः मेरे लिए आँसू बहाने के अतिरिक्त और चारा ही क्या है ?

अलंकार—'आँखों का नीर ही क्या कम फिर मुझको' में काकु से अर्थ-परिवर्तन होने के कारण काकुवक्रोक्ति अलंकार।

चाहे फटा फटा············डाली !

शब्दार्थ—फटा-फटा—(१) फटा हुआ, (२) दुख देने वाला। अम्बर—(१) वस्त्र, (२) आकाश अर्थात् भाग्य। अशून्य—(१) अशोभनीय, (२) सहानुभूतिपूर्ण। आली—सखी। अनिल—वायु।

प्रथम अर्थ—विरह-दुख में ऊर्मिला इतनी डूब गई कि उसे अपने वस्त्रों को सँभालने की भी सुधि नहीं रही। जब उसकी सखी उसका ध्यान इस ओर आकर्षित करती है तो वह कहती है कि हे सखि ! यद्यपि वस्त्र फटे हुए हैं, पर वे अशोभनीय नहीं हैं, क्योंकि किसी भी विरहिणी के वस्त्रों का फट जाना स्वाभाविक ही है। फिर भी इन फटे हुए वस्त्रों की महत्ता है, क्योंकि किसी वायु ने धूल लेकर इस अंचल में डाली तो सही।

कहने का भाव यह है कि वह बिल्कुल उपेक्षिता नहीं है। कम-से-कम वायु ने ही उसके प्रति सहानुभूति प्रकट की।

द्वितीय अर्थ—ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि यद्यपि मेरा भाग्य दुःख देने वाला तो है, पर फिर भी वह सहानुभूतिपूर्ण है। इसी कारण तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

वायु ने प्रियतम के चरणों से धूल लाकर मेरे अंचल में डाल दी है, अपनी सहा भूति दिखाकर मेरे विरह-दुख को काफी कम कर दिया है।

विशेष—ऊर्मिला यद्यपि विरह-व्यथा से अत्यंत व्याकुल है, तथापि उ अपने धैर्य और आत्मविश्वास को नहीं खोया है। तभी तो उसे अपने फटे व के प्रति गौरव की अनुभूति और अपने दुर्भाग्य के प्रति आस्था है

अलंकार—'अम्बर' और 'फटा हुआ' शब्दों के दो-दो अर्थ होने से श्ले अलंकार।

धूलि-धूसर हैं........सुपात्र भी !

शब्दार्थ—धूलि-धूसर—धूल में सने हुए। मृन्मात्र—केवल मिट्टी गात्र—शरीर। सुरम्य—सुन्दर। सुपात्र—शोभनीय।

अर्थ—जब विरहिणी ऊर्मिला की सखी उसका ध्यान उसके धूल-भरे वस्त्रों की ओर आकर्षित करती है तो ऊर्मिला उत्तर देती है कि यदि मेरे वस्त्र धूल से भरे हुए हैं तो क्या हुआ ? हमें धूल या मिट्टी से घृणा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि हमारा शरीर भी तो केवल मिट्टी ही है। मेरे ये धूल-धूसरित वस्त्र वल्कल के उन वस्त्रों से तो सुन्दर एवं शोभनीय हैं जिन्हें मेरे प्रियतम प्रवासी बनकर पहने हुए हैं।

ऊर्मिला के कहने का भाव यह है कि जब मेरे प्रियतम वल्कलों के वस्त्र पहने हुए हों, तब तो मुझे ऐसे भी वस्त्र पहनने का अधिकार नहीं है जो पहने हुए हूँ और जिन्हें तुम धूल से भरे कहती हो।

विशेष—दुख में मन दार्शनिक बन जाता है और हर बात में दर्शन-तत्त्व की बात कहने लगता है। ऊर्मिला के मन की भी यही दशा है। यद्यपि इ पंक्तियों में व्यक्त उसकी दार्शनिकता बहुत संगत और प्रभावपूर्ण नहीं है, तथापि यह दुखी मन की मनोवैज्ञानिकता का चित्रण करती है।

अलंकार—'मृन्मात्र गात्र' में छेकानुप्रास अलंकार।

फटते हैं........विचार से ?

शब्दार्थ—फटते हैं—(१) फटते हैं, (२) नष्ट होते हैं। मैले होना—(१) मैले होना, (२) शोभाहीन होना। वस्त्र—(१) वस्त्र, (२) शरीर व्यवहार—(१) प्रयोग, (२) जीवन-यापन करने से।

प्रथम अर्थ—जब विरहिणी ऊर्मिला की सखी उसका ध्यान उसके फटे हुए और मैले वस्त्रों की ओर दिलाती है तो ऊर्मिला कहती है कि प्रयोग करने

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

से सभी वस्त्र फटते हैं और मैले होते हैं। यदि वस्त्रों को इस विचार से पहना जाये तो उनके फटने पर और मैले होने पर पहनने वाले को किसी प्रकार का दुःख न होगा।

द्वितीय अर्थ—जीवन-यापन से सभी शरीर दुखों से शोभाहीन होते हैं और अन्त में मृत्यु के कारण नष्ट हो जाते हैं। यदि शरीरों के इन अनिवार्य धर्मों पर विचार करके जीवित रहा जाये तो शरीर के नष्ट होने पर या उसके शोभा-हीन होने पर मनुष्य को किसी भी प्रकार का दुख नहीं होगा।

ऊर्मिला के कहने का तात्पर्य यह है कि यदि मेरे वस्त्र फटे हुए हैं, या मैले हैं तो मुझे इस बात का तनिक भी दुख नहीं है और न तब दुख होगा, यदि मेरा शरीर शोभाहीन होकर नष्ट हो जाये। क्योंकि जिस प्रकार फटना और मैला होना कपड़े के अनिवार्य धर्म हैं, उसी प्रकार दुखों के कारण शोभा-हीन होना और मृत्यु के द्वारा नष्ट होना शरीर के भी अनिवार्य धर्म हैं।

विशेष—वस्त्रों की और शरीर की समानता का वर्णन करना भारतीय दार्शनिकों की प्राचीन परम्परा है। गीता में भी कहा गया है कि जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को उतारकर नये वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार पुराने शरीर को छोड़कर आत्मा नवीन शरीर धारण करती है—

'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥'

अलंकार—'फटते हैं', 'मैले होते हैं', 'वस्त्र', 'व्यवहार' और 'पहनना' शब्दों के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

पिऊँ ला·········पद मरूँ।

शब्दार्थ—अवधि—बन से वापिस लौटने की चौदह वर्ष की अवधि। अर्णव—सागर। किस विध—किस प्रकार। पद—चरण।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! यदि तू मुझे कुछ-न-कुछ खिला-पिलाकर जीवित ही रखना चाहती है तो ला, जो कुछ भी तू लायेगी, उसे ही मैं पी लूँगी, जो कुछ भी तू लायेगी. उसे ही मैं खा लूँगी और जो कुछ भी तू लायेगी उसे ही मैं पहन लूँगी। तू जो कुछ कहेगी मैं तेरी उसी बात को मान लूँगी। मैं भी चाहती हूँ कि जैसे भी हो, मैं जीवित रहूँ और चौदह वर्ष की अवधि का सागर तर जाऊँ। अर्थात् चौदह वर्ष बाद वन से प्रियतम के लौटने तक मैं जीवित रहूँ। तू जो कुछ भी कहेगी, मैं उसे

R. Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

ही मानूँगी। अब बता कि मैं किस प्रकार धैर्य धारण कर सकती हूँ; अर्थात् मेरे मन में धैर्य किस प्रकार आ सकता है? हे सखि! मेरी तो यही इच्छा है कि चाहे जैसे हो, मैं अपने प्रियतम के वे चरण पकड़ कर ही मानूँ जिनका मुझे निरन्तर ध्यान रहता है।

विशेष—अपने प्रियतम के प्रति ऊर्मिला का अपार प्रेम—आदर्श प्रेम—इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है।

अलंकार—'अवधि का अर्णव' में 'अवधि' पर 'अर्णव' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

रोती हैं.............उसासें।

शब्दार्थ—निरखकर—देखकर। दीन-सी—असहाय-सी बनकर। तीनों सासें—कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी। देवरश्री—शत्रुघ्न। हत—मृतप्राय। बहनें—ऊर्मिला की बहनें, मांडवी और श्रुतिकीर्ति। उसासें—उच्छ्वास, निराशा-भरे साँस।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! मेरी कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी ये तीनों सासें मेरे विरह-दुख को देखकर और स्वयं को असहाय-सी अनुभव करके दूनी रोती हैं। मेरे ही विरह-दुख से दुखी होकर मेरे देवर शत्रुघ्न दुख से दबे रहते हैं। मेरे ही विरह-दुख के कारण मेरी मांडवी और श्रुतकीर्ति दोनों बहनें मृतप्राय सी होकर निराशा और दुख से भरे हुए साँसें छोड़ती हैं। कहने का भाव यह है कि अपने विरह-दुख से केवल मैं ही दुखी नहीं हूँ, वरन् सारा परिवार दुखी है।

विशेष—इन पंक्तियों में ऊर्मिला की सहृदयता का वर्णन किया गया है। वह केवल इसलिए दुखी नहीं है कि वह विरहिणी है, वरन् इसलिए भी दुखी है कि उसके विरह-दुख से उसके परिवार के अन्य जन भी दुख भोग रहे हैं।

अलंकार—एक ही अर्थ वाले 'रोना', 'नत होना', 'उसासें छोड़कर' भिन्न भिन्न शब्दों की आवृत्ति होने से अर्थावृत्ति दीपक अलंकार।

आली, तू ही बता दे...........और पाऊँ।

शब्दार्थ—आली—सखी। विजन—बन, ऊर्मिला अपने निवास-स्थान को अपने प्रियतम के अभाव में विजन समझती है। दीना—सब प्रकार के सुखों से वंचित।

अर्थ—ऊर्मिला जानती है कि वह तो अपने विरह-दुख से दुखी है ही

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

उसके परिवार के अन्य जन भी उसके दुख से बहुत दुखी हैं। इसी भावना के कारण वह अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! तू ही बता, अपने इस राजसी उपवन को, जो प्रियतम के अभाव में मुझे वन की भाँति कष्टकारक है, छोड़कर आज मैं कहाँ जाऊँ, जहाँ मैं स्वयं दीना, हीना और अधीना बनी हुई रहकर भी स्वयं शांति प्राप्त कर सकूँ और दूसरे प्राणियों को भी शांति दे सकूँ।

कहने का भाव यह है कि अपनी असहाय अवस्था के कारण मैं और कहीं अन्यत्र भी तो नहीं जा सकती और यदि यहाँ रहती हूँ तो मेरे परिवार के अन्य जन दुखी होते हैं। मैं भी कितनी हतभाग्या हूँ और दूसरों को भी दुखी रखती हूँ। मैं चाहती हूँ कि कोई ऐसा उपाय निकल आये कि मैं स्वयं भी इस भयानक दुख से मुक्त हो जाऊँ और अन्य जनों को भी इससे छुटकारा दे सकूँ।

विशेष—१. ऊर्मिला इतनी सहृदया है कि वह किसी का दुख सहन नहीं कर पाती। इसीलिए वह एक ऐसे उपाय की खोज में है, जहाँ वह स्वयं भी शांति से रह सके और दूसरे लोगों को भी शांति दे सके।

२. ऐसा ही भाव गुप्त जी ने 'यशोधरा' की इन पंक्तियों में व्यक्त किया है—

'फिर भी बता, करे क्या आली,
यशोधरा है अवश, अधीना।
कहाँ जाय वह दीना-हीना,
उन चरणों में ही चिर लीना।'

३. ऊर्मिला अपने राजसी उपवन को वन से समान ही समझती है, जैसा कि कवि ने इन पंक्तियों में बताया है—

'स्वामि-सहित सीता ने
नंदन माना सघन-गहन कानन भी,
वन ऊर्मिला वधू ने
किया उन्हीं के हितार्थ निज उपवन भी।'

अलंकार—१. 'मैं कहाँ आज जाऊँ ?' में काकु से अर्थ-परिवर्तन होने के कारण काकुवक्रोक्ति अलंकार।

२. 'दीना हीना' में स्वर और व्यंजनों की एक बार समता होने से छेकानुप्रास अलंकार।

Ra Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

आई थी सखि............होगा आप।

शब्दार्थ—हर्षोल्लास—हर्ष और उल्लास। निःश्वास—निराशा और दुख। ताप—संताप, दुख।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि मैं अयोध्या में और उल्लास लेकर आई थी; अर्थात् जब मैं यहाँ नवविवाहिता के रूप में थी तो मेरे ही हृदय में हर्ष और उल्लास की भावनाएँ नहीं थीं, वरन् ससुर के परिवार वालों के मन में भी ये ही भावनाएँ थीं। अब भला इन लोगों को निराशा और दुख देकर मैं कैसे मर सकती हूँ, अर्थात् मैं नहीं चाहती कि इस विषम विरह-दुख से मेरा प्राणांत हो जाये और मेरे परिवार के जनों को अपार दुःख हो, अर्थात् मैं इस विरह-दुख को अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ सहन करूँगी। विरह का इतना दुख लेने पर तो मेरे प्राण मरकर भी शांति नहीं पा सकते, क्योंकि यदि ये मर भी गये तो प्रियतम के लौटने पर इन्हें फिर से लौटना पड़ेगा।

विशेष—१. अपने प्रियतम के प्रति ऊर्मिला की गहन आस्था स्पष्ट है।

२. मरकर पुनः मिलने की आशा में करुण विप्रलम्भ होता है। अतः यहाँ करुण विप्रलम्भ है।

साल रही सखि............तुझको।

शब्दार्थ—साल रही—अत्यंत पीड़ा दे रही है। वन—वन में प्रियतम के संग। भवन—राजसी सुख।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से अपने विरह-दुख का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! जब चित्रकूट में मुझसे माँ मिली थी और उन्होंने मुझसे जो बात कही थी, वह बात मेरे हृदय को अत्यंत पीड़ा दे रही है। उन्होंने मुझसे कहा था कि तू बड़ी हतभाग्या है, क्योंकि तुझे न तो सीता की भाँति प्रियतम के साथ रहकर वन का सुख ही मिला है और न मांडवी तथा श्रुतकीर्ति की भाँति राजमहल का ही सुख मिला है।

विशेष—ऊर्मिला की असहाय अवस्था का मार्मिक चित्रण है।

अलंकार—'वन' और 'भवन' में 'वन' शब्द की सार्थक और निरर्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

जात तथा जामाता............कर पाये ?

शब्दार्थ—जात—पुत्र। जामाता—दामाद। तात—पिता, जनक। मँझली माँ को—कैकेयी को।

अर्थ—जब राम के वन-गमन का समाचार राजा जनक ने सुना तो वे तुरन्त अयोध्या आये और उन्होंने कैकेयी के सामने यह प्रस्ताव रक्खा कि राम को राज्य के कारण बन न भेजा जाये। भरत जनकपुर का राज्य ले लें और राम अयोध्या का, परन्तु कैकेयी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। इसी घटना का उल्लेख करती हुई ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! मेरे पिता राजा जनक पुत्र और दामाद को समान समझकर ही, राम-वनवास का समाचार सुनकर, यहाँ अयोध्या में आये थे, पर फिर भी उनका प्रस्ताव स्वीकार न होने के कारण वे कैकेयी माता को अपना राज्य भी नहीं दे पाये।

ऊर्मिला यह कहना चाहती है कि यह मेरे ही भाग्य का दोष है कि राम का वन-गमन न रुक सका, अन्यथा मेरे पिताजी ने जो प्रस्ताव रक्खा था, वह इस समस्या का सबसे अच्छा समाधान था।

विशेष—१. यह घटना गुप्तजी की मौलिक उद्भावना है जो वक्तव्य को मार्मिक बनाने में बहुत ही सफल है।

२. हर बात का दोष अपने ही सिर पर मँढ़ लेना ऊर्मिला की सहृदयता का एवं उसकी असहाय अवस्था का द्योतक है।

अलंकार—१. 'समान' और 'मान' में 'मान' शब्द की निरर्थक और सार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार।

२. 'जात' और 'तात' में समान स्वर तथा व्यंजनों की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास अलंकार।

मिली मैं स्वामी से........रह गया !

शब्दार्थ—स्वामी से—प्रियतम से। उपालम्भ—शिकवा। निरख—देखकर। निरख दया—दया का वह भाव जिसे वे वाणी से न कह सके।

अर्थ—ऊर्मिला अपने अन्य परिजनों के साथ चित्रकूट जाकर लक्ष्मण से मिली थी। उसी घटना का वर्णन वह अपनी सखी से करती हुई कहती है कि सखि! यह ठीक है कि मैं चित्रकूट जाकर अपने प्रियतम से मिली थी, पर अपनी कोई भी बात मैं उनसे न कह सकी। उन्हें देखकर तो मैं अपनी सुधि-बुधि ही खो बैठी थी। उन्हें देखकर भावावेश के कारण मेरी आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली जिसमें मेरे सभी उपालम्भ गलकर बह गये। मुझे देखकर

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

उन्हें भी मेरे ऊपर दया आई, पर वे अपने दया के भाव को वाणी से न सके। उनकी उसी असमर्थता का और उसमें छिपी हुई मर्मांतक पीड़ा अनुभव करके मैं निरंतर पीड़ित होती रहती हूँ।

भाव यह है कि मुझे अपनी पीड़ा इतना दुख नहीं देती, जितनी प्रिय की वह पीड़ा देती है, जो चित्रकूट में मैंने उनके मुख-मंडल पर देखी थी जिसे वे वाणी से व्यक्त नहीं कर पाये थे।

विशेष—१. विरही और विरहिणी की अवस्था का मनोवैज्ञानिक मार्मिक चित्रण करने में कवि को सफलता मिली है।

२. चित्रकूट मे मिलन के अवसर पर भी कवि ने ऊर्मिला की ऐसी ही का चित्रण किया हैं—

'हा स्वामी! कहना था क्या क्या
कह न सकी, कर्मों का दोष!
पर जिसमें संतोष तुम्हें हो
मुझे उसी में है संतोष।'

३. विरह की लम्बी एवं मर्मांतक वेदना सहने के पश्चात् जब यशोधरा का उसके प्रियतम से मिलन होता है, तब उसकी भी यही दशा होती है—

'मेरे स्वप्न आज ये जागे,
अब वे उपालम्भ क्यों भागे?
पाकर भी अपना धन आगे,
भूली-सी मैं भान!'

अलंकार—'पर कह सकी क्या सँभल के' में काकु के द्वारा अर्थ-परिवर्तन होने से काकुवक्रोक्ति अलंकार।

न कुछ कह सकी········हृदय से।

शब्दार्थ—सखेद—दुख से भरा हुआ।

अर्थ—लक्ष्मण के साथ चित्रकूट में हुई अपनी मिलनावस्था का वर्णन अपनी सखी से करती हुई ऊर्मिला कह रही है कि हे सखि! भय के कारण तो मैं उनसे अपनी ही कुछ बात कह सकी और न उनकी ही पूछ सकी। मुझे देखकर जैसे वे अपने-आप को ही भूल गये थे। उनका हृदय दुख से भर गया था, मानो उस दुख-भरे हृदय से उन्होंने मेरी समस्त व्यथा को कह दिया हो।

विशेष—१. प्रेम की बातें अनकही ही कही जाती हैं। बिहारी की नायिका

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding by MoE-Grant

भी इस सिद्धांत का प्रतिपादन इन शब्दों में करती है—

'कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेस लजात।
कहिहै सब तेरो हियो, मेरे हिय की बात।।'

२. विरह की दीर्घ अवधि के पश्चात् जब यशोधरा का अपने प्रियतम से मिलन होता है, तब उसकी यही दशा होती है—

'मेरे स्वप्न आज ये जागे,
अब वे उपालम्भ क्यों भागे ?
पाकर भी अपना धन आगे,
भूली-सी मैं भान !'

अलंकार—विरहिणी के स्वाभाविक कथन होने से स्वभावोक्ति अलंकार।

मिथिला मेरा ·········भूल !

शब्दार्थ—मूल—जन्म-स्थान। फूल—फूल की भाँति विकसित होने का स्थान। रह जाती हूं भूल—अपनी सुधि-बुधि खो बैठती हूँ।

अर्थ—चित्रकूट की महिमा के विषय में सोचती हुई ऊर्मिला कहती है कि मिथिला मेरा जन्म-स्थान है, अयोध्या मेरा फूल की भाँति विकसित होने का स्थान है। लेकिन चित्रकूट को क्या कहूँ, यह मेरी समझ में नहीं आता। जब मैं चित्रकूट की महिमा के विषय में सोचती हूँ तो इतनी भाव-विभोर हो जाती हूं कि अपनी सुधि-बुधि ही खो बैठती हूँ।

कहने का भाव यह है कि मिथिला और अयोध्या की अपेक्षा चित्रकूट का मेरे लिए सर्वाधिक महत्त्व है, क्योंकि वहाँ पर मेरे प्रियतम निवास करते हैं।

विशेष—१. इन पंक्तियों में प्रकारांतर से ऊर्मिला ने अपने प्रियतम के प्रति अपनी गहन घनिष्ठता व्यक्त की है।

२. 'मूल' और 'फूल' प्रतीकात्मक प्रयोग हैं।

अलंकार—प्रकारांतर से अभीष्टार्थ की अभिव्यक्ति होने से पर्यायोक्ति अलंकार।

सिद्ध-शिलाओं·········उच्च उदार।

शब्दार्थ—सिद्ध शिलाएँ—वे शिलाएँ जिन पर बैठकर सिद्ध लोग सिद्धि प्राप्त करते हैं, अथवा वे शिलाएँ जो सिद्ध हैं और जिन पर बैठकर सहज रूप से सिद्धि प्राप्त हो जाती है। गौरव-गिरि—उच्च गौरव से युक्त, महान् गौरव-

Ram Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

शाली। उच्च-उदार—अत्यंत दयालु। पत्रमय—पत्तों से भरे हुए। छ
छाता। आड़—ओट। वहु जीव—अनेक प्रकार के प्राणी।

अर्थ—चित्रकूट की शोभा का वर्णन करती हुई ऊर्मिला कहती है कि
चित्रकूट! तुम उन शिलाओं के आधार हो जिन पर बैठकर सिद्ध लोग
प्राप्त करते हैं, अथवा जो सिद्ध हैं और जिन पर बैठने से सहज रूप
सिद्धि प्राप्त हो जाती है। तुम महान् गौरवशाली और अत्यन्त दयालु हो।

तुझ पर ऊंचे-ऊँचे झाड़ उगे हुए हैं। हे पर्वत! तुझ पर पत्तों से
वृक्ष अपने पत्तों को इस प्रकार फैलाये हुए हैं जैसे छाते तने हुए हों। गर्मी
आदि के कष्टों से बचने के लिए तेरी ओट विलक्षण है; अर्थात् तू सभी
गर्मी-सर्दी आदि से पूर्ण रक्षा करता है। तुम पर अनेक प्रकार के जीव स्व
होकर विचरण करते रहते हैं। तुम महान् गौरवशाली और अत्यंत दयालु हो।

विशेष—१. प्रकृति का मानवीकरण-रूप में चित्रण।

२. ऊँचे-ऊँचे झाड़ों में भी सौन्दर्य-दर्शन करना ऊर्मिला के प्रियतम
के कारण है, क्योंकि जहाँ उसका प्रियतम रहता है, वहाँ सर्वत्र उसे सौन्द
सौन्दर्य दिखाई देता है।

अलंकार—अचेतन प्रकृति का सचेतन के रूप में वर्णन होने से मान
करण अलंकार।

घिरकर तेरे········उच्च उदार!

शब्दार्थ—घन—बादल। घोर—गर्जन। गुंजार—गूंज, भौरों की

अर्थ—चित्रकूट की शोभा का वर्णन करती हुई ऊर्मिला कहती है
चित्रकूट! जब तेरे चारों ओर घिरकर बादल गर्जन करते हैं तो वह
बहुत ही सुहावना लगता है। उस गर्जन को सुनकर मोर आनन्द-विभोर
नाच उठते हैं और तुझ पर भौंरों की गहरी गूंज गूंज उठती है। तुम
गौरवशाली एवं अत्यन्त दयालु हो।

विशेष—प्रकृति का मानवीकरण-रूप में चित्रण।

अलंकार—१. प्रकृति पर चेतना का आरोप होने से मानवी
अलंकार।

२. 'नाच-नाच गाते हैं मोर' में 'नाच' शब्द की भाव-व्यंजक आवृत्ति
से पुनरुक्ति अलंकार।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

नहलाती है........उच्च उदार।

शब्दार्थ—वृष्टि—वर्षा। आतप-सृष्टि—धूप का विस्तार। ऋतुपति—वसंत।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला चित्रकूट की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे चित्रकूट ! आकाश वर्षा करके तुझे नहलाता है, धूप का विस्तार तेरे अंगों के कणों को पोंछकर तुझे सौन्दर्य प्रदान करता है, चन्द्रमा तेरी दृष्टि को शीतल बनाता है और वसंत ऋतु तेरा श्रृंगार करती है। तुम महान् गौरवशाली एवं अत्यन्त दयालु हो।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने वर्षा-ऋतु, ग्रीष्म-ऋतु, शरद-ऋतु और वसन्त-ऋतु का संकेत देखकर बताया है कि ये ऋतुएँ बारी-बारी से चित्रकूट पर्वत पर आती हैं और उसे सौन्दर्य प्रदान करती हैं।

अलंकार—१. प्रकृति का सचेतन रूप में वर्णन होने से मानवीकरण अलंकार।

२. अहेतु में हेतु की कल्पना होने से हेतूत्प्रेक्षा अलंकार।

तू निर्झर का......उच्च उदार !

शब्दार्थ—निर्झर—झरना। दुकूल—वह लम्बा वस्त्र जो कि महापुरुषों के स्वागत के लिए उनके चरणों में बिछाया जाता है। स्वागतार्थ—स्वागत के लिए। दरियों के—गुफाओं के।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला चित्रकूट की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि चित्रकूट ! तू झरनों का दुकूल बिछाकर, कंदमूल, फल और फूल लेकर और गुफाओं के द्वार खोलकर सबके उचित स्वागत के लिए सदैव तैयार रहता है। तू महान् गौरवशाली और अत्यन्त दयालु है।

कहने का भाव यह है कि चित्रकूट पर्वत पर सदैव स्वच्छ झरने बहते रहते हैं। वह कंदमूल, फल और फूलों का भंडार है और उसमें अनेक सुन्दर गुफाएँ हैं।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि की कल्पना अत्यन्त सजीव एवं रमणीय है।

अलंकार—१. अहेतु में हेतु की कल्पना होने से हेतूत्प्रेक्षा अलंकार।

२. 'निर्झर का दुकूल' और 'दरियों के द्वार' में क्रमशः निर्झर पर दुकूल और दरियों पर द्वार का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

३. प्रकृति का सचेतन रूप में वर्णन होने से मानवीकरण अलंकार।

सुदृढ़ धातुमय……उच्च उदार !

शब्दार्थ—सुदृढ़—अत्यन्त मजबूत। धातुमय—विविध धातुओं से… उपल—पत्थर। अन्तःस्थल—हृदय। समशीतोष्ण—सर्दी और गर्मी में…

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला चित्रकूट की शोभा का वर्णन करती हुई… है कि हे चित्रकूट ! तेरा शरीर अत्यन्त मज़बूत है, विविध धातुओं से… और पत्थर का बना हुआ है फिर भी तेरे हृदय में निर्मल जल की धार… है। तू अटल है, अचल है, धीर और गम्भीर है। तू सर्दी और गर्मी को… भाव से ग्रहण करने वाला और शांति-सुख का सार है। तू महान् गौर… और अत्यन्त दयालु है।

विशेष—प्रकृति का सचेतन रूप में चित्रण है।

अलंकार—'पत्थर के शरीर से निर्मल नीर बहने' में अर्थ का… होने से विरोधाभास अलंकार।

विविध राग-रंजित……उच्च उदार।

शब्दार्थ—राग-रंजित—रागों से गूँजता हुआ। अभिराम—… विराग-साधन—वैराग्य का साधन। वन-धाम—वन में आश्रय का… कामद—इच्छा पूरी करने वाला। अकाम—इच्छारहित।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला चित्रकूट पर्वत की शोभा का तथा उसके… का वर्णन करती हुई कहती है कि तू अनेक प्रकार के पक्षियों के मधुर… गूँजता रहता है। तू सुन्दर है, वैराग्य का साधन है और वन में आश्र… स्थल है। भाव यह है कि वीतरागी लोग तुझ पर आकर ही तपस्या… अपनी सिद्धि प्राप्त करते हैं और बन में रहने वाले पशु-पक्षी तुझ पर… बनाकर अपना जीवन-यापन करते हैं। तू यद्यपि दूसरों की हर प्रकार की… को पूर्ण करने वाला है, पर स्वयं इच्छारहित है। मैं तुमको… नमस्कार करती हूँ। तू महान् गौरवशाली और अत्यन्त दयालु है।

विशेष—'राग-रंजित' का यह अर्थ भी हो सकता है—पक्षियों के… राग और गेरू आदि के रंगों से युक्त।

अलंकार—'कामद होकर आप अकाम' में अर्थ के विरोध का… होने से विरोधाभास अलंकार।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

प्रोषितपतिकाएँ……ले आ ।

शब्दार्थ—प्रोषितपतिकाएँ—विरहिणियाँ । समदुःखिनी—समान दुख-...ती । प्रणय-पुरस्सर—प्रेमपूर्वक ।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! जितनी ...रहिणियाँ हों, उन्हें तू निमंत्रण देकर और उन्हें प्रेमपूर्वक मेरे पास बुलाकर ...आ । यदि सभी समान दुखवाली आपस में मिल जायेंगी तो इससे सभी का ...ख बंट जायेगा ।

विशेष—ये पंक्तियाँ ऊर्मिला की व्यापक सहृदयता की प्रमाण हैं। जो ...स दुःख से पीड़ित होता है, वही दुख से पीड़ित की व्यथा जानता है। ...मिला स्वयं विरह-व्यथा से पीड़ित है, अतः वह जानती है कि विरह-वेदना ...तनी मर्मांतक होती है । 'घायल की गति घायल' ही जान सकता है ।

सुख दे सकते हैं……मैं भी भेटूँ ?

शब्दार्थ—भेंटूं—भेंट करूँ, मिलूँ । अभाव—दुख ।

अर्थ—ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि यदि मैं दुखी विरहिणियों से ...लूं तो वे ही मुझे सुख दे सकती हैं । इस नगरी में क्या ऐसी कोई भी नारी ...हीं है जिसके दुःख को मिटाकर मैं सुख प्राप्त कर सकूँ । भाव यह है कि इस ...गरी में निश्चय ही कोई ऐसी दीना-हीना होगी, जो अपने दुख से बिलख ...ही होगी । यदि तू उसे मुझसे मिला दे तो मैं उसका दुख मिटाकर कुछ-न-...कुछ सुख प्राप्त कर लूं ।

विशेष—इन पंक्तियों में ऊर्मिला के चरित्र की उज्ज्वलता स्पष्ट है। वह ...किसी को भी दुखी देखना नहीं चाहती और दूसरों का दुख मिटाने में ही अपना ...सुख मानती है ।

इतनी बड़ी पुरी……हँसी-रोई ?

शब्दार्थ—पुरी—नगरी । हँसी-रोई—सुख में हंसी हो और दुख में रोई ...हो, अर्थात् अपार सुख और अपार दुख मिला हो ।

अर्थ—ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि क्या इतनी बड़ी नगरी में ऐसी ...कोई भी दुखिनी नहीं है जिसने मेरी ही भाँति संयोग के अपार सुख और वियोग ...के अपार दुख भोगे हों ? ऐसी विरहिणी को मैं अपनी सखी बनाना चाहती ...हूँ जिसके साथ रहने से मेरा भी दुख कम हो और उसका भी कम हो ।

विशेष—यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि समान दुख वाले साथ रहकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Gr

अपने दुख का दंश कम अनुभव करते हैं। कवि ने इन पंक्तियों में इसी... वैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन किया है।

अलंकार—'दुखिनी नहीं कोई' और 'मुझसी ही हंसी-रोई' में... द्वारा अर्थ में परिवर्तन होने से काकुवक्रोक्ति अलंकार।

मैं निज ललित-कलाएँ......उपवन में।

शब्दार्थ—ललित-कलाएँ—संगीत, चित्र आदि कलाएँ। वियोग-वेदना... विरह-दुख। पुरबाला-शाला—नगरी की बालाओं के लिए पाठशाला।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि।... विरह-दुख के कारण मैं अपनी संगीत, चित्र आदि ललित कलाओं को... जाऊँ, इसलिए इस उपवन में नगरी की बालाओं के लिए एक पाठ... खुलवा दो, ताकि मैं उन्हें ललित कला पढ़ाती रहूँ। इससे मेरा विरह-दु... कम होगा और मेरी ललित कलाओं का ज्ञान भी बना रहेगा।

विशेष—विरह में विरहिणी का ध्यान ललित कलाओं की ओर जाता... इन पंक्तियों में कवि ने इसी मनोवैज्ञानिक सत्य का चित्रण किया है।

अलंकार—'बाला शाला' में स्वर और व्यंजनों की एक बार समता... से छेकानुप्रास अलंकार।

कौन सा दिखलाऊँ........वाह वाह ?

शब्दार्थ—आलि—हे सखि ! चित्र-रचना की—चित्र बनाने की।... जीजी—राम और सीता। अम्बु—पानी। अवगाह—घुसना। आर्यपु... लक्ष्मण। किंवा—अथवा। कंटक—काँटे।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि!... मन में चित्र बनाने की इच्छा हो रही है। अतः तुम बताओ कि आज मैं... बन के कौन से दृश्य का चित्र बनाकर दिखाऊँ? तुम्हें यह चित्र बना... दिखाऊं कि रास्ते में नाला पड़ा हुआ हो, राम और सीता किनारे पर... हुए हों और मेरे प्रियतम पानी में घुसकर उसकी थाह ले रहे हों। अथवा... चित्र बनाकर दिखाऊँ कि सीताजी आह भरकर और पीछे मुड़कर राम... सहारा लेकर खड़ी हो गई हों और मेरे प्रियतम अत्यन्त दुख के कारण क... हुए उनके पैर से काँटा निकाल रहे हों। अथवा वह चित्र बनाऊं कि... प्रियतम फूलों से भरी हुई बेल को झुकाये हुए खड़े हों और सीता जी प्र...

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

होकर उससे फूल ले रही हों और इस मनोहारी दृश्य को देखकर राम उन्हें वाहवाही दे रहे हों।

विशेष—इस पद की भाषा चित्रात्मक होने के कारण वक्तव्य चित्र को प्रस्तुत करने में समर्थ है।

प्रिय ने सहज········परीक्षा मेरी।

शब्दार्थ—सहज गुणों से—स्वाभाविक गुणों से। दीक्षा—शिक्षा। प्रणय—प्रेम। प्रतीक्षा द्वारा—प्रतीक्षा कराकर।

अर्थ—अपने प्रेम-भाव को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कह रही है कि हे प्रेम ! अपने स्वाभाविक गुणों से प्रियतम ने मुझे जो तेरी शिक्षा दी थी, अर्थात् अपने स्वाभाविक प्रेम-भाव से मेरे मन में जो प्रेम-भाव उत्पन्न किया था, आज वे मुझे विरह-दुख देकर तथा अपने आने की लम्बी प्रतीक्षा कराकर मानो अब मेरी परीक्षा ले रहे हैं।

विशेष—१. विरह में ही प्रेम की परीक्षा होती है, कवि ने इन पंक्तियों में इस सत्य का चित्रण किया है।

२. दीक्षा, प्रतीक्षा और परीक्षा शब्दों का प्रयोग आंतरिक लय में सहायक होकर वक्तव्य के प्रभाव को द्विगुणित करता है।

३. यशोधरा भी विरह-अवधि को अपनी परीक्षा मानता है—

'इस दिन के उपयुक्त पात्र की,
उन्हें खोज थी सारी।
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा,
अब है मेरी बारी।'

अलंकार—अहेतु में हेतु की कल्पना होने से हेतूत्प्रेक्षा अलंकार।

जीवन के पहले प्रभात······भावों की भेरी।

शब्दार्थ—पहले प्रभात में—यौवन की संयोगावस्था में। हृद्गति—हृदय की गति, अपने हृदय के सुखपूर्ण भाव। स्वर्ण-रश्मियाँ—सोने की किरणें। सदय—ममतामय, भावुक। रस—पानी। समीरण—वायु। द्विज—(१) ब्राह्मण, (२) पक्षी। भेरी—दुंदुभी।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपने उन दिनों का वर्णन अपनी सखी सुलक्षणा से कर रही है जब उसके जीवन में नवीन यौवन का आगमन हुआ था, और प्रियतम का संयोग-सुख मिला था। वह कहती है कि हे सखि ! जीवन के

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

पहले प्रभात में जब मेरी आँखें खुली थीं, अर्थात् नवयौवन और प्रियतम सुखद संग मिला था तो मैंने हरी भूमि के पत्ते-पत्ते में अपने हृदय के सु भाव देखे थे। यह सृष्टि सोने की किरणें लेकर अपनी ओर खींच रही अर्थात् यह सृष्टि इतनी सुहावनी लगती थी कि इसकी अपार शोभा की बरबस ही दृष्टि खिच जाती थी। जिस प्रकार ममता से भरे हुए पक्षी अंडों को अपने हृदय के नीचे दबाकर सेते हैं, उसी प्रकार प्रकृति सम्पूर्ण की रक्षा कर रही थी। ओस के पानी की बूंद-बूंद लेकर आकाश तृण को सींच रहा था, उसका पालन-पोषण कर रहा था। समय-रूपी सुख की नौका को खेकर आगे बढ़ रहा था, अर्थात् समय के साथ-साथ सुख भी निरन्तर बढ़ते जा रहे थे। जिस प्रकार ब्राह्मण दुंदुभी शुभ भावों को बढ़ाते हैं, उसी प्रकार पक्षियों के समूह मधुर स्वरों से चह आनन्द बढ़ा रहे थे।

विशेष—प्रकृति का रूप मानव-भावों पर आधारित होता है। यदि सुखद हैं तो प्रकृति का रूप भी सुखद ही दिखाई देगा। इसके विपरीत, भाव दुखद हैं तो प्रकृति का रूप भी दुखद ही दिखाई देगा। ऊर्मिला ने जी के पहले प्रभात में अपने चारों ओर सुख ही सुख देखा था, इसीलिए उसे प्र का रूप भी सुखद ही दिखाई दिया।

अलंकार—१. 'जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी' प्रकारान्तर से अभीष्टार्थ की अभिव्यक्ति होने से पर्यायोक्ति अलंकार।

२. 'हरी भूमि के पात पात' में 'पात' शब्द की भाव-व्यंजक आवृत्ति हो से पुनरुक्ति अलंकार।

३. 'पाल रही ब्रह्मांड प्रकृति थी सदय हृदय में लेकर' में उपमेय उपमान में बिम्बप्रतिबिम्ब भाव होने से दृष्टांत अलंकार।

४. 'तृण-तृण को नभ सींच रहा था बूंद-बूंद रस देकर' में 'तृण' 'बूंद' शब्दों की भाव-व्यंजक आवृत्ति होने से पुनरुक्ति अलंकार।

५. 'समय-समीरण' में 'समय' पर 'समीरण' का अभेद आरोप होने रूपक अलंकार।

६. 'द्विज' शब्द के दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

वह जीवन-मध्याह्न सखी........जो फेरी।

शब्दार्थ—जीवन-मध्याह्न—जीवन की दोपहरी, विरह-व्यथा से

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

जीवन। श्रांति-क्लांति=दुख और थकान। प्रस्वेद-पूर्ण—(१) पसीनों से युक्त, (२) दुखों से भरा हुआ। तीव्रताप—(१) तेज़ धूप, (२) भयंकर संताप, विषम विरह-व्यथा। विषाद—दुख।

अर्थ—दोपहरी के माध्यम से अपने विरह-व्यथित जीवन का वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! जिस प्रकार दोपहरी के आने से जीवन में दुख और थकान आ जाती है, पसीने को लाने वाली तेज़ धूप पड़ने लगती हैं, उसी प्रकार मेरे जीवन की दोपहरी भी मुझे विरह-दुख देकर मेरे लिए थकान और दुख लाई। विरह की विषम व्यथा से मेरा जीवन भर गया। जो आंतरिक शांति एवं भौतिक सुख हमने प्राप्त किये थे, वे सभी खो दिये और खोकर हमें मिला कुछ नहीं। हमारे राम भी हमारे बीच नहीं रहे, वे वन को चौदह वर्षों के लिए चले गए और न उस सिंहासन का सुख ही मिला जिसके लिए उन्हें बनवास दिया गया। वह हर्ष जो हमारे चारों ओर व्याप्त रहता था, समाप्त हो गया और अब हमारे लिए केवल दुख ही दुख बचा है।

विशेष—१. जीवन की विरह-व्यथा की दोपहरी से तुलना करना बहुत ही सार्थक एवं भावपूर्ण है।

२. 'रहे न हममें राम हमारे, मिली न हमको माया' यह 'दुविधा में दोनों गये माया मिली न राम' कहावत का भावानुवाद है।

अलंकार—१. जीवन पर मध्याह्न का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

२. मध्याह्न, प्रस्वेद, ताप आदि शब्दों के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

वह कोइल········मेरी-तेरी।

शब्दार्थ—कोइल—कोयल। कूक रही थी—प्रसन्न होकर बोल रही थी। हूक भरती है—पीड़ा से कराहती है। रोष-वृष्टि—क्रोध की वर्षा। निःश्वास—निराशा-भरे साँस। सुरभि—सुगन्ध। धूलि चलती है—धूल में मिल रही है, व्यर्थ ही नष्ट हो रही है। मेरी-तेरी—किसी की भी।

अर्थ—ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि तीव्र दोपहरी के आने के कारण, जो कोयल पहले आनन्द से प्रसन्न होकर बोल रही थी, वही अब संतप्त होकर पीड़ा से कराह रही है। पूर्व और पश्चिम दिशाओं की लाली

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding: IKS-MoE-Gr

अर्थात् प्रातःकालीन और सायंकालीन प्राकृतिक सुषमा, जो पहले शीतलता प्रदान करती थी, अब क्रोध की वर्षा करती है, अर्थात् शरीर को जलाती है। जो वायु पहले उल्लसित होकर बह रही थी, वही अब इस प्रकार चल रही है जैसे निराशा-भरे साँस लेकर चल रही हो। जो सुगन्धि पहले समूचे वातावरण को मादक बना रही थी, वही अब धूल में मिल रही है, अर्थात् निरर्थक होकर अपनी सत्ता समाप्त कर रही है। जो जलधारा पहले पृथ्वी को सींचती हुई बह रही थी, वही अब उबल कर सूख रही है। जो धरती पहले हरी-भरी थी, वही अब सूख कर निष्प्राण बन रही है। सारे पत्ते और फूल सूख-सूखकर बिखर रहे हैं। वास्तविकता तो यह है कि इस तेज़ दोपहरी के कारण किसी की भी कुशलता नहीं है।

प्रकारान्तर से ऊर्मिला अपने ही विषय में कह रही है कि नवयौवन और प्रिय-संगम के कारण मेरे मन की जो कोयल कभी हर्ष और आनन्द में विभोर होकर कूक रही थी, वही आज विरह-दुख के कारण वेदना के स्वर में बोल रही है। प्रभात और संध्या का सौन्दर्य अब मुझे शत्रु की भाँति दुख देने वाला बन गया है। प्राणों से दुख और निराशा के साँस ही निकलते हैं। मेरे जीवन की सारी कोमल कल्पनाएँ नष्ट हो गई हैं, मेरे मन का सारा रस सूख गया है और मेरे जीवन में स्फूर्ति नाममात्र को भी नहीं रही है। मेरे शरीर के सभी अंग शिथिल एवं शोभाहीन बन रहे हैं। इस प्रकार, इस भीषण विरह-दुख के कारण, मेरे जीवन की तो समूची सार्थकता ही नष्ट हो गई है।

विशेष—१. प्रकृति के माध्यम से ऊर्मिला की दशा का वर्णन बहुत ही सरस एवं प्रभावपूर्ण है।

२. प्रकृति का उद्दीपन रूप में मानवीय भावनाओं के अनुरूप चित्रण वक्तव्य के प्रभाव का उत्कर्ष करता है।

३. 'सुरभि धूल चरती है' में 'चरती है' क्रिया का प्रयोग अत्यन्त भावव्यंजक है।

४. 'कुशल न मेरी-तेरी' से प्रकृति की भयानकता साकार हो उठी है।

अलंकार—'कोइल', 'समीरण', 'सुरभि' आदि केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

आगे जीवन की..........यह चेरी।

शब्दार्थ—जीवन की संध्या—जीवन की वृद्धावस्था, जीवन का अवसान

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

काल। आली—सखी। चन्द्रोदय—चन्द्रमा का उदय, प्रियतम का मिलन। काली—अन्धकार, दुख। उजियाली—चाँदनी, सुख। सिर आँखों पर—पूर्णतया शिरोधार्य, पूर्ण रूप से स्वीकार। कुमुदिनी—कमल की जाति का एक पुष्प जो रात में खिलता है, दुखों को सहन करने वाली। पद-लाली—चन्द्रमा के निकट की लालिमा, प्रियतम के चरणों की शोभा। कोक-शोक—कोकरूपी शोक। तारे—तारागण, टिमटिमाती आशाएँ। प्रभात—प्रातःकाल, शुभ दिन। कृतार्थ—धन्य। चेरी—दासी।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी सुलक्षणा से कहती है कि हे सखि! जीवन का प्रभात तो आनन्द में और जीवन का मध्याह्न विरह में बीत रहा है, पर आगे जो जीवन की संध्या आने वाली है, देखें, उसमें क्या होता है? अर्थात् देखना यह है कि जीवन की वृद्धावस्था किस प्रकार बीतती है? तू कहती है कि संध्याकाल में चन्द्रमा का उदय होगा तथा उजियाली अन्धकार को नष्ट कर देगी, अर्थात् मेरा प्रियतम से मिलन होगा और इस प्रकार मेरे अपार दुख अपार सुख में बदल जायेंगे। मैं तुम्हारी इस बात को पूर्ण रूप से स्वीकार करती हूँ और जिस प्रकार कुमुदिनी रात में खिलकर चन्द्रमा के निकट फैली लाली से आनन्द प्राप्त करती है, उसी प्रकार मैं भी प्रियतम के चरणों की शोभा ग्रहण करके आनन्द-विभोर हो जाऊँगी। परन्तु क्या ये तारे रूपी टिमटिमाती आशाएं मेरे कोक-रूपी शोक की रखवाली कर सकेंगी? अर्थात् क्या जब तक ऐसी ही आशाएँ लेकर मैं जीवित भी रह सकूँगी? क्या तुम सत्य कहती हो कि फ़िर प्रभात होगा? अर्थात् मेरे जीवन में प्रियतम के मिलन का सुख होगा? यदि यह बात तुम सच कहती हो तो यह दासी धन्य हुई। अर्थात् यदि ऐसा हुआ तो मैं अपने जीवन को धन्य एवं भाग्यशाली समझूंगी।

विशेष—१. प्रकृति के माध्यम ने ऊर्मिला की विविध भावनाओं का चित्रण अत्यन्त सरस एवं प्रभावशाली रीति से करने में कवि सफल हुआ है।

२. प्रियतम से मिलन की ऊर्मिला की आतुरता साकार हो उठी है।

अलंकार—१. 'सन्ध्या,' 'चन्द्रोदय,' 'कुमुदिनी,' 'प्रभात' आदि केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

२. 'कोक-शोक' में 'शोक' पर 'कोक' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

सखि विहग उड़ा दे............दारिका मैं।

शब्दार्थ—विहग—पक्षी। मुक्तिमानी—मुक्त, स्वतंत्र। शठ—दुष्ट शुक-वाणी—तोते की आवाज़। सारिका—मैना। वहीं की—मिथिला की त्यक्त—छोड़ी हुई, त्यागी हुई। दारिका—कन्या, पुत्री।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! जि मी पक्षी पिंजड़े में वन्द हैं, उन सभी को उड़ा दो, ताकि वे मुक्त हो आनन्द से इधर-उधर विचरण कर सकें। तभी पिंजड़े में वन्द तोते ने ऊर्मि से वे ही शब्द कह दिये जो एक वार संयोग-काल में लक्ष्मण ने उससे कहे कि हे रानी! मुझसे तुम मत रूठो। उन्हें सुनकर ऊर्मिला अपनी सखी से कह है कि इस दुष्ट तोते की आवाज़ तो सुनो। फिर वह तोते को सम्बोधित क हुई कहती है कि हे खग! मैं तुम्हारी इस वाणी से बहुत प्रसन्न हूँ। कहो जनकपुरी की किसी मैना से तुम्हारा विवाह करा दूं। लेकिन मैं भी तो की कन्या हूँ जो अब त्यागी हुई हूं। अतः मुझे भय लगता है कि कहीं तुम मेरे प्रियतम की भाँति अपनी प्रिया का त्याग न कर दो।

विशेष—१. इन पंक्तियों में ऊर्मिला की अपार सहृदयता तथा करुणा वर्णन है।

२. 'शठ' का प्रयोग लाक्षणिक है जिससे शुक के प्रति ऊर्मिला का अ ममत्व व्यक्त होता है।

अलंकार—'हाय! रूठो न रानी' से ऊर्मिला को मिलनावस्था का स्म हो आता है, अतः स्मरण अलंकार।

कह विहग............गये वे? K.V.V. 1985

शब्दार्थ—विहग—पक्षी, शुक। आचार्य—तुझको पढ़ाने वाले, लक्ष्म विकच—प्रसन्न। वदन—मुख। कृति—वीर। कांत—प्रियतम। मृगया शिकार खेलना। अहेरी—शिकारी। हत—मारी गई।

अर्थ—ऊर्मिला तोते से कहती है कि हे तोते! यह तो बताओ कि तुम् वे आचार्य कहाँ गये हैं जिन्होंने तुमको पढ़ाकर मनुष्य की वाणी में बोल सिखाया है? मेरे वे वीर प्रियतम कहाँ हैं जो प्रसन्न मुखवाले हैं? इस तोता उत्तर देता है कि वे शिकार खेलने गये हुए हैं। यह सुनकर ऊर्मिला क है कि यदि सचमुच ही वे शिकार खेलने गये हैं तो वे नये ही शिकारी क्योंकि वे मुझ मारी हुई हरिणी को यहीं छोड़कर चले गये हैं। यदि वे पु

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

शिकारी होते तो इस प्रकार अपना मारा हुआ शिकार छोड़कर न चले जाते।

विशेष—१. ऊर्मिला की विरह-व्यथा का प्रभावशाली वर्णन है।

२. संवादात्मक शैली ने वक्तव्य के प्रभाव को अधिक तीव्र बना दिया है।

अलंकार—शिकारी के नयेपन का कारण-सहित वर्णन होने से काव्यलिंग अलंकार।

निहार सखि············धनी।

शब्दार्थ—निहार—देखो। सारिका—मैना। श्रवण—कान। भ्रांत-सी—पागल-सी। पिशुन—चुगलखोर। सुभाषिणी—मधुर बोलने वाली। धृति—धैर्य। धनी—प्रियतम।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे सखि! देखो, यह मैना कुछ नहीं कह रही है और शांत-सी बनी बैठी है। लेकिन यह अपने कान इधर ही लगाये हुए है और मैं पागल-सी होकर बातें किये जा रही हूँ। यद्यपि यह मधुर बोलने वाली है, पर इसे तू चुगलखोर जान। यह सुनकर मैना ऊर्मिला से कहती है कि तुम धैर्य धारण करो। इसके उत्तर में ऊर्मिला कहती है कि हे खगि! धैर्य कैसे धारण करूँ? अर्थात् किस प्रकार धैर्य धारण करूं, क्योंकि मेरे धैर्य को तो मेरे प्रियतम अपने साथ ले गये हैं।

विशेष—ऊर्मिला की अधीरता का मार्मिक वर्णन है।

अलंकार—विरहिणी की स्वाभाविक उक्तियों का कथन होने से स्वभावोक्ति अलंकार।

तुझ-पर मुझ पर············क्रूर वहीं!

शब्दार्थ—शशक—खरगोश। क्रूर—कठोर।

अर्थ—खरगोश को सम्बोधित करती हुई ऊर्मिला कहती है कि हे खरगोश! जो एक-साथ तुझ पर और मुझ पर प्रेम से हाथ फेरा करते थे, क्या तुझे पता है कि वे मेरे नाथ आज कहाँ हैं? वे कहीं दूर नहीं हैं, वरन् तेरी ही प्रिय-भूमि वन में हैं। अतः तू वन को चला जा और उनसे कहना कि तुम तो वन में कष्ट भोग रहे हो और वह कठोर हृदय वाली ऊर्मिला आज भी राजभवनों में रह रही है।

विशेष—ऊर्मिला की विरह-व्यथा का मार्मिक वर्णन है।

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अलंकार—'नाथ' का अर्थ है अनाथ बना देने वाले। अतः इस विशेष साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार।

लेते गये क्यों न············बनते सहारे।

शब्दार्थ—कपोत—कबूतर। पत्र-पोत—पत्र-रूपी जहाज। दुखाब्धि—दुख का सागर।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला कबूतर को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे कबूतर! मेरे प्रियतम, जो सदा तुम्हारे ही गुणों की प्रशंसा किया करते थे, तुम्हें न जाने अपने साथ क्यों नहीं लेते गये? यदि वे तुम्हें अपने साथ ले जाते तो तुम प्रियतम के पत्र मुझ तक ला दिया करते और वे पत्र-रूपी जहाज मेरे दुख-रूपी सागर में मेरा सहारा बनते।

विशेष—प्राचीन काल में कबूतरों के द्वारा ही संदेशों का आदान-प्रदान किया जाता था। इसी परम्परा का इन पंक्तियों में उल्लेख करके कवि ने 'काल' का निर्वाह किया है।

अलंकार—'पत्र-पोत' में 'पत्र' पर 'पोत' का और 'दुखाब्धि' में 'दुख' पर 'अब्धि' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

औरों की क्या············चखती!

शब्दार्थ—निज रुचि ही—अपना स्वभाव ही। चंदामृत—चंद्रमा का अमृत।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला चकोरी को सम्बोधित करती हुई कहती है कि औरों के विषय में क्या कहूँ जबकि तुम्हारे अपने स्वभाव में ही एकता नहीं है। हे चकोरि! तेरा स्वभाव इतना चंचल और अस्थिर है कि तू चन्द्रमा का अमृत पीकर भी फिर अंगारे खाती है।

विशेष—यह काव्य-रूढ़ि है कि चकोरी चंद्रमा को अत्यधिक प्रेम करती है और इसी प्रेम के कारण वह अँगारे को चंद्रमा समझकर खाती है। इस विषय में किसी कवि की यह उक्ति है—

> 'लगी लगन छूटै नहीं, जीभ चोंच जल जाय।
> मीठो कहा अंगार में, जाहि चकोर चबाय॥'

विहग उड़ना भी············इनके रहे।

शब्दार्थ—बद्ध—बंदी होकर। द्ये—हे दया मावना। परिजन—(१)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अन्य पक्षी, (२) राजभवन के लोग। बहे—(१) उड़कर चले गये, (२) शोकाकुल हो गये।

अर्थ—ऊर्मिला स्वयं सोचती है कि पिंजड़े में इतने दिनों तक बंदी रहने के कारण ये पक्षी तो अब उड़ना भी भूल गये होंगे। हे दया-भावना! अब यदि इन्हें इनके पिंजड़ों से मुक्त भी करूँ तो यह इनके प्रति और भी निर्दयता का व्यवहार होगा। इन पक्षियों के अन्य पक्षी-साथी भी इन्हें भूल गये होंगे, क्योंकि वे उड़कर इनसे दूर चले गए हैं और ये भी निश्चित रूप से उन्हें भूल गये होंगे, क्योंकि बहुत दिनों से इन्होंने उन्हें देखा भी नहीं है। अथवा, राम के वनवास के कारण भारी शोक में डूबे होने से राजभवन के सब लोग इन्हें भूल गए होंगे और ये भी उन्हें भूल गए होंगे, क्योंकि बहुत दिनों से इन्होंने परस्पर एक-दूसरे को नहीं देखा है। बस, अब तो हम ही इनके साथी-संगी हैं, इनके सभी-कुछ हम ही हैं।

विशेष—इन पंक्तियों में ऊर्मिला की दया-भावना अपनी चरम-कोटि पर दिखाई देती है और इस दया-भावना की प्रचुरता उसके विरह-दुख की प्रचुरता की सूचक है, क्योंकि जो व्यक्ति जितना अधिक दुखी होता है, उसमें दया-भावना उतनी ही अधिक पनपती है।

मेरे उर-अंगार के············तुम लाल !

शब्दार्थ—उर अँगारे के—हृदय के अंगारे के। बाल-गोपाल—बाल-बच्चे अर्थात् अंश। मुनिया—लाल नामक पक्षी की मादा। लाल—रायमुनी नाम की एक छोटी-सी लाल चिड़िया।

अर्थ—रायमुनी नाम की एक छोटी-सी लाल चिड़िया को सम्बोधित करती हुई ऊर्मिला कहती है कि हे लाल! तुम्हारा रंग लाल है, अतः देखने में तुम ऐसी प्रतीत होती हो जैसे मेरे विरह-तप्त हृदय के अंगारे के अंश हो, अर्थात् जिस प्रकार विरह-व्यथा के कारण मेरा हृदय अँगारे के समान लाल हो रहा है, उसी प्रकार तम्हारा शरीर भी लाल है। कहीं तुम विरह-व्यथा से ही तो लाल नहीं बने हुए हो, अतः तुम अपनी मुनियों से (मादाओं से) मिलकर आनंदपूर्वक रहो।

विशेष—लाल पक्षी के प्रति ऊर्मिला की अतिशय दया-भावना उसके विरह-दुख की अधिकता की सूचक है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अलंकार—'उर-अंगार' में 'उर' पर अँगार का अभेद होने से रू[illegible] अलंकार।

K.V.V. 1986

वेदने, तू भा............प्राण-धनी।

शब्दार्थ—भली-बनी—अच्छी बनी हुई है; अर्थात् मुझे अच्छी लगती है। किरण—किरण के समान चमकने वाली आशा। हीर-कनी—हीरे की कनी, हीरे का टुकड़ा। सताना—पीड़ा देना। विशिख-अनी—बाण की नोक। दृगम्बु-सनी—आँसुओं से भीगी हुई। उष्ण—गरम। तपन-मनी—(१) सूर्यकांत मणि, (२) संताप-रूपी मणि। आत्मजा—पुत्री। अदृष्टि-जनी—अदर्शन मा[illegible]। उपमोचितस्तनी—स्तन के लिए उचित उपमा वाली, वात्सल्य भाव से परि[illegible]। वियोग-समाधि—वियोग-रूपी समाधि। ठीक ठनी—ठीक बनी। खिची-तनी—आसक्त और अनासक्त होकर। मानिक—माणिक्य, रत्न। उपल-खनी—[illegible] की खान, मोतियों की खान। प्राण-धनी—प्रियतम।

अर्थ—ऊर्मिला वेदना के महत्त्व का प्रतिपादन करती हुई, अपनी वे[illegible] को सम्बोधित करती हुई कह रही है कि हे वेदने! यद्यपि सारा संसार [illegible] निंदा करता है और तुझसे घृणा करता है, क्योंकि तू मेरी हितकारिणी [illegible] हुई है। आज मैं तुझमें ही अपनी विशाल इच्छा को जान पाई हूँ, अर्थात् [illegible] अपने प्रियतम से कितना अधिक प्रेम था, वह मैं वेदना के कारण ही [illegible] सकी हूँ। जिस प्रकार हीरे के टुकड़े से प्रकाश की किरणें निकलती हैं, [illegible] प्रकार तू मुझे नवीन आशा प्रदान करने वाली है, प्रेम में दृढ़ता लाकर प्रि[illegible] के मिलन के लिए आशा बँधाने वाली है। अतः तू मेरे लिए हीरे के टुक[illegible] समान प्रकाश देने वाली है। तू बाण की नोक के समान मर्मांतक होकर [illegible] मुझे प्रिय लगने वाली है। अतः तू मेरे हृदय को निरंतर पीड़ित करती [illegible] ताकि मैं प्रिय के प्रति अपने प्रेम में शिथिल न हो जाऊं, बल्कि सदैव उ[illegible] ध्यान करती रहूँ। यद्यपि मेरा शरीर सदा आँसुओं से भीगा हुआ रह[illegible] फिर भी यह ठंडा नहीं होगा, क्योंकि तू सूर्यकांतमणि के समान उसे सदैव [illegible] बनाये रक्खेगी। भाव यह है कि वियोग-व्यथा का गहन भार होते हुए [illegible] तज्जन्य वेदना के कारण मैं वियोग की इस लम्बी अवधि में जीवित [illegible] और अन्त में प्रियतम का संयोग-सुख प्राप्त करूंगी। हे वेदने! तू अभाव [illegible] इकलौती पुत्री है और अदर्शन तुम्हारी माता है अर्थात् प्रिय के अभाव में [illegible] न देख सकने के कारण वेदना का जन्म होता है। वास्तव में तेरी ही [illegible]

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

...न के लिए उचित उपमा वाली है। भाव यह है कि जिस प्रकार माँ अपने ...त्सल्य-भाव के कारण अपने बच्चे का पालन-पोषण करती है, उसी प्रकार ...भी जिसे अपनी छाती से लगा लेती हो, उसका हित ही करती हो। तुम ...योग-रूपी समाधि हो, क्योंकि जिस प्रकार योगी समाधि में लीन होकर सारे ...र की आसक्तियों से मुक्त होकर, परमब्रह्म में ही लीन हो जाता है, उसी ...र व्यथित व्यक्ति का हृदय केवल अपने प्रियतम में ही डूबा रहता है, ...र की और सब बातों को वह भूल जाता है। तू विलक्षण गुणों से युक्त है ...र ठीक बनी हुई है, अर्थात् लोग तेरी महत्ता को न समझ कर तेरी निंदा ...ते हैं, वरना अपने स्थान पर तेरा भी महत्त्व है। तेरे ही कारण, मैं स्वयं ... प्रिय को और संसार को कभी आसक्ति से और कभी विरक्ति के भाव से ...। कहने का तात्पर्य यह है कि विरहिणी को कभी तो स्वयं से, अपने प्रिय-...से और संसार से अत्यंत लगाव का भाव हो जाता है और कभी-कभी इन ...के प्रति अलगाव की भावना उत्पन्न हो जाती है। इन विरोधी भावों का ...विरह-वेदना के कारण ही होता है। हे पत्थर (हीरे) की खान! तुझमें ...मुझे मन-सा माणिक्य मिला है अर्थात् तेरे ही कारण मेरे मन में दृढ़ता और ...कता का भाव आया है। हे सजनी! मैं तुझे तभी छोडूंगी जब मेरा ...तम मुझे मिल जायेगा। भाव यह है कि प्रियतम के दर्शन होने पर ही ...वेदना का अन्त होगा।

विशेष—१. इन पंक्तियों में कवि ने वेदना के महत्त्व का प्रतिपादन किया ...यह माना जाता है कि संयोग-सुख में मन की भावनाएँ संकुचित रहती हैं ...विरह-वेदना में वे अत्यंत व्यापक बन जाती हैं, इसलिए संयोग की अपेक्षा ...न का अधिक महत्त्व स्वीकार किया गया है। संस्कृत के आचार्यों ने विरह-...की महत्ता का वर्णन इन शब्दों में किया है—

'न बिना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्धते॥'

अर्थात्—जिस प्रकार वस्त्र का रंग उसमें पुट लगाये बिना पक्का नहीं ... उसी प्रकार विप्रलम्भजन्य वेदना के बिना सम्भोग-सुख पुष्ट नहीं ...।

'संगम विरह विकल्पे वरमिह विरहो न संगमस्तस्याः।
संगे सैव तथैका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे॥'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अर्थात्—संगम और विरह में यदि कोई श्रेष्ठ है तो प्रिया का वि… श्रेष्ठ होता है, संगम नहीं, क्योंकि संगम या सम्भोग की स्थिति में … रह जाती है और विरह की स्थिति में तीनों लोकों के प्रति तन्म… जाती है।

अँग्रेजी के कवि ने भी उसी प्रेम को सुन्दरतम माना है जो आँ… भीगा हुआ हो—

'And love is the loveliest when emblamed in tears.'

२. वेदना का जन्म प्रिय के विरह में होता है। अतः अभाव को वे… पिता और प्रिय के अदर्शन को जननी मानना बहुत ही उपयुक्त है।

३. वेदना को समाधि बताना भी बहुत ही संगत है, क्योंकि जि… समाधि में मन के भाव केन्द्रीभूत हो जाते हैं, उसी प्रकार विरह के… भावनाओं को प्रिय में ही अधिष्ठित कर देती है।

४. 'उपमोचितस्तनी' जैसे समस्त-पदों का प्रयोग गीत की सर… सहज गति के लिए उपयुक्त नहीं है।

५. 'यशोधरा' में भी गुप्तजी ने निम्नलिखित शब्दों में वेदना के म… अभिव्यक्ति की है—

'होता सुख का क्या मूल्य जो न दुख रहता,
प्रिय हृदय सदय हो तपस्ताप क्यों सहता?
मेरे नयनों से नीर न यदि यह बहता,
तो शुष्क प्रेम की बात कौन फिर कहता?
रह दुख, प्रेम परमार्थ दया मैं लाऊँ,
कह मुक्ति, भला किस लिए तुझे मैं पाऊँ?'

अलंकार—१. वेदना का अनेक रूपों में वर्णन होने से उल्लेख …

२. 'नई किरण छोड़ी है' में केवल उपमान का कथन होने से … शयोक्ति अलंकार।

३. 'हीर-कनी', 'विशिख-अनी', 'उपल-खनी' में रूपक अलंकार।

४. 'प्रिय-विशिख-अनी' में विरोधाभास अलंकार।

५. 'मन-सा मानिक' में उपमा अलंकार।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

विरह संग............एक संसार भी !

शब्दार्थ—विरह—वियोग। अभिसार—मिलन। भार—बोझ। आभार—प्रिय। उदार—कृपालु, दयालु। गार दिया है—मिटा दिया है। जना दिया है—बता दिया है। हिये का हार बनना—अत्यन्त प्रिय लगना।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि वियोग में केवल दुख ही नहीं होता, वरन् यदि इसका उज्ज्वल पक्ष देखा जाये तो यह सुख देने वाला भी होता है। इसमें यदि वियोग की वेदना छिपी होती है तो मिलन का सुख भी होता है, क्योंकि वियोग के पश्चात् मिलन होता है और इस मिलन में जो सुख होता है, वह वियोग के कारण ही होता है। यदि वियोग न हो तो फिर मिलन का सुख मिल ही नहीं सकता। वियोग यदि भार होता है तो आभार भी होता है, अर्थात् वियोग में जीवन दुखों के कारण भार-स्वरूप भी प्रतीत होता है और मिलन की सुनहली आशा छिपाये रखने के कारण प्रिय भी लगता है। वियोग के कारण यद्यपि यह राजभवन मुझे पिंजड़े के समान कष्टकारक प्रतीत होता है, किन्तु इसका द्वार भी मेरे लिए खुला हुआ है। कहने का भाव यह है कि यद्यपि मेरा शरीर राजभवन की चहारदीवारी में बंद है, पर वियोग ने मेरे मन को इतनी व्याकुलता एवं स्वच्छंदता दे दी है कि यह अपनी इच्छा के अनुसार कहीं भी उड़कर उसी प्रकार चला जाता है जिस प्रकार पिंजड़े का द्वार खुला रहने पर पक्षी उससे बाहर निकलकर और उड़कर कहीं भी जा सकता है यद्यपि वियोग की अथाह वेदना के कारण यह समय मेरे लिए अत्यंत दुखदायी है, पर मेरे लिए दयालु भी है, क्योंकि यह निरन्तर चलकर प्रियतम के आने की अवधि को समीप लाता जा रहा है। विरह ने जहाँ मुझ मिटाया है, वहाँ मेरे साथ उपकार भी किया है, क्योंकि विरह ने यद्यपि मुझे चेतना-शून्य बना दिया है, किन्तु काल का ज्ञान भी दिया है; अर्थात् मैं सदैव यह जानती हूँ कि प्रियतम के आगमन की कितनी अवधि बीत चुकी है और कितनी शेष है। मैं सांसारिक आकर्षणों को ही सब-कुछ समझती थी, पर विरह ने मुझे यह तात्त्विक ज्ञान दे दिया है कि ये आकर्षण भी कभी-कभी जीवन के लिए भार बन जाते हैं और कभी-कभी मृत्यु भी, जिससे सब लोग घृणा करते और डरते हैं, प्रिय वस्तु बन जाती है। विरह के कारण ही मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ है कि मेरे इस हृदय में केवल प्रेमजन्य वासना की ही आग नहीं है, वरन् करुणा की जलधारा भी है जो मुझको और अन्य दुखी जनों को भी सिक्त करके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

सुख देती है। जब तक मैं संयोग-सुख में तल्लीन थी, तब तक अपने प्रिय के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता था, क्योंकि मैं संसार को भूल अपने अहं को उन्हीं में समोये रहती थी, पर इस विरह के कारण ही मुझे पता चला है कि केवल प्रियतम की ही नहीं, वरन् मेरी और संसार की सत्ता है।

विशेष—१. विरह के उज्ज्वल पक्ष का चित्रण कवि ने अत्यंत तर्क तथा भावमयी शैली में किया है।

२. 'जना दिया है उसने मुझको' में 'जना दिया है' का प्रांतीय पूर्वी प्रयोग है। शिष्ट प्रयोग है—'जता दिया है।'

३. विरहिणी यशोधरा भी मृत्यु में सौंदर्य का दर्शन करती है—

'स्वामी मुझको मरने का भी दे न गए अधिकार।
छोड़ गए मुझ पर अपने इस राहुल का भार।
जिये जल-जलकर काया री।
मरण सुन्दर बन आया री।'

अलंकार—सम्पूर्ण गीत में विरोधाभास अलंकार है।

लिखकर........रहा।

शब्दार्थ—लोहित—(१) खून, (२) लाल। व्योम-सिन्धु—आकाश-रूपी सागर। तारक-बुद-बुद—तारक-रूपी बुलबुले।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला सन्ध्या काल का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि हे सखि! देखो, सूर्य खून के समान लाल लेख लिखकर डूब गया है और आकाश-रूपी सागर में तारे-रूपी बुलबुले उत्पन्न हो गए हैं। कहने का भाव यह है कि डूबते हुए सूर्य की लालिमा समाप्त हो गई है; सूर्य भी डूब गया है और तारे टिमटिमाने लगे हैं।

विशेष—१. इन पंक्तियों में कवि ने सबल कल्पना का प्रयोग किया है। आपत्ति काल में खून के अक्षरों से लिखा जाता है। डूबते हुए सूर्य के साथ यह सजीव कल्पना है।

२. जब कोई वस्तु पानी में डूबती है तो बुलबुले पानी के ऊपर आ जाते हैं। सूर्य के आकाश-रूपी सागर में डूबने पर तारे-रूपी बुदबुदों के उगने में कवि की कवि-प्रतिमा निहित है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अलंकार—'व्योम-सिन्धु', 'तारक-बुदबुद' में क्रमशः 'व्योम' पर 'सिन्धु' का और 'तारक' पर 'बुदबुद' का अभेदारोप होने से रूपक अलंकार।

दीपक संग········हमको ?

शब्दार्थ—शलभ—पतंगा। सत्व—सत्वगुण। तम—(१) अन्धकार, (२) हृदय की निराशा।

अर्थ—सन्ध्या होने पर जब विरहिणी ऊर्मिला की सखी दीपक जलाने लगती है तो ऊर्मिला उसे सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे सखि! तू दीपक न जला, क्योंकि दीपक के साथ पतंगा भी जल जायेगा। यह जो अन्धकार फैला हुआ है उसे सत्वगुण से दूर कर। कहने का भाव यह है कि हमें अपने अन्धकार को दूर करने के लिए पतंगे को जलने का अवसर नहीं देना चाहिए, अर्थात् अपने सुख के लिए हमें दूसरे के जीवन को दुखी नहीं करना चाहिए और जब प्रियतम ही नहीं है तो हमें इस प्रकाश में क्या देखना दिखाना है। सच यह है कि जब सौंदर्य का पारखी और उस सौंदर्य को सार्थक बनाने वाला प्रियतम ही नहीं है तो उस सौंदर्य को प्रकाशित करना व्यर्थ है।

विशेष—१. इन पंक्तियों में विरहिणी ऊर्मिला की करुण भावना स्पष्टतः मुखरित है।

२. 'जीत सत्व से तम को' यह पद्यांश गाँधीवादी प्रभाव के कारण अत्यधिक आदर्शवादी होने से प्रस्तुत प्रसंग में अधिक भावोत्कर्षक नहीं है।

३. 'जीत सत्व से तम को' का एक अर्थ यह भी हो सकता है—हमें अपने हृदय की विरहजन्य निराशा को शांति, धैर्य आदि सात्विक गुणों से जीतना चाहिए।

४. प्रियतम के अभाव में प्रकाश की निरर्थकता बताने से स्थूल प्रेमिका प्रेम का चित्रण हुआ है।

अलंकार—'सत्व' और 'तम' के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

दोनों ओर प्रेम·········कितनी विह्वलता है!

शब्दार्थ—पतंग—पतंगा, शलभ। दहना—जलना। विह्वलता—आतुरता।

अर्थ—सखी के द्वारा सन्ध्या काल से दीपक जला दिए जाने पर ऊर्मिला के मन में जो अभाव आते हैं उनका वर्णन वह अपनी सखी से करती हुई कहती है कि हे सखि! दीपक और शलभ दोनों के मन में एक दूसरे के लिए अत्यधिक प्रेम है। दोनों ओर ही प्रेम पल रहा है यदि दीपक पर पतंग जलता है तो

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

पतंग को अपने पास बुलाने के लिए दीपक भी स्वयं को जलाता है। पतं जलते हुए देखकर दीपक दुखी होकर उससे कहता है कि भाई! तू क्यों में ही स्वयं को जलाता है। जलते हुए दीपक की लौ हिलती रहती है। आधार पर कवि की कल्पना यह है कि मानो पतंग को जलने से मना रहा हो, लेकिन पतंग अपने प्रेम की आतुरता के कारण उसमें जल संतोष पाता है।

ऊर्मिला के कहने का भाव यह है कि जब तक प्रेम में स्वयं को न जाए तब तक वास्तविक सुख और संतोष नहीं मिलता।

विशेष—'सखि! पतंग भी जलता है हा!' में 'हा' शब्द का कारुणिक भावों को अधिक प्रबल बनाने में सहायक है।

अलंकार—१. 'दोनों ओर प्रेम पलता है' में आदान-प्रदान होने से प अलंकार।

२. दीपक की जलती लौ को देखकर सिर हिलाने की और पतंग जलने के लिए कहने की कल्पना होने, अर्थात् अहेतु में हेतु की कल्पना हे हेतूत्प्रेक्षा अलंकार।

बचकर········असफलता है?

शब्दार्थ—प्रणय—प्रेम। मरा—विवश।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला सोचती है कि दीपक की लौ में जल अतिरिक्त शलभ के लिए और कोई चारा भी नहीं है; क्योंकि यदि वह भी जाए तो उसका यह जीवन मृत्यु के ही समान है और प्रम की मर्या छोड़कर प्राण बचाए रखना प्रेम के लिए कलंक है। इस स्थिति में उस उसे विवश हो लौ में जलना ही पड़ता है। अतः दीपक की लौ में उसका उसकी असफलता नहीं, वरन् उसकी सफलता है।

विशेष—पतंग के जलने की विवशता की कल्पना अत्यन्त भावपूर्ण है

अलंकार—१. 'बचकर हाय पतंग मरे क्या?' में अर्थ के विरो आभास होने से विरोधाभास अलंकार है।

२. 'प्रणय छोड़कर प्राण धरे क्या?' में काकु-ध्वनि से अर्थ में प होने से काकुवक्रोक्ति अलंकार।

३. 'जले नहीं तो मरा करे क्या' में 'मरा' विशेषण का साभिप्राय होने से परिकर अलंकार।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

कहता है........छलता है।

शब्दार्थ—मन मारे—दुखी होकर।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला सोच रही है कि जब दीपक सिर हिलाकर पतंग को अपनी लौ में न जलने का परामर्श देता है तो पतंग दुखी होकर कहता है कि तुम महान् हो और मैं छोटा हूँ। मैं तुम्हारी महत्ता की बराबरी किसी भी प्रकार नहीं कर सकता, लेकिन अपने जीवन का बलिदान कर देना तो मेरे अपने हाथ की बात है। तुम इस बलिदान से मुझे विमुख करके मेरे साथ छल कर रहे हो। तुम्हारा यह व्यवहार उचित नहीं है, क्योंकि कोई भी अपनी शरण में आए हुए के साथ छल नहीं करता।

विशेष—'शरण किसे छलता है' इस वाक्य के विषय में डा० कन्हैयालाल सहल ने लिखा है—

"यह उखड़ा सा वाक्य है; और हिन्दी की प्रकृति के भी उतना अनुकूल नहीं। हिन्दी में 'शरण' स्त्रीलिंग शब्द है।"

अलंकार—'क्या न मरण भी हाथ हमारे' और 'शरण किसे छलता है' में काकु-ध्वनि से अर्थ परिवर्तन होने से काकुवक्रोक्ति अलंकार।

दीपक के जलने............वश चलता है?

शब्दार्थ—आली—सखी। लाली—गरिमा।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! यद्यपि दीपक जलता है, पर उसके जलने में भी जीवन की लाली है, अर्थात् वह जल कर दूसरों को प्रकाश देता रहता है। इसके विपरीत, पतंग की भाग्य-लिपि काली ही बनी रहती है—वह स्वयं ही जलकर मर जाता है, अपने बलिदान से दूसरों का कुछ भी उपकार नहीं कर पाता। इसमें किसका वश चलता है, अर्थात् कोई भी तो कुछ नहीं कर सकता।

ऊर्मिला के कहने का भाव यह है कि जलने की सार्थकता तभी है जब उससे दूसरों का उपकार हो।

विशेष—इन पंक्तियों में ऊर्मिला की आत्मग्लानि निहित है, क्योंकि शलभ की भाँति वह जल तो रही है, पर अपनी जलन से किसी का उपकार नहीं कर रही है।

अलंकार—'किसका वश चलता है' में काकुवक्रोक्ति अलंकार।

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

जगती वणिग्वृत्ति.........यही खलता है।

शब्दार्थ—जगती—संसार, जगत् के लोग। वणिग्वृत्ति—बनिया व्यापारी का स्वभाव। जिससे चखती—जिससे स्वार्थ की सिद्धि हो खलता है—दुख देता है।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! प्रेम का आदर्श बहुत ऊँचा है, पर जगत् के लोग इसमें व्यापारी का रखते हैं, अर्थात् प्रेम को भी व्यापार की भाँति देखते हैं। जिस प्रकार व्यापारी केवल उसी वस्तु को लेता है जिसमें उसे अधिकाधिक ला सम्भावना होती है, इसी प्रकार संसार के लोग भी प्रेम में ऐसा ही करते हैं जिससे उनके स्वार्थ की सिद्धि होती है। ये लोग काम को महत्व देते, वरन् उससे प्राप्त होने वाले फल पर ही इनकी दृष्टि रहती है। के लोगों का यही दृष्टिकोण मुझे बहुत अधिक पीड़ा देता है।

कहने का भाव यह है कि प्रेम निःस्वार्थ और शुद्ध भाव से होना चा व्यापार का स्वभाव लेकर प्रेम करना प्रेम के दिव्य और उज्ज्वल स कलंकित करता है।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने उस प्रेम की निंदा की है जो स्वार्थ पर टिका हुआ होता है।

अलंकार—'काम' और 'परिणाम' में स्वर और व्यंजनों की एक समता होने से छेकानुप्रास अलंकार।

बता अरी......झख मार।

शब्दार्थ—रुपी—शुरू हो गई। रार—राड, झगड़ा। झख म विवश होकर।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! रात से झगड़ा शुरू हो गया है, अतः तू ही बता कि अब मुझे क्या चाहिए। मैं डरूं, अपने उमड़ते हुए आँसुओं को चुपचाप सहन करती विवश होकर अपनी भावनाओं को ही कुचल डालूं?

विशेष—रात का और विरहिणी का परम्परागत वैर इसलिए माना है, क्योंकि रात के समय विरहिणी का विरह-दुख और भी अधिक बढ़ है और उसे रात काटनी मुश्किल हो जाती है। यही भाव नवीन रीति से पंक्तियों में व्यक्त किया गया है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अलंकार—'मय खाऊं, आँसू पियूं, मन मारूँ झख मार' में एक ही कर्त्ता का अनेक क्रियाओं से अन्वय होने के कारण दीपक अलंकार।

क्या क्षण क्षण········विफल बनाऊँ।

शब्दार्थ—जीवन जनाना—जीवित होने की सूचना देना। क्षणदा—(१) क्षणं द्युति-खंडयति इति क्षणदा अर्थात् प्रकाश का विनाश करने वाली रात, दुख देने वाली रात (२) क्षणं उत्सवं ददाति इति क्षणदा अर्थात् सुख देने वाली रात।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! आज मैं तुमसे यही सुन रही हूँ कि मैं क्षण-क्षण में चौंक रही हूँ। तुम्हारा यह कथन सत्य ही है, क्योंकि इस प्रकार बार-बार चौंककर मैं अपने जीवित होने की सूचना दे रही हूँ। यदि इस प्रकार मैं चौंक-चौंककर अपने जीवित होने की सूचना न दूं तो तुम समझोगी कि मैं मर गई हूँ और तब रात का प्रयत्न विफल हो जायेगा, क्योंकि रात तो सुख देने वाली (क्षणं उत्सवं ददाति इति क्षणदा) होती है। अथवा, यदि मैं इस प्रकार चौंक-चौंककर अपनी वेदना की सूचना न दूं तो तुम समझोगी कि मुझे कोई पीड़ा ही नहीं है, मैं सुखपूर्वक सो रही हूँ। इस प्रकार रात का प्रयत्न विफल हो जायेगा, क्योंकि रात तो दुख देने वाली (क्षणं द्युति-खंडयति इति क्षणदा) होती है।

विशेष—विरहिणी की चौंकना या कराहना आदि क्रियाएं उसके जीवित होने का प्रमाण मानी जाती हैं। यदि वह चौंकना या कराहना बंद कर दे तो वह मृत समझी जाती है। बिहारी की नायिका कराहना बंद कर देती है तो उसकी सखी को भय हो जाता है कि वह मर गई है—

'मरी डरी कि टरी बिथा, कहा खरी चलि चाहि।
रही कराहि कराहि अति, अब मुँह आहि न आहि!'

अलंकार—'इस क्षणदा को विफल बनाऊँ' में 'क्षणदा' शब्द के दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार, साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार और काकु से अर्थ में परिवर्तन होने से काकुवक्रोक्ति अलंकार।

अरी सुरभि········काँटों की सेज।

शब्दार्थ—सुरभि—सुगन्धि। सहेज—बचाकर। फूलों में—सुख में। काँटों की सेज—दुख-भरी दशा।

अर्थ—सुरभि विरहिणी की भावनाओं को उत्तेजित करके उसकी विरह-

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

व्यथा को बढ़ाने वाली होता है। अतः विरहिणी ऊर्मिला सुगन्धि की भर्त्सना करती हुई कहती है कि हे सुगन्धि! अपने अंगों को बचाकर यहाँ से लौट जा, अन्यथा तू भी मुसीबत में पड़ जायेगी, नष्ट हो जायेगी, क्योंकि तू तो फूलों में पली हुई है और मैं काँटों की सेज हूँ। भाव यह है कि तू सुखों में पलने के कारण अत्यन्त कोमल है, दुखों से तेरा परिचय नहीं है। इसलिए मेरी विरह ज्वाला के पास न आ, वरना तू जलकर भस्म हो जायेगी, अपना अस्तित्व ही समाप्त कर बैठेगी।

विशेष—सुरभि (सुगन्धि) उद्दीपन विभाव मानी जाती है। इन पंक्तियों में कवि ने इसी का नवीन शैली में वर्णन किया है।

यथार्थ था······नई-पुरानी।

शब्दार्थ—अलीक—मिथ्या, आशातीत।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! जो यथार्थ था, वह स्वप्न बन गया, अर्थात् जीवन के जिन सुखों को मैंने साक्षात् भोगा था, और भोग रही थी, वे तो देखते-देखते स्वप्न की भाँति मिट गए और जो आशातीत था, अर्थात् जिस विरह-दुख की कभी आशा नहीं की थी, वह अपना हो गया। अब तो यहाँ बीते सुखों की ही एक कहानी बची है, उसे चाहे नई कह लो या पुरानी कह लो। तू उसी कहानी को मुझे सुना, ताकि मेरी विरह-व्यथा कुछ कम हो जाये।

विशेष—बीते सुखों की कहानी चाहे जितनी पुरानी हो जाये, वह नई कहानी की ही भाँति सुख देने वाली होती है। कवि ने इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य का निरूपण 'वही एक नई-पुरानी' कहकर किया है।

अलंकार—'सुना वही एक नई-पुरानी' में अर्थ के विरोध का आभास होने से विरोधाभास अलंकार।

आओ हो आओ······बाट।

शब्दार्थ—विराट—विशाल। अर्घ्य—पूजा-जल। हेर रही हैं बाट—आकुलता से प्रतीक्षा कर रही हैं।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे प्रिय के विशाल स्वप्न! तुम्हें देखने वाले प्रियतम तो आ नहीं रहे हैं, अतः तुम्हीं आ जाओ। मैं आँसुओं के रूप में पूजा-जल लिए हुए आतुरता से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

विशेष—१. प्रिय के अभाव में उसकी प्रत्येक वस्तु से प्रिया का अत्यधिक लगाव हो जाता है। यही तथ्य इन पंक्तियों में व्यक्त किया गया है।

२. 'आँखें खड़ी हेर रही हैं बाट' में लक्षणा शब्द-शक्ति का चमत्कारपूर्ण प्रयोग है।

अलंकार—१. 'आओ हो, आओ' में 'आओ' शब्द की आवृत्ति भावावेश की सूचिका है। अतः वीप्सा अलंकार है।

२. 'अर्घ्य लिए आँखें खड़ी' में केवल उपमान (अर्घ्य) का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

आ जा········तुझसे ही लूँगी।

शब्दार्थ—गूँगी—मौन, चुपचाप। सिर आँखों पर लेकर—हार्दिक स्वागत करके। अर्धचन्द्र—अनादर।

अर्थ—नींद का आह्वान करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे मेरी गूंगी नींद! तू आ जा। आ, मैं तेरा हार्दिक स्वागत करूँगी और तुझे बहलाने के लिए चन्द्रमा को खिलौने के रूप में तुझे दूँगी। यदि तू प्रियतम के आने पर आयेगी तो तब मैं तेरा अनादर ही करूँगी, क्योंकि तब तो प्रियतम से प्रेमालाप करने के लिए जागना ही आवश्यक होगा। पर यदि आज तू मुझे सुलाकर स्वप्न में भी उनका दर्शन करा देगी तो मैं तेरी अत्यन्त कृतज्ञ हूँगी।

विशेष—१. नींद का आह्वान विरह-वर्णन की परम्परा है।

२. 'अर्धचन्द' शब्द क्लिष्ट प्रयोग है। हाथ से अर्धचन्द्र की मुद्रा बनाकर गर्दन को धक्का दिया जाता है, इस चित्र को समझे बिना इस शब्द का अर्थ समझना सम्भव नहीं है।

३. 'नींद' के स्थान पर 'निंदिया' शब्द का प्रयोग अधिक भावपूर्ण है।

अलंकार—नींद का चेतन रूप में प्रयोग होने से मानवीकरण अलंकार।

पलक-पांवड़ों पर············न्यौछावर हूँगी।

शब्दार्थ—पलक-पाँवड़ों पर—पलक-रूपी पाँवड़ों पर। पद—चरण। सलोना—नमकीन, कष्टकारक।

अर्थ—नींद को सम्बोधित करती हुई और उसको निमंत्रण देती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि तू मेरे पलक-रूपी पाँवड़ों पर अपने चरण रख कर आ, और मेरी आँखों से निकले हुए खारे पानी का स्वाद भी चख, अर्थात् मेरी वेदना में हाथ बँटा कर थोड़ा कष्ट भी सहन कर। आ, और दुनिया की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

ओर देख; अर्थात् इस दुनिया में मुझ जैसी अनेक विरहिणियाँ हैं जो सारी जाग-जागकर काटती हैं। अतः तू उनके कष्टों का भी निवारण कर। ऐसा कर देगी तो मैं तुझ पर न्यौछावर हूँगी, तेरा भारी अहसान मानूंगी।

विशेष—१. नींद का आह्वान करना विरह-वर्णन की साहित्यिक प रही है।

२. 'दुनिया की ओर निरख तू' में ऊर्मिला की व्यापक करुण-भावना ओर संकेत है। ऊर्मिला की व्यापक करुण-भावना का चित्रण कवि ने इन में भी किया है—

'प्रोषितपतिकाएँ हों जितनी भी सखि
उन्हें निमंत्रण दे आ,
समदुःखिनी मिलें तो दुःख बँटें,
जा, प्रणयपुरस्सर ले आ।'

अलंकार—'पलक-पाँवड़ों' में पलकों पर पाँवड़ों का अभेद आरोप होने रूपक अलंकार।

हाय! हृदय को............वहाँ!

शब्दार्थ—दुःस्वप्नों को—बुरे स्वप्नों का; लोक में यह विश्वास प्रच है कि सोते समय यदि हृदय पर हाथ रक्खा जाये तो बुरे स्वप्न दिखाई देते

अर्थ—ऊर्मिला अपने हृदय की पीड़ा को शान्त करने के लिए अपने हृ को दबा कर सोना चाहती है। उसे ऐसा करने से उसकी सखी मना करती तो वह अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! हृदय को थाम कर भी मैं न पड़ सकती, क्योंकि तू कहती है कि हृदय पर हाथ रखकर सोने से बहुत बुरे स्वप्न आते हैं।

भाव यह है कि मैं ऐसी अभागिनी हूं कि मेरे लिए ऐसा कोई भी उपाय शेष नहीं रह गया है जिससे मैं अपनी अपार विरह-वेदना को तनिक दूर कर सकूं।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने लोक-प्रचलित विश्वास का अत्यन्त मा पूर्ण रीति से प्रयोग किया है।

अलंकार—'पड़ भी मैं सकती कहाँ' में काकु से अर्थ में परिवर्तन होने कारण काकुवक्रोति अलंकार।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

स्नेह जलाता है..........पत्ती-पत्ती।

शब्दार्थ—स्नेह—(१) तेल, (२) प्रेम। बत्ती—(१) बाती, (२) ...हं। प्रतिभा—(१) प्रकाश (२) अलौकिक ज्योति। राई-रत्ती—छोटे से ...टा पदार्थ। साख—महत्त्व। अन्धकार—(१) अन्धकार, (२) अज्ञान। ...वि—(१) सूर्य, (२) परमशक्ति।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला जलते हुए दीपक को देखकर कहती है कि जिस ...कार तेल से यह बत्ती जल रही है, उसी प्रकार प्रेम से अहं जल जाता है, ...र्थात् मन में प्रेम-भवाना आने पर उसमें अहं भावना के लिए कोई स्थान नहीं ...जाता, और जिस प्रकार दीपक के प्रकाश में छोटे-से-छोटा पदार्थ दिखाई ...लगता है, उसी प्रकार प्रेम-भावना से उत्पन्न अलौकिक प्रकाश से सृष्टि ...कण-कण का बोध हो जाता है।

दीपक की बत्ती को सम्बोधित करती हुई ऊर्मिला कहती है कि हे सखि! ...इस अन्धकार में अपनी साख रखती है, अन्धकार को मिटाकर अपने महत्त्व ...बनाये रखती है और सारी रात जलकर तथा प्रकाश देकर प्रातःकाल होने ...रात बनकर सूर्य के चरणों में मिल जाती है। तत्पश्चात् दिन के आलोक ...सृष्टि का पत्ता-पत्ता खिल उठता है। इसी प्रकार साधक अज्ञान को मिटा- ...आत्म-ज्योति से अपने हृदय को प्रकाशित रखता है और जब उसकी ...ना पूरी हो जाती है तो वह परमशक्ति में मिलकर तदाकार हो जाता है। ...ज्योति के प्रकाश से उसका अंग-अंग प्रकाशित हो उठता है।

विशेष—दीपक के माध्यम से कवि ने आध्यात्मिक विचारों की भी अभि-...क्ति सरस एवं प्रभावशाली रीति से की है।

अलंकार—समान शब्दों के कारण प्रस्तुत अर्थ से अप्रस्तुत अर्थ की प्रतीति ...से समासोक्ति अलंकार।

होने दे निज..........तत्ती।

शब्दार्थ—शिखा—चोटी, लौ। कोट—परकोट। तत्ती—गरम।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला दीपक को सम्बोन्धित करती हुई कहती है कि ...क! तू अपनी लौ को हिलने-डुलने न दे, क्योंकि इस दशा में उसके ...जाने का भय है। अतः तू मेरे अंचल की ओट ले ताकि तेरी गति निरंतर ...रहे। जैसे हम एक-एक ईंट से विशाल तथा कोसों लम्बा परकोटा बना

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

लेते हैं, उसी प्रकार छोटे-छोटे साधन अंत में महान् उद्देश्य की पूर्ति में सह
होते हैं। अतः स्वयं को लघु समझकर तू बुझ न जाना, वरन् निरंतर
बना रह, अर्थात् लगातार जलता रह।

विशेष—दीपक को अपने अंचल की ओट देने से ऊर्मिला की
भावना की अभिव्यक्ति होती है।

अलंकार—'चंचल' और 'अंचल' में समान स्वर और व्यंजनों की
बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास अलंकार।

हाय न आया·········गिनूँ प्रभात।

शब्दार्थ—स्वप्न भी—प्रियतम का स्वप्न में मिलन भी। उडुगण—
का समूह।

अर्थ—रात के बीत जाने पर विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह
कि हे सखि! यह रात भी बीत गई और प्रियतम का स्वप्न में भी मि
नहीं हुआ। जिन तारों को गिन-गिनकर मैंने रात बिताई थी और जो
दुख को भुलाने में सहायक थे, वे भी छिप गये हैं। तू ही बता, अब प्रभात
किसका सहारा लेकर अपने दुख को काटूं?

विशेष—'हाय' शब्द का प्रयोग ऊर्मिला के हृदय की अपार व्यथा
व्यक्त करता है।

चंचल भी किरणों का·········वह गोला।

शब्दार्थ—साख—साक्ष्य, प्रमाण। लाल गोला—उगता हुआ लाल सू

अर्थ—प्रातःकालीन उगते हुए लाल सूर्य को देखकर विरहिणी ऊर्मि
कहती है कि अपनी गति में चंचल होने पर भी किरणों का चरित्र कि
पवित्र और भोला है, मानो अपने चरित्र की पवित्रता का प्रमाण उन्हें
प्रातःकालीन लाल सूर्य-रूपी लाल आग के गोले को उठाकर दे दिया हो।

कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार प्राचीनकाल में स्त्रियाँ अप
पवित्रता का प्रमाण आग के गोले को अपने हाथ में उठाकर दिया करती थीं
उसी प्रकार किरणें लाल सूर्य-रूपी आग के गोले को हाथ में लेकर अप
चरित्र की पवित्रता का प्रमाण दे रही हैं।

विशेष—इन पंक्तियों में एक प्राचीन परम्परा के आधार पर कवि ने
भावमयी कल्पना की है, वह इनकी कवि-प्रतिभा की परिचायिका है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अलंकार—१. चंचल किरणों के चरित्र को पवित्र बताने में अर्थ के विरोध का आभास होने से विरोधाभास अलंकार।

२. 'चरित्र' और 'पवित्र' में समान स्वरों और व्यंजनों की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास अलंकार।

३. 'देकर साख उन्होंने उठा लिया लाल-लाल वह गोला' में एक वस्तु (सूर्य) के स्थान पर दूसरी वस्तु (आग का गोला) की कल्पना होने से वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार।

सखि नीर नभस्सर............डरता डरता।

शब्दार्थ—नभस्सर—आकाश-रूपी सरोवर। हंस—(१) सूर्य, (२) हंस। तारक-मौक्तिक—तारे-रूपी मोती। हिम-विंदु—(१) ओस, (२) पानी की बूंदें। कण्टक—कांटे। कर—(१) हाथ, (२) किरण।

अर्थ—प्रातःकालीन उगते हुए सूर्य पर हंस का आरोप करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखी! नीले आकाश-रूपी सरोवर में यह सूर्य-रूपी हंस तैरता हुआ उतर रहा है। अब तारे-रूपी मोती भी शेष नहीं बचे हैं जिनको यह चरता हुआ चल रहा है और कहीं पृथ्वी के कांटे इसके किरण-रूपी हाथों में गड़ न जायें, इसलिए यह अपने हाथ डरते-डरते डाल रहा है।

कहने का भाव यह है कि प्रातःकाल में नीले आकाश में सूर्य धीरे-धीरे उग रहा है। सूर्य के उदित होने से तारे छिप गए हैं और जो ओस की बूंदें बची थी वे भी सूख गई हैं। सूर्य की किरणें बहुत धीरे-धीरे आकाश से पृथ्वी पर उतर रही हैं। यह सूर्य उस हंस के समान दिखाई देता है जो स्वच्छ पानी से भरे हुए सरोवर में तैरता हुआ उतरा हो, उस हंस ने सारे मोती चुन लिए हों और अपने पंखों पर पड़ी हुई पानी की बूंदों को भी झाड़ दिया हो। वह पृथ्वी पर इसलिए संभल-संभल कर चल रहा हो कि कहीं उसके हाथों में (पैरों में) पृथ्वी के काँट न गड़ जाएँ।

विशेष—१. प्रकृति का स्वतंत्र शैली में वर्णन। इस वर्णन से कवि की मौलिक चिंतना एवं कल्पना साकार हो उठी है।

२. कवि की दिव्य कल्पना की परिचायिका होने पर भी इन पंक्तियों में अनेक दोष हैं, जिनका उल्लेख डा० कन्हैयालाल सहल ने इस प्रकार किया है—

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

'ऊपर के सवैये में श्लेष-लाघव से रूपक तो सिद्ध हो गया (नहीं तो कहना पड़ता सूर्य रूपी हंस) पर बेचारे हंस की दुर्दशा हो गई। दूसरी पंक्ति में कहा गया है कि हंस तारे-रूपी मोतियों को चरता-चरता निकला। 'चरना' शब्द बैलों के लिए आता है, हंस के लिए तो मोती चुगना ही प्रयुक्त होता है। 'कर डाल रहा डरता-डरता' में भी 'कर' श्लिष्ट शब्द है जो हाथ और किरण दोनों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, पर यहाँ भी देखने की बात यह है कि हंस पंजे से मोती नहीं चुग सकता, चोंच से ही चुग सकता है।'

अलंकार—१. सूर्य पर हंस का अंगों-सहित अभेद आरोप होने से सांग रूपक अलंकार।

२. 'हंस' और 'कर' आदि शब्दों के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

भीगी या······वह आँख।

शब्दार्थ—रज—पुष्परज। अलिनी—भ्रमरी। पाँख—पंख। आलि—हे सखि। किंवा—अथवा।

अर्थ—प्रातःकाल में भ्रमरी और मुरझाई हुई कमलिनी को देखकर विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! भ्रमरी के पंख भीगे हुए हैं या पुष्परज में सने हुए हैं, अर्थात् मेरी तरह यह अपने प्रियतम से बिछुड़ कर विरह-व्यथा में इतनी रोई है कि इसके आँसुओं से इसके पंख ही भीग गए हैं, या पुष्पों पर बैठकर इसने अपने प्रियतम के साथ आनन्द क्रीड़ाएँ की हैं और कहीं से पुष्प रस इसके पंखों में लग गया है। इन बातों में से कौन-सी बात ठीक है, यह मेरी समझ में नहीं आता। इस मुरझाई हुई कमलिनी की आँखें खुली हुई हैं या लगी हुई हैं, अर्थात् मेरी तरह यह भी क्या प्रियतम के विरह से व्यथित है जो इसकी आँख में न जागृति ही है और न नींद ही है—सोना और जगना दोनों ही इससे छूट गए हैं।

विशेष—अपनी भावनाओं का प्रकृति पर आरोपण मनुष्य का स्वभाव है। ऊर्मिला भी भ्रमरी और कमलिनी पर अपने भावों का आरोपण करती है।

अलंकार—किसी निश्चय पर न पहुँचने का वर्णन होने से सन्देह अलंकार।

बो बोकर········स्वर-ताल।

शब्दार्थ—बो बोकर—कर्म करके। काटना—फल पाना। सो सोकर—विश्राम करके। स्वर-ताल—सामंजस्य।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपने जीवन की असामंजस्यपूर्ण दशा का वर्णन करती हुई अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! कुछ लोग तो कर्म करते हुए और उनका फल भोगते हुए तथा कर्मों से थककर विश्राम करते हुए अपने जीवन का समय बिता रहे हैं। भाव यह है कि इन लोगों के जीवन में सामंजस्य है। इसके विपरीत, हम अपने जीवन का सामंजस्य खोकर विरह व्यथा के कारण रो-रोकर ही मर रहे हैं।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने जीवन की सामंजस्यता के औचित्य का संकेत दिया है।

अलंकार—'बो बोकर', 'सो सोकर,' 'रो रोकर', और खो खोकर' में पुनरुक्ति अलंकार।

ओहो ! मरा............लगी है।

शब्दार्थ—वराक—वेचारा। अन्त—मृत्यु। जरा—जड़ता, वृद्धावस्था और विमूढ़ता। ऊर्ध्व-साँस—लम्बी-लम्बी साँस; तेज़ झोंके।

अर्थ—ग्रीष्म-ऋतु को देखकर ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! इस ऋतु के आने पर उस वेचारी वसन्त ऋतु का अन्त हो गया है। अब कोयल का मधुर स्वर भी तो सुनाई नहीं देता। वह भी ऐसे समाप्त हो गया है जैसे मरणासन्न व्यक्ति का गला अवरुद्ध हो जाने के कारण बोलना बंद हो जाता है। मृत्यु के समीप आने पर जैसे किसी व्यक्ति की वृद्धावस्था से उत्पन्न विमूढ़ता सजग हो जाती है, उसका ज्वर बढ़ जाता है और उसकी साँसें लम्बी-लम्बी चलने लगती हैं, उसी प्रकार वसन्त-ऋतु के समाप्त होने पर गर्मी का ताप बढ़ गया है, तापजन्य अकर्मण्यता बढ़ गई है और आँधी के तेज़ झोंके निरन्तर चलने लगे हैं।

विशेष—१. नवीन शैली में किया गया प्रकृति का यह चित्रण कवि की मौलिक कल्पना का द्योतक है।

२. विरह-वर्णन के अन्तर्गत बारहमासा का वर्णन करना परम्परागत है। वसन्त-ऋतु का वर्णन करके कवि इसी परम्परा का निर्वाह कर रहा है।

अलंकार—१. वसन्त ऋतु पर मरणासन्न व्यक्ति का अभेदारोप होने से परन्तु केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

२. 'बढ़ा ज्वर, 'जरा-जड़ता जगी है' में 'ज' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्यनुप्रास अलंकार।

a Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

तपोयोगि............हार।

शब्दार्थ—तपोयोगि—हे ग्रीष्मरूपी योगी। खेतों के—(१) खेतों के, (२) साधना के क्षेत्रों के। सार—(१) शक्ति, (२) तत्त्व। कूड़ा-कर्कट—(१) कूड़ा इत्यादि (२) दोष।

अर्थ—ग्रीष्म-ऋतु पर योगी के रूप का आरोपण करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे ग्रीष्म रूपी योगी! आओ, तुम्हारा स्वागत है। जिस प्रकार योगी सब साधना के क्षेत्रों के तत्त्वों को जानता है और उनमें आए हुए दोषों को अपनी साधना से जलाकर नष्ट कर देता है उसी प्रकार तुम सब खेतों के सार हो, अर्थात् तुम्हारी तपन से ही खेतों में उर्वरा शक्ति आती है और खेतों में पड़े हुए कूड़े-कर्कट को जलाकर तुम राख कर देते हो।

विशेष—१. कवि का यह प्रकृति-चित्रण उनकी मौलिकता का द्योतक है।

२. इन पंक्तियों से कवि के कृषि-विषयक-ज्ञान का परिचय मिलता है।

अलंकार—ग्रीष्म-ऋतु पर योगी का अभेदारोप होने से रूपक अलंकार।

आया अपने........की आड़।

शब्दार्थ—तप—(१) गर्मी, (२) तपस्वी। उशीर—खसखस।

अर्थ—गर्मी की तपन से बचाने के लिए ऊर्मिला की सखी ने उसके द्वार पर खसखस की आड़ लगा दी है। उसके इसी कार्य का विरोध करती हुई ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! यह ग्रीष्म ऋतु रूपी योगी अपने द्वार पर आया है और तुम दरवाज़ा बंद कर रही हो। मेरा इससे विमुख होकर खसखस की आड़ में बैठ जाना उचित नहीं है।

भाव यह है कि जिस प्रकार द्वार पर आए हुए तपस्वी का अनादर न करके, द्वार बन्द न करके या खस की आड़ में न बैठकर उसका स्वागत करना चाहिए, उसी प्रकार हमें इस ग्रीष्म-ऋतु की पीड़ा को भी सहन करना चाहिए।

विशेष—१. तपन के प्रति ऊर्मिला की यह आसक्ति उसके विरह-व्यथा-संताप की अधिकता को व्यक्त करती है।

२. यशोधरा के द्वार पर भी तप के आने का वर्णन गुप्तजी ने इन शब्दों में किया है—

'तप मेरे मोहन का उद्धव, धूल उड़ाता आया,
हाय! विभूति रमाने का भी, मैंने योग नहीं पाया।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सूखा कंठ पसीना छूटा, मृगतृष्णा की माया,
झुलसी दृष्टि अँधेरा दीखा, दूर गई वह छाया।
मेरा ताप और उनका, जलती है हा ! जठर मही,
मैंने ही क्या सहा सभी ने, मेरी बाधा-व्यथा सही।'

अलंकार—१. ग्रीष्म-ऋतु पर तपस्वी का अभेदारोप होने से रूपक [अलं]कार।

२. अभीष्टार्थ की प्रकारान्तर से अभिव्यक्ति होने से पर्यायोक्ति [अलं]कार।

ठेल मुझे......उजियाली ?

शब्दार्थ—अन्ध-अवनि-गर्भ-गेह—अन्धकार से भरा हुआ तहखाना। [हिमां]शु-मुख—चन्द्रमुख।

अर्थ—ग्रीष्म-ऋतु की गर्मी से बचाने के लिए जब ऊर्मिला की सखी उसे [तहखा]ने में ले जाना चाहती है तो वह इस कार्य का विरोध करती हुई कहती [है कि] हे सखि ! आज मैं अकेली हूँ, अतः मुझे अन्धकार भरे हुए तहखाने में [भीत]र न ले जाओ। वहाँ पर मुझे शांति नहीं मिलेगी, क्योंकि आज वहाँ पर [चन्द्रमु]ख वाले प्रितयम के मुख का अपूर्व प्रकाश नहीं है; अर्थात् आज वहाँ [मेरे] प्रियतम नहीं है, इसीलिए उनका अभाव मुझे कष्टदायक ही होगा।

विशेष—इन पंक्तियों में अकेली, अन्ध और हिमांशु शब्दों का प्रयोग [बड़ा] भावपूर्ण है। 'अकेली' शब्द से ऊर्मिला की असहाय अवस्था का बोध [होता है]। 'अन्ध' शब्द से ऊर्मिला के मन में व्याप्त विरह-व्यथा आदि भावों [का बोध] होता है और 'हिमांशु' का अन्ध शब्द के साथ अन्वय होने से वक्तव्य [का भा]व वहुत अधिक वढ़ जाता है।

[अलं]कार—'हिमांशु मुख' में 'मुख' पर 'हिमांशु' का अभेदारोप होने से [रूपक अ]लंकार।

[आ]काश-जल सब............रही मही !

[शब्]दार्थ—आकाश-जाल—आकाश-रूपी जाला। रवि-तंतुवाय—सूर्य-रूपी [जुलाहा]। पद-प्रहार—पैरों से आघात। भिन्ना रही—दुखी हो रही है। मही—[पृथ्वी]।

[अर्थ]—ग्रीष्म-ऋतु की भीषणता का वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला [अपनी स]खी से कह रही है कि हे सखि ! आकाश-रूपी जाला ...

... Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

हुआ है जिसमें आज सूर्य मकड़ा बना हुआ है। जिस प्रकार जाल में फँस जाने पर मक्खी को मकड़ा अपने पैरों की चोटों से मारता है और वह उस मार से अत्यन्त दुखी होकर ज़ोर-ज़ोर से भिनभिनाती है, उसी प्रकार यह सूर्य अपनी तेज़ और झुलसने वाली किरणों से पृथ्वी पर प्रहार कर रहा है और पृथ्वी के निवासी उस गर्मी की तपन से अत्यधिक व्यथित हो रहे हैं।

विशेष—१. नवीन उपमेय और उपमानों का प्रयोग कवि की मौलिक कल्पना का परिचायक है।

२. मक्खी के जाल में फँस जाने पर मकड़ा उसे मारने के लिए अपने पैरों से प्रहार करता है जिससे व्यथित होकर मक्खी जोर-जोर से भिनभिनाती है, यह कथन कवि के सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण का सूचक है।

अलंकार—१. 'आकाश-जाल' में 'आकाश' पर 'जाल' का और 'रवि-तंतुवाय' में 'रवि' पर 'तंतुवाय' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

२. 'मक्खी-सी भिन्ना रही मही' में उपमा के चारों अंगों का कथन है से पूर्णोपमा अलंकार।

लपट से झट············भरे, भरे !

शब्दार्थ—लपट—गर्मी की लपट। रूख—वृक्ष। नद—नाले। घट—होकर। विकल—दुखी। मृग-मीन—हिरन और मछली। दीन—असह दुखी।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला ग्रीष्म-ऋतु की भीषणता का वर्णन करती अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! गर्मी की लपटों से वृक्ष शीघ्र जल गये हैं; अर्थात् इतनी तेज़ गर्मी है कि वृक्षों को जलने में देरी ही लगी। नाले और नदियों का पानी कम होकर सूख गया। गर्मी की तपन दुखी होकर वनों में हिरन और नदियों में मछलियाँ मरने लगी हैं। फिर मेरी ये विकल आँखें सदैव पानी से भरी रहती हैं।

भाव यह है कि जब सर्वत्र पानी का अभाव है और पानी के अभाव जीव-जन्तु आदि मर रहे हैं, तब भी मेरी आँखों में सदैव आँसू भरे रहते पर सुख इन्हें भी नहीं है, क्योंकि प्रियतम के वियोग में ये भी अपनी विकलता पर सदा व्यथित रहती हैं।

विशेष—गुप्तजी शब्दों का भाव-व्यंजक प्रयोग करने में बहुत ही द

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

इन पंक्तियों में प्रयुक्त 'झट', 'जले जले', 'सूख चले चले', 'मरे मरे' और 'भरे भरे' इस कथन के उदाहरण हैं।

अलंकार—१. 'नद नदी', 'मृग मीन' और 'दृग दीन' में समान व्यंजनों की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास अलंकार।

२. 'जले जले', 'चले चले' 'मरे मरे' और 'भरे भरे' में 'जले', 'चले', 'मरे' और 'भरे' शब्दों की भाव-व्यंजक आवृत्ति होने से पुनरुक्ति अलंकार।

या तो पेड़············न जायगा !

शब्दार्थ—विना धूल उड़ाये—विना नष्ट किये। ऊष्मानिल—गर्मी की हवा।

अर्थ—गर्मी में चलने वाली हवा के विषय में विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! गर्मी में चलने वाली हवा भी विलक्षण होती है। वह या तो इतने ज़ोर से चलती है कि बिना पेड़ उखाड़े नहीं रहती या बिल्कुल इस तरह वंद हो जाती है कि पत्ता तक नहीं हिलता। मुझे लगता है कि यह हवा मेरे प्राणों को लेकर ही रहेगी, मुझे नष्ट करके ही छोड़ेगी।

विशेष—ग्रीष्म-ऋतु में चलने वाली हवा का यथातथ्य चित्रण है। यह हवा या तो आँधी बनकर इतने वेग से चलती है कि बड़े-बड़े वृक्षों को उखाड़ कर फेंक देती है, या बिल्कुल ही नहीं चलती और दम घोंटने वाली ऊमस पैदा कर देती है।

अलंकार—ग्रीष्मानिल पर चेतना का आरोप होने से मानवीकरण अलंकार।

गृहवापी कहती है············मैं दूँगी ?

शब्दार्थ—गृहवापी—घर में बनी हुई बावली। रिक्त—खाली। पंकज—(१) कमल, (२) सुख। पंक—(१) कीचड़, (२) दुख।

अर्थ—अपने भवन में बनी हुई बावली को देखकर ऊर्मिला को विगत घटनाएँ, जब वह अपने प्रियतम के साथ उसमें आनंदपूर्वक विहार किया करती थी, याद आ जाती हैं जिससे उसकी विरह-व्यथा और भी अधिक उद्दीप्त हो उठती है। वह अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! इस सूखी हुई बावली को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे यह मुझसे कह रही हो कि मैं बहुत दिनों तक पानी से भरी रही तो अब खाली भी हूँगी। मैंने तुम्हें कमल दिये हैं तो तुम्हें ही कीचड़ भी दूँगी।

कहने का भाव यह है कि समय कभी भी एक-सा नहीं रहता। वह निरंतर

a Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

बदलता रहता है। सुख के बाद दुख का और दुख के बाद सुख का चक्र लगातार चलता रहता है। जो बावली कभी स्वच्छ पानी से सराबोर रहती थी, जिसमें सुन्दर-सुन्दर कमल खिले रहते थे, जो अत्यधिक आनन्द और सुख देने वाले थे, वही बावली सूख गई है, कमलों के स्थान पर केवल कीचड़ बच गई है जो मन में भारी दुख उत्पन्न करती है। बावली के माध्यम से जीवन का यह सत्य जानकर ऊर्मिला अपने व्यथित मन को संतोष देने का प्रयत्न कर रही है। वह अपने मन को समझा रही है कि यदि तूने अपार सुख भोगे हैं तो अपार दुखों को भी तुझे सहन करना पड़ेगा, क्योंकि प्रकृति का नियम यही है।

विशेष—प्रकृति के माध्यम से दार्शनिक भावनाओं की अभिव्यक्ति करना साहित्य की प्राचीन परम्परा है। कवि ने इन पंक्तियों में इसी परम्परा का पालन किया है।

अलंकार—१. 'रिक्त क्यों न अब हूँगी ?' और 'किसे पंक आज मैं दूँगी' में काकु-ध्वनि के कारण अर्थ में परिवर्तन होने से काकुवक्रोक्ति अलंकार।

२. 'पंकज तुम्हें दिए हैं और किसे पंक आज मैं दूँगी' में 'पंक' शब्द की निरर्थक-सार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार।

३. 'पंकज' और 'पंक' शब्दों के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

दिन जो मुझको............भोगूँगी।

शब्दार्थ—दिन—समय, भाग्य। आलि—हे सखि !

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! भाग्य मुझे जो देगा, मैं उसे अवश्य ही लूंगी, अर्थात् भाग्य में सुख-दुख जो लिखा है उसे मैं सहर्ष ही भोगूँगी। यह तो प्रकृति का नियम है कि सुख के बाद दुखों का आना स्वाभाविक है, अतः जब मैंने सुख भोगे हैं तो फिर मुझे दुखों को भी सहना पड़ेगा।

विशेष—व्यथित प्राणी की भाग्यवाद के प्रति आस्था हो जाना स्वाभाविक है। ऊर्मिला के इसी मनोवैज्ञानिक चरित्र-पक्ष पर इन पंक्तियों में प्रकाश डाला गया है।

अलंकार—'दुख भला क्यों न भोगूँगी' में काकु-ध्वनि से अर्थ-परिवर्तन होने के कारण काकुवक्रोक्ति अलंकार।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

आलि, इसी वापी में............सिहरे।

शब्दार्थ—आलि—हे सखि! वापी—वावड़ी। सुध कर—याद करके।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! इस बावड़ी में हमने हंसों के समान बार-बार विचरण किया है। जल-क्रीड़ा करते समय उन्होंने जो छींटे मुझ पर डाले थे उनकी याद करके आज भी मेरे अंग सिहर उठते हैं।

विशेष—१. संयोगावस्था में जो प्रकृति सुख को देने वाली होती है, वियोगावस्था में वही दुःखदायिनी बन जाती है। इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य का वर्णन कवि ने इन पंक्तियों में किया है।

२. यशोधरा भी अपनी जल-केलि का स्मरण करके विरह से और अधिक व्यथित हो उठती है—

'स्मरण आप करें जल-केलि में
हृदय पै जब कँज-कली लगी,
बहुत ही प्रभु क्लेशित हो उठे
अधिक कर्कश थी मम पाणि से,
कट वही तज के जिसको कभी
स-रतिनाथ, किया, धृत आपने,
चल दिए चुपके परदेश को
कर मुझे असहाय अनाथिनी।'

अलंकार—(१) 'हंस बने' में लक्ष्मण पर हंस का अभेदारोप होने से रूपक अलंकार।

२. 'वार-बार' में बार शब्द की भाव-व्यंजक आवृत्ति होने से पुनरुक्ति अलंकार।

चन्द्रकान्तमणियाँ.........सबके शृंगार।

शब्दार्थ—चन्द्रकान्तमणियाँ—शीतलता प्रदान करने वाली मणियाँ। चन्द्रकान्त—चन्द्रमा के समान सुन्दर प्रियतम।

अर्थ—ऊर्मिला के विरह ताप को दूर करने के लिए जब ऊर्मिला की सखी चन्द्रकान्त मणियों के आभूषण पहना देती है तो ऊर्मिला इस कार्य का विरोध करती हुई कहती है कि हे सखि! इन चन्द्रकान्त मणियों से बने हुए आभूषणों को मेरे शरीर से उतार लो, क्योंकि ये मुझे पत्थर के समान दुख-

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

दायी प्रतीत होते हैं। और तुम्हारा इस प्रकार मुझे पीड़ित करना उचित नहीं है। ये आभूषण मुझे तभी शीतलता और शोभा प्रदान कर सकते हैं जब मेरे वे प्रियतम वापिस लौटकर आ जाएंगे जो सभी के शृंगार हैं, अर्थात् जो सबके शिरोमणि और प्रिय हैं।

विशेष—विरहिणी के लिए शृंगार धारण करना वर्जित माना गया है क्योंकि ये उसकी विरह-वेदना को बढ़ाने वाले होते हैं। इसीलिए कोई भी विरहिणी शृंगार नहीं करती। ऊर्मिला की इसी दशा का वर्णन इन पंक्तियों में किया गया है।

अलंकार—१. 'चन्द्रकान्तमणियाँ हटा पत्थर मुझे न मार' में कारण के विरुद्ध कार्य का वर्णन होने से विभावना अलंकार।

२. 'चन्द्रकांत' शब्द का भिन्नार्थक प्रयोग होने से यमक अलंकार।

हृदय-स्थिति.........चर्चा ?

शब्दार्थ—हृदयस्थित—हृदय में बसे हुए। स्वजनि—सखि ! अर्चा—पूजा।

अर्थ—ऊर्मिला की सखी उसका विरह-ताप दूर करने के लिए उसके हृदय पर चन्दन का लेप करती है। वह इस कार्य का जब विरोध करती है तो सखी यह बहाना करती है कि यह चन्दन का लेप उसकी शीतलता के लिए नहीं, बल्कि उसके हृदय में बसे हुए प्रियतम की शीतलता के लिए है। इसको सुनकर ऊर्मिला कहती है कि हे सखि ! यह मैं मानती हूँ कि हृदय में बसे हुए प्रियतम की चन्दन आदि से पूजा करना उचित ही है, किन्तु केवल एक चन्दन से ही उनकी पूजा क्यों की जाए, सारा मन ही उन्हें समर्पित क्यों न कर दिया जाए?

कहने का भाव यह है कि जब मैं अपना सर्वस्व समर्पण करके उनकी पूजा करती हूं तो फिर चन्दन आदि से उनकी पूजा करने की अधिक सार्थकता नहीं है।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि पर पूर्ववर्ती परम्परा का हलका-सा प्रभाव प्रतीत होता है। बिहारी ने भी हृदयस्थ स्वामी का कुछ-कुछ इसी प्रकार का वर्णन इस दोहे में किया है।

'जक न परत हरि हिय धरत, नाजुक कमला बाल।
भजत भार भयभीत ह्वै, घन चन्दन बनमाल।'

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अलंकार—प्रकारान्तर से ऊर्मिला अपने प्रियतम के प्रति अपने सर्वस्व समर्पण का वर्णन करती है, अतः पर्यायोक्ति अलंकार।

बँधकर घुलना·········बस घुलना।

शब्दार्थ—बंधकर—बंद होकर। घुलना—पानी बनकर वह जाना, नष्ट होना। दीपदान—प्रकाश। कर्पूरवर्ती—कपूर की वत्ती।

अर्थ—कपूर की वत्ती को देख करके विरहिणी ऊर्मिला उसे सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे कपूर की वत्ती! तुम बन्धन को स्वीकार नहीं कर पाती, इसीलिए बन्दी होने पर तुम घुल-घुल कर वह जाती हो और जलकर पल भर के लिए तुम दूसरों को प्रकाश दे जाती हो। तुम्हारी यही महानता है कि तुम स्वयं को मिटाकर भी दूसरों को सुगन्धि और ज्योति प्रदान करती हो। तुम्हारे लिए ये बातें आसान हैं लेकिन मैं तो इस असहाय दशा में पड़ी हुई हूँ कि मेरे लिए तो केवल घुलने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने अपनी सरस एवं काव्यमयी कल्पना का परिचय दिया है।

अलंकार—१. 'बंधकर घुलना अथवा, जल पल भर दीपदान कर खुलना' में एक कर्त्ता के अनेक धर्मों का उल्लेख होने से दीपक अलंकार।

२. 'जल पल' में और 'दीपदान' में छेकानुप्रास अलंकार।

करो किसी·········भरपूर।

शब्दार्थ—सदय—दयालु।

अर्थ—कपूर को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे दयालु कपूर! तुम किसी और की दृष्टि को शीतल करो, अर्थात् किसी अन्य विरहिणी के दुःख को दूर करो। मेरी आँखें तो निरन्तर पर्याप्त आँसुओं से भरी रहने के कारण अपने आप ही शीतल रहती हैं, अतः मुझे तुम्हारी शीतलता की आवश्यकता नहीं है।

विशेष—इन पंक्तियों में ऊर्मिला की परोपकारिणी भावना की अभिव्यक्ति है।

अलंकार—'इन आँखों में आप ही नीर भरा भरपूर' से ऊर्मिला का तात्पर्य अपने विरह दुःख की गहनता बताना है, अतः प्रकारान्तर से अभीष्टार्थ की अभिव्यक्ति होने से पर्यायोक्ति अलंकार।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

मन को·········मन चीतो।

शब्दार्थ—मन जीतना—वीतरागी, होना, किसी से भी प्रेम न रहना। मानिनी—प्रेम पर गर्व करने वाली नारी। भीष्म—भयानक। मन चीतो—मन में चिन्तन करो।

अर्थ—ऊर्मिला का अनुमान है कि उसके प्रियतम बन में जाकर तपस्या में लीन हो गए हैं, इसीलिए वे संभवत: उसको भूल जाएँ। इस अनुमान से व्यथित होकर वह प्रवासी प्रियतम को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे प्रिय ! बन में जाकर तपस्या के द्वारा अपने मन को इस प्रकार न जीत लो कि वह बिल्कुल ही वीतराग बन जाए, उसमें मेरे लिए कोई प्रेम-भाव भी शेष न रहे। तुम्हारे प्रेम पर गर्व करने वाली मैं यहाँ पर तुम्हारा स्मरण करके अपने दिन काट रही हूँ। मेरी भी तो सुध लो।

हे प्रियतम ! तुम इतना अधिक कठिन तप न करो कि जिसके कारण संसार में आग-सी लग जाए। देखो, ग्रीष्म-ऋतु ही अपना भयंकर रूप धारण करके मुझे जला रही है, अत: तुम तो अपने तपजन्य वीतराग से मुझे दु:खी न करो। और मेरा भी अपने मन में चिंतन करो, अर्थात् मेरी भी याद अपने मन में बनाए रखो।

विशेष—१. बैठी हैं यह यहाँ मानिनी सुध लो इसकी भी तो' में 'यह' और 'इसकी' शब्द अत्यन्त भावपूर्ण हैं।

२. लक्ष्मण के तप से उत्पन्न आग की कल्पना अधिक सार्थक और भावपूर्ण नहीं है।

अलंकार—१. 'इतना तप न तपो तुम प्यारे' में 'त' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्यनुप्रास अलंकार।

२. 'जले आग सी-जिसके मारे' में धर्मलुप्तोपमा तथा अहेतु में हेतु की कल्पना होने से हेतूत्प्रेक्षा अलंकार।

३. 'ग्रीष्म भीष्म' में स्वर और व्यंजनों की एक बार समता होने से छेकानुप्रास अलंकार।

प्यारे हैं·········न रीतो।

शब्दार्थ—मानस—हृदय। रीतो—रिक्त होना, सूख जाना।

अर्थ—यह कल्पना करके कि लक्ष्मण बन में घोर तपस्या कर रहे हैं जिससे उत्पन्न ज्वाला गर्मी की भीषणता को बढ़ा रही है, ऊर्मिला अपने प्रवासी प्रिय-

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

तम को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे प्रिय ! तुम्हारे तप की आग के कारण गर्मी की भीषणता बहुत अधिक बढ़ गई है जिससे नदी, सरोवर आदि सभी सूख गए हैं और सभी प्राणी प्यास से व्याकुल हो रहे हैं। हे दानि ! इन पर दया करो। अर्थात् अपने तप से उत्पन्न गर्मी की भीषणता को न बढ़ने दो ताकि वर्षा हो जाये और प्यास से व्याकुल प्राणियों का दुख दूर हो जाए। मेरी आँखें भी यद्यपि निरन्तर पानी से भरी रहने पर भी प्यासी ही बनी रहती हैं, अर्थात् मैं अहर्निश तुम्हारे दर्शनों के लिए छटपटाती रहती हूँ, फिर भी मेरा मन कहीं विरह-ताप से न सूख जाए, यही चिन्ता मुझे निरन्तर बनी रहती है। कहने का भाव यह है कि विरह-व्यथा के कारण मेरा प्रेमभाव ही समाप्त न हो जाए।

विशेष—अत्युक्तिपूर्ण कल्पना के कारण इन पंक्तियों का सहज भाव कुछ क्षतिग्रस्त हुआ है।

अलंकार—'इन प्यासी आँखों में पानी' में अर्थ में विरोध का आभास होने से विरोधाभास अलंकार।

धरकर······दिन, बीतो।

शब्दार्थ—धरा—पृथ्वी। धाँधी—अन्धेर मचाना। कटि बाँधना—तैयार होना। जड़—स्थिर।

अर्थ—ग्रीष्मकाल की भीषणता और उसके बढ़े दिनों की दुरूहता का वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि गर्मी की तेज धूप ने पृथ्वी को पकड़ कर अन्धेर मचा रखा है, अर्थात् झुलस देने वाली धूप पड़ रही है। इस ऋतु में तेज़ आँधी धूल उड़ाती हुई चलती है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह किसी को नष्ट करने के लिए कमर कस कर तैयार हो। गर्मी के दिन इतने बड़े होते हैं कि बिताये नहीं बीतते, अतः गर्मी के दिन को सम्बोधित करती हुई ऊर्मिला कहती है कि हे दिन ! तुम स्थिर न बनो, बल्कि गतिशील होकर शीघ्र ही बीत जाओ।

विशेष—ग्रीष्म-ऋतु की आँधी की भीषणता का वर्णन कवि ने अन्यत्र भी इन पंक्तियों में किया है—

'या तो पेड़ उखाड़ेगा या पत्ता न हिलायेगा।
बिना धूल उड़ाये हा ! ऊष्मानिल न जायेगा।'

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अलंकार—'धर कर धरा धूप ने धाँधी' में 'ध' की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्यनुप्रास अलंकार।

मेरी चिन्ता छोड़ो.........नृप-निकेतन में।

शब्दार्थ—मग्न रहो—डूबे रहो। आत्मचिन्तन में—तपस्या में। नृप-निकेतन—राजभवन।

अर्थ—यह अनुमान करके कि उसका प्रियतम वन में तपस्या में लीन होगा, ऊर्मिला अपने प्रवासी प्रियतम को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे प्रियतम ! तुम मेरी कोई चिन्ता न करना, वल्कि निश्चिन्त होकर अपनी तपस्या में लीन बने रहना। मेरी चिंता करने की आवश्यकता भी तो नहीं है, क्योंकि भले ही मैं अपार विरह-व्यथा में डूबी हुई असहाय जीवन विता रही हूं, फिर भी रह तो राजभवन में ही रही हूँ जहाँ हर प्रकार के सुख के साधन विद्यमान हैं।

विशेष—१. 'अपने इस नृप-निकेतन में' इस वाक्य से ऊर्मिला का यह वक्तव्य भी ध्वनित होता है कि उसके प्रियतम तो वन में भटक रहे हैं और वह उस राजभवन में रह रही है, जहाँ सुख के सभी साधन उपलब्ध हैं। यही विचार उसकी व्यथा और आत्मग्लानि का कारण है जो उसे निरन्तर झकझोरता रहता है।

२. ऐसा ही भाव यशोधरा भी व्यक्त करती है—

'जायँ, सिद्धि पावें वे सुख से,
दुखी न हों इस जन के दुख से।'

अलंकार—'इस नृप-निकेतन' में 'इस' विशेष्य का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार।

नयन-नीर पर......रोम से स्वेद।

शब्दार्थ—नयन-नीर—आँसू। खेद—दुख। स्वेद—पसीना, पानी।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! पहले तो तू मेरे आँसुओं को देखकर ही खेद प्रकट किया करती थी, अर्थात् दुखी हुआ करती थी, लेकिन अब तो देख, मेरे रोम-रोम से पानी टपक उठा है।

भाव यह है कि अब तो मेरी विरह-व्यथा इतनी बढ़ गई है कि मेरा रोम रोम आँसू वहाने लगा है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

विशेष—बढ़ती हुई विरह-व्यथा का सुन्दर रीति से वर्णन किया गया है।

अलंकार—'रोम रोम से स्वेद' में 'रोम' शब्द की भाव-व्यंजक आवृत्ति होने से पुनरुक्ति अलंकार।

ठहर अरी········उठेगी जाग !

शब्दार्थ—तालवृन्त —ताड़ का पंखा।

अर्थ—ऊर्मिला की सखी उसकी विरह-तपन को शांत करने के लिए पंखे से उसको हवा करती है। ऊर्मिला उसके इस कार्य का विरोध करती हुई कहती है कि हे सखि ! ठहर जा। इस हृदय में विरह की आग लगी हुई है जो इस ताड़ के पंखे से और भी अधिक धधक उठेगी।

भाव यह है कि पंखे की हवा साधारण तपन का ही शमन कर सकती है, पर यह तो विरह की आग है जो पंखा आदि साधनों से शान्त नहीं हुआ करती, वरन् और अधिक भड़का करती है।

विशेष—विरह-वर्णन में सभी कवियों ने शीतलता प्रदान करने वाले साधनों की व्यर्थता का वर्णन किया है। गोवर्द्धनाचार्य की विरहिणी भी तालवृन्त को हटाने का अनुरोध करती हुई अपनी सखी से कह रही है—

'विरमत विरमत सख्यो, नलिनीदलतालवृन्त पवनेन।
हृदयगतोऽयं वह्निर्भटिति कदाचिज्ज्वलयत्येव॥'

अर्थात् हे सखि ! ठहरो, कमलिनी के पत्तों से बने इस पंखे की हवा से हृदय-स्थित यह वियोगाग्नि कदाचित् और भी तेज़ी से जल उठेगी।

अलंकार—कारण के विपरीत कार्य का वर्णन होने से विभावना (पंचम) अलंकार।

प्रियतम के गौरव ने······मैं बलिहारी !

शब्दार्थ—गौरव ने—महत्त्व ने। लघुता—दीनता, छोटापन। भारी दिन—दुःख से भरे हुए दिन। कटुता—वियोगजन्य कटुता। मधुरस्मृति—प्रेम की मधुर स्मृति।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! प्रियतम अपने गौरव की रक्षा के लिए राजभवन छोड़कर वन को चले गये हैं जिसके कारण मैं इस विरहजन्य दीन दशा को प्राप्त हुई हूँ। इस विरह-व्यथा के कारण मेरे दुख-भरे दिन कठिनाई से ही कट रहे हैं। मुझे अपनी इस व्यथा की कोई चिंता नहीं है, क्योंकि भले ही मुझे यह असह्य दुख सहन करना पड़

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

रहा है, पर इससे प्रियतम का गौरव तो बढ़ा है, अर्थात् राम के साथ राजभवन छोड़कर बन जाने में उन्हें गौरव ही मिला है। प्रियतम के गौरव में ही मेरा गौरव है। और फिर वियोगजन्य कटुता में प्रिय की मधुर स्मृतियाँ भी छिपी हुई हैं जिन्हें मैं याद करके आनन्द से आत्म-विभोर हो उठती हूँ। अतः मैं इस वियोग पर और इसके द्वारा दी गई मधुर स्मृतियों पर बलिहारी होती हूँ।

विशेष—१. इन पंक्तियों में ऊर्मिला के आदर्श चरित्र का वर्णन है। वह अपने विरह-दुख को इसलिए अच्छा समझती है, क्योंकि उसके प्रियतम ने अपनी मर्यादा का पालन करके स्वयं को गौरवान्वित किया है।

२. इस पद में समास-शैली का प्रयोग करके कवि ने थोड़े शब्दों में अधिक भावों को कुशलता से भर दिया है।

अलंकार—१. 'प्रियतम के गौरव ने लघुता दी है मुझे' में विनिमय का कथन होने से परिवृत्ति अलंकार ।

तप तुझसे·········उपहार ।

शब्दार्थ—तप—(१) गर्मी, (२) विरह-तपन। परिपक्वता—(१) पकना, (२) पूर्णता। फल—(१) फल, (२) कार्य।

प्रथम अर्थ—ग्रीष्म-ऋतु को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे ग्रीष्म-ऋतु! तेरी गर्मी से भली प्रकार पककर हमारे यहाँ जितने भी फल बनें, वे सभी प्रियतम के उपहार हों।

भाव यह है कि विरह के कारण मैं तो किसी भी फल का उपभोग नहीं कर सकती, अतः सभी फल प्रियतम के लिए समर्पित करती हूँ।

द्वितीय अर्थ—हे विरह-तपन! तुझसे भली प्रकार पूर्णता पाकर मेरे सभी कार्य प्रियतम के ही उपहार बनें, अर्थात् मैं जो भी कार्य करूँ वे सभी प्रियतम के लिए समर्पित हों, उनके हित के लिए हों।

विशेष—ऊर्मिला की प्रियतम के प्रति समर्पण की यह भावना भारतीय नारी के महान् आदर्श की सूचक है।

अलंकार—'तप', 'परिपक्वता', और 'फल' शब्दों के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

पड़ी है लम्बी-सी·········नाम जपना ।

शब्दार्थ—पथ में—मिलन-रूपी पथ में। व्यग्र—व्याकुल, दुखी। घन—बादल। सारंग—चातकी। रटना—उच्चारण।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अर्थ—चातकी को देखकर विरहिणी ऊर्मिला उससे कहती है कि हे चातकी ! मेरे और प्रियतम के मिलन-रूपी पथ में चौदह वर्षों की लम्बी अवधि पड़ी हुई है जिससे विरह-व्यथा के कारण मेरा मन बहुत ही व्याकुल है। विरह-ताप के कारण मेरा गला भी सूख गया है जिससे मैं अपने प्रियतम का नाम भी नहीं ले पाती। पर तेरी स्थिति मुझसे भिन्न है। तुझे विरह की लम्बी अवधि तो नहीं काटनी पड़ेगी, क्योंकि तेरा प्रियतम बादल तेरे निकट ही है और शीघ्र बरसकर तेरी तृष्णा को शान्त करने वाला है। अतः तू अपना वह स्वर, जिससे तू रात-दिन अपने प्रियतम का नाम लेती रहती है, थोड़ी देर के लिए मुझे भी दे दे, ताकि तेरी ही भाँति मैं भी अपने प्रियतम के नाम का जाप कर लूं।

विशेष—चातकी को तथा उसके स्वर को विरहिणी के लिए उद्दीपन विभाव माना गया है। इन पंक्तियों में कवि ने चातकी का उद्दीपन विभाव के रूप में चित्रण किया है।

अलंकार—'पड़ी है लम्बी-सी अवधि पथ में' में केवल 'पथ' और 'निकट इसी आज घन है' में केवल 'घन' उपमान का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

कहती मैं............कल कल्लोल।

शब्दार्थ—खारी आँसू—व्यथा-भरे आँसू। तोल—समता। श्रुति-पुट—कान। पूर्व-स्मृतियाँ—संयोगावस्था की मधुर यादें। पट—द्वार। अरुण—लाल। पाँडु-कपोल—पीले गाल। भूगोल-खगोल—पृथ्वी और आकाश। हृदय-हिंडोला—हृदय-रूपी हिंडोला। कल-कल्लोल—मधुर क्रीड़ा।

अर्थ—चातकी को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि चातकी !- यदि व्यथा से भरे हुए मेरे इन खारी आँसुओं की बूंदें तुम्हारे स्वर का मोल चुका सकती तो मैं तुमसे विनय करती कि तुम फिर से बोलो, और अपने मधुर स्वरों में अपने प्रियतम का नाम लेकर मेरी विरह-वेदना को कम करो। मेरे ये खारे (व्यथापूर्ण) आँसू तो क्या, बहुमूल्य मोती भी तुम्हारे स्वरों की समता नहीं कर सकते, अर्थात् वे भी तुम्हारे प्रिय स्वरों का मूल्य नहीं चुका सकते। फिर भी, मैं तुमसे विनय करती हूँ कि मेरे उपवन की झाड़ी में बैठकर अपने मधुर स्वरों से रस घोलो, आनन्द की वर्षा करो। जिस प्रकार कोई लज्जाशील नारी अपने प्रियतम की बातें सुनने के लिए आतुर

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

होकर अपने कानों को खोल कर खड़ी हो जाती है और अपने प्रियतम की बातें सुनकर उसके पीले कपोलों पर लज्जा के कारण लाली दौड़ जाती है, उसी प्रकार मेरी संयोगावस्था की मधुर स्मृतियाँ अपने कानों को खोलकर उन्हें समेटने के लिए हृदय-रूपी द्वार खोले हुए खड़ी है। देख तो सही, प्रियतम की बातों की सम्भावना से ही इनके विरह-दुख के कारण पीले पड़े हुए कपोल लज्जा से लाल हो गये हैं। तुम्हारे मधुर स्वरों को सुनने की सम्भावना से ही मेरे अनेक स्वप्न स्वयं ही आन्दोलित होकर जाग उठे हैं, अर्थात् हृदय में अनेक पूर्व-स्मृतियाँ सजग हो उठी हैं। यद्यपि मेरा हृदय आंदोलित हो उठा है, तथापि बाह्य जगत् अभी भी मेरे लिए सूना बना हुआ है। ये पृथ्वी और आकाश अभी भी मेरे लिए सूने बने हुए हैं। ऐसा लगता है, मानों वे अभी सोए हुए हैं। तुम चुप रहकर मुझे वेदना के सुख से वंचित न करो, अर्थात् विरह-वेदना में प्रियतम की बातें सुनकर जो सुख विरहिणी को मिला करता है उससे मुझे दूर न रक्खो। तुम अपने मधुर स्वरों को सुनाकर मेरे हृदय-रूपी हिंडोले को हिलाओं, मेरे हृदय को आह्लाद से भरो। तुम्हें मेरे साथ सहानुभूति करनी भी चाहिए क्योंकि हम दोनों एक ही समान हैं—जो तुम्हारे स्वरों में प्रियतम की स्मृति से उत्पन्न आनन्द की क्रीड़ा है, वही मेरे हृदय में छिपी हुई है। कहने का भाव यह है कि जिस भाव को तुम अपने स्वरों में व्यक्त कर देती हो, उसी भाव को मैं चुपचाप अपने हृदय में छिपाये रहती हूँ।

विशेष—१. भाव और कला की दृष्टि से यह गीत गुप्तजी के उत्कृष्ट गीतों में से है। इसका भाव-पक्ष जितना मार्मिक है, कला-पक्ष उतना ही सबल एवं समृद्ध है।

२. पूर्व-स्मृतियों को विरहिणी नारी का रूप देना अत्यंत भावात्मक तथा कल्पना की समृद्धि से पूर्ण है।

३. आँसुओं का पानी खारी होता है, पर 'खारी आँसू' में 'खारी' शब्द का प्रयोग आँसुओं के अतिशय खारीपन का, ऊर्मिला की अपार विरह-व्यथा का, सूचक है।

४. इस गीत में छायावादी तत्त्व प्रचुर मात्रा में विद्यमान है।

अलंकार—१. 'कर सकते हैं मोती भी उन बोलों की तोल' में प्रसिद्ध उपमान (मोती) की हीनता का वर्णन होने से व्यतिरेक अलंकार।

२. 'फिर भी' शब्दों की भाव-व्यंजक आवृत्ति होने से पुनरुक्ति अलंकार।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

३. पूर्व-स्मृतियों पर चेतना का आरोप होने से मानवीकरण अलंकार।

४. पूर्व-स्मृतियों पर नारी का अभेद आरोप किया गया है, अतः रूपक अलंकार।

५. 'भूगोल-खगोल' में समान स्वरों तथा व्यंजनों की एक बार समता होने से छेकानुप्रास अलंकार।

६. 'हृदय-हिंडोल' में 'हृदय' पर 'हिंडोल' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

चातकी, मुझको आज ही............समझी थी गान।

शब्दार्थ—भाव—ज्ञान। रुदन—रोना। गान—गीत।

अर्थ—चातकी को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे चातकी! मुझको आज ही इस बात का ज्ञान हुआ कि जिसको आज तक मैं तेरा गीत समझती आई थी, वह वस्तुतः तेरा गीत न था, वरन् रोना था जो गीत के रूप में तेरे हृदय से फूटा करता था।

विशेष—१. इन पंक्तियों में कवि ने इस सिद्धांत का संकेत दिया है कि विरह-वेदना ही गीत की जननी है। इसी सिद्धांत का संकेत इन्होंने अन्यत्र भी इन शब्दों में दिया है—

'उस रुदंती विरहिणी के रुदन-रस के लेप से,
और पाकर ताप उसके प्रिय विरह-विक्षेप से;
वर्ण-वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के,
क्यों न बनते कविजनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के?'

२. विरहिणी यशोधरा चातकी का स्मरण इन शब्दों में करती है—

'बलि जाऊँ बलि जाऊँ चातकी, बलि जाऊँ इस रट की।
मेरे रोम-रोम में आकर, यह काँटे सी खटकी।
भटकी हाय कहाँ घन की सुध, तू आशा पर अटकी।
मुझसे पहले तू सनाथ हो, यही विनय इस घट की।

अलंकार—'वह तेरा रुदन था, मैं समझी थी गान' में सत्य बात को छिपाकर उसके स्थान पर असत्य बात का कथन होने से अपह्नुति अलंकार।

घूम उठे हैं............सब ओर?

शब्दार्थ—घूम उठे हैं—घिर आये हैं। शून्य में—आकाश में। घन—बादल। उच्छ्वास—निराशा और दुख से भरा हुआ साँस।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अर्थ—आकाश में उमड़े हुए बादलों को देखकर विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि भारी-भारी बादल घुमड़-घुमड़कर आकाश में घिर आये हैं। जिस प्रकार किसी विरहिणी के निराशा और दुख से भरे हुए साँस उसके तन-मन को घेर लेते हैं, उसी प्रकार इन्होंने भी सब ओर से आकाश को घेर लिया है।

विशेष—मनुष्य अपने मन के भावों के अनुसार ही प्रकृति को देखता है। ऊर्मिला का स्वयं का जीवन उच्छ्वासों से भरा हुआ है, अतः उसे आकाश में घिरे हुए बादल भी किसी के उच्छ्वास ही दिखाई देते हैं। अतः ये पंक्तियां मनोवैज्ञानिक चित्रण से युक्त हैं।

अलंकार—'उच्छ्वास-से' में बादलों को उच्छ्वास के समान बताने में उपमा अलंकार।

मेरी ही पृथिवी..........मद मानी।

शब्दार्थ—अंतरिक्ष—आकाश। दानी—पानी का दान करने वाला, पानी बरसाने वाला। धूम—धुँआ। आली—सखी। घन—बादल। गज-सा—हाथी के समान। मद—हाथी के सिर से झरने वाला पानी।

अर्थ—आकाश में उमड़ते और बरसते हुए बादलों को देखकर ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! यह मेरी ही धरती का पानी है जिसे बादल आकाश में लेजाकर बरसा रहा है और जिसके कारण वह दानी बना हुआ है।

हे सखि! यह मेरी ही धरती का धुँआ है जो आकाश में जाकर बादल बन गया है और अब उस मस्त हाथी की भांति गरजकर, झुककर और झूमकर बरस रहा है जिसके सिर से मद-जल बह रहा हो।

विशेष—१. 'मेरी ही' शब्द ऊर्मिला की पृथ्वी के प्रति अपार आसक्ति तथा स्वाभिमानता का सूचक है।

२. गुप्तजी मानव के प्रति आस्थावान हैं तथा इस पर गर्व करते हैं। अलौकिक तत्त्वों की अपेक्षा लौकिक तत्त्वों को महत्त्व देना इनके मानवतावाद का प्रमुख अंग है। यही भावना इन पंक्तियों में स्पष्ट रूप से मुखरित है।

३. वैज्ञानिक मानते हैं कि पृथ्वी से जो पानी की भाप सूर्य की गर्मी के कारण ऊपर उड़ जाती हैं, वे ही अन्त में बादल का रूप धारण कर लेती हैं। इन पंक्तियों में विज्ञान के इस सिद्धान्त का सरस एवं काव्यमयी शैली में वर्णन

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

करने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है। विज्ञान और काव्य का ऐसा सरस सम्मिलन कम ही दिखाई देता है।

४. 'ले लेकर यह अंतरिक्ष सखि, आज बना है दानी' में अलौकिक तत्त्वों के प्रति कवि की घृणा या महत्वहीनता की भावना स्पष्ट है।

अलंकार—'गरज रहा गज-सा झुक झूम' में बादल की गज के साथ तुलना का वर्णन होने से पूर्णोपमा अलंकार।

अब विश्राम करें········नई कहानी।

शब्दार्थ—रवि-चंद्र—सूर्य और चन्द्रमा। निस्तंद्र—तंद्रा को त्याग कर, नई स्फूर्ति लेकर। मृदुमंद—मृदुल और मंदा स्वर।

अर्थ—वर्षा-ऋतु के कारण सर्वत्र नई स्फूर्ति दिखाई देती है। ऊर्मिला अपनी सखी से वर्षा-ऋतु का और तज्जन्य सुखदायक प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! अब वर्षा-ऋतु आ गई है, अतः अब सूर्य और चन्द्रमा विश्राम करें और नये अंकुर नई स्फूर्ति लेकर अंकुरित हों। भाव यह है कि आकाश में बादलों के छाये रहने के कारण न तो दिन में सूर्य ही दिखाई देता है और न रात को चन्द्रमा ही। पानी के कारण पृथ्वी से नये-नये अंकुर निकलने लगते हैं। फिर वह बादलों को सम्बोधित करती हुई कहती हैं कि हे वीर! अपने मृदुल और मंदे स्वर में कोई नई कहानी सुनाओ। भाव यह है कि तुम सर्वत्र घूमते हो, अतः निश्चय ही उस बन में भी गये होगे, जहाँ मेरे राम निवास करते हैं। यदि उन्होंने मेरे लिए कोई संदेश दिया हो तो वह मुझे सुना दो।

विशेष—बादल को विरही या विरहिणी का संदेशवाहक मानने की परम्परा है। 'वीर, सुनाओ निज मृदु मंद, कोई नई कहानी' में यही दूत-रूप व्यक्त किया गया है।

अलंकार—'अब विश्राम करें रवि-चंद्र' में प्रकारांतर से अभीष्टार्थ की व्यंजित होने से पर्यायोक्ति अलंकार।

बरस घटा············साथ सयानी।

शब्दार्थ—सरसें—फलें-फूलें। अवनी—पृथ्वी। सयानी—चतुर।

अर्थ—आकाश में उमड़ती हुई घटा को देखकर विरहिणी ऊर्मिला उसे सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे घटा! तू बरस। मैं भी तेरे साथ अपने आँसू लेकर बरसूँ। तेरे पानी से और मेरी करुणा के जल से पृथ्वी के सारे

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अंग फलें-फूलें। हे चतुर घटा ! यह हो सकता है कि जब पृथ्वी के सभी प्राणी और पदार्थ सुखी हो जायें तो सबके साथ मुझे भी अपने जीवन का उल्लास मिल जाये। भाव यह है कि सम्भव है, मेरा प्रवासी प्रियतम लौटकर आ जाये और अपने दर्शन से मुझे आनंद-विभोर कर दे।

विशेष—इन पंक्तियों में ऊर्मिला की करुण एवं परोपकारिणी भावना स्पष्ट है।

अलंकार—पृथ्वी पर चेतना का आरोप होने से मानवीकरण अलंकार।

दरसो परसो............अग्रस्तन, बरसो।

शब्दार्थ—दरसो—दर्शन दो। परसो—स्पर्श करो। सरसो—हरा-भरा बनाओ। जीर्ण-शीर्ण—अस्त-व्यस्त, दुखी। जगती—संसार। पावन—पवित्र। भाद्र-भद्र—कल्याणकारी भादों का महीना। आश्विन—क्वार का महीना। चित्रित—चित्रा नक्षत्र। हस्ति—हस्ति नक्षत्र। स्वाति-घन—स्वाति नक्षत्र में बरसने वाले बादल। अंजन—काजल। रंजन—प्रसन्न करने वाले। ताप—गर्मी की तपन। विभंजन—नष्ट करने वाले। व्यग्र—आकुल। उदग्र—उन्नत, उदार। जगज्जननी—जगत्-रूपी माता। अग्रस्तन—स्तन के ऊपर का काला भाग।

अर्थ—बादल को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कह रही है—हे बादल ! तुम दर्शन दो, ताकि तुम्हें आकाश में उड़ते देखकर संतप्त पृथ्वी को वर्षा की आशा से सान्त्वना मिले। तुम स्पर्श करो, अर्थात् अपनी शीतल बूंदों को बरसाकर और उनसे प्रकृति के तपते हुए पदार्थों एवं प्राणियों का स्पर्श करके उन्हें शीतलता प्रदान करो और बरस कर सारी प्रकृति को गर्मी के भीषण जाल से मुक्त करो। हे बादल ! तुम भीषण गर्मी से दुखी इस प्रकृति (जगत्) के नवीन यौवन हो; अर्थात् जिस प्रकार शरीर में नवीन यौवन आने से नवीन स्फूर्ति और चेतना आ जाती है, उसी प्रकार तुम्हारे आने से संतप्त प्रकृति ग्रीष्म की भीषणता से मुक्त होकर नवीन-चेतना से भर जाती है, अत: बरस कर इसमें नवीन जीवन और चेतना का संचार करो। हे बादल ! तुम आषाढ़ के महीने में घुमड़कर आकाश में छा जाओ और फिर सावन के मास में बरस पड़ो। हे बादल ! तुम्ही भादों मास के चित्रा और हस्ति नक्षत्र हो और तुम्हीं स्वाति नक्षत्र में बरसने वाले बादल हो। अपने इन उपयुक्त समयों पर बरसकर संसार को सुख दो, उसका कल्याण करो

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

जिस प्रकार आँखों में काजल लगाने से उनकी शोभा बढ़ जाती है, उसी प्रकार तुम आकाश में छाकर सृष्टि को शोभा-सम्पन्न बना देते हो। तुम अपनी श्यामा और शीतलता के कारण दृष्टि प्रसन्न करने वाले हो। तुम गर्मी की भीषण तपन को नष्ट करने वाले हो। अतः तुम बरस कर सृष्टि की शोभा बढ़ाओ, दृष्टि को आनंद दो और गर्मी की भीषणता को नष्ट करो। जिस प्रकार स्तन के काले भाग से दूध झरकर शिशु का पालन-पोषण करता है, उसी प्रकार तुम पानी बरसाकर सबका पालन-पोषण करने वाले हो, इसीलिए तुम ...ं और उदार जगज्जननी के स्तन के अग्रभाग के समान हो। अतः बरसकर अपनी सार्थकता सिद्ध करो।

विशेष—१. भावपक्ष की अपेक्षा इन पंक्तियों में कलापक्ष की प्रधानता है। इससे शब्द-चयन पर कवि का पूर्ण अधिकार स्पष्ट है।

२. समास-शैली का प्रयोग भाव-गाम्भीर्य का कारण है। बादल के लिए ...विशेषणों का प्रयोग हुआ है, वे संक्षिप्त होते हुए भी भाव-गम्भीरता से ओतप्रोत हैं।

३. 'भाद्र-भद्र, आश्विन के चित्रित हस्ति, स्वातिघन' में ज्योतिषशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग तो है, पर ये शब्द भावोत्कर्षक न होकर ...पकर्षक हैं। ज्योतिष-शास्त्र का आधार लेकर तो विहारी-जैसा महाकवि काव्योचित सरसता की सृष्टि करने में असफल रहा है—

'मंगल बिंदु सुरंग, मुख ससि केसर आड़ गुरु।
इक नारी लहि संग, रसमय किय लोचन जगत॥'

४. शब्द-योजना के माध्यम से नाद-सौन्दर्य की सृष्टि इन पंक्तियों की विशेषता है।

अलंकार—१. इन पंक्तियों में छेकानुप्रास अलंकार का चमत्कार सर्वत्र ...न है।

२. 'सृष्टि दृष्टि के अंजन रंजन' में 'सृष्टि' के साथ 'अंजन' का और ... के साथ 'रंजन' का क्रमशः अन्वय होने से यथासंख्य अलंकार।

गत सुकाल............जन के जन, बरसो।

शब्दार्थ—गत सुकाल—बीते हुए समृद्धि तथा सुख के दिनों से। प्रत्या-...—लौटना, वापिस आना। शिखि-नर्तन—मोरों में नाचने का आह्लाद उत्पन्न

...a Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

करने वाला। बिजली—स्फूर्ति, नव-चेतना। उद्बोधन—जागृति। चिन्मय—चेतना से पूर्ण। मृण्मय—मिट्टी के, चेतना-विहीन। पुलकांकुर—पुलक के अंकुर, पुलकित करने वाले। त्रिभुवन-मानस—तीनों लोकों का हृदय। रस—(१) जल, (२) आनंद। जन जन के जन—सबके प्रिय।

अर्थ—बादल को सम्बोधित करती हुई तथा उससे बरसने की प्रार्थना करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कह रही है कि हे बादल! तुम बीते हुए समृद्धि तथा सुख के दिनों को वापिस लौटाने वाले हो; अर्थात् ग्रीष्म-ऋतु प्रकृति की जिस समृद्धि को झुलस देती है तुम उसे पुनः लौटा लाते हो, तुम मोरों में नाचने का आह्लाद उत्पन्न करने वाले हो, अतः तुम बरस कर प्रकृति की विगत-समृद्धि को लौटाओ और मोरों में नाचने का आह्लाद उत्पन्न करो। हे जागृति-रूप बादल! तुम बरस कर जड़ तथा चेतन पदार्थों और प्राणियों में नवीन चेतना भर दो। तुम पुलक के अंकुर बनकर बरसो, जिससे सृष्टि के चेतना-विहीन पदार्थ और प्राणी नवीन चेतना से भर जायें। जिस प्रकार कोई पुरोहित मंत्र पढ़कर और पानी के छींटे लगाकर किसी सोये व्यक्ति को सचेत करता है, उसी प्रकार तुम गर्जन करके और बरस कर ग्रीष्म-ऋतु के ताप से निर्जीव हुए संसार को स्फूर्ति दो। तीनों लोकों के हृदय-रूपी घट को आनंद रूपी जल से भरो और कन-कन-छन-छन करके बरसो। हे बादल! तुम इस तरह बरसो कि आज सभी के प्रिय भीगते हुए ही अपने-अपने घर पहुंचें; अर्थात् बरस कर बिछुड़े हुए जनों का मिलन करा दो।

विशेष—१. समास-शैली का प्रयोग होने से भाव-गाम्भीर्य की सम्यक् संयोजना हुई है।

२. 'मंत्र पढ़ो, छींटे दो, जागे सोये जीवन' में कल्पना का प्रयोग उत्कृष्ट एवं भावमय है।

३. 'कन-कन-छन-छन' से कवि वर्षा के नाद का चित्रण करने में सफल हुआ है।

४. डॉ० कन्हैयालाल सहल ने इस गीत का साहित्यिक विश्लेषण करते हुए लिखा है—

'इस गीत में चौमासे के चारों महीनों—आषाढ़, श्रावण, भाद्र और आश्विन का उल्लेख कर दिया है जो वर्षा-वर्णन के प्रसंग में सर्वथा उचित है। जहां

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

आषाढ़ और सावन को बरसने के लिए कहा गया है, वहाँ लक्षणा से आषाढ़-श्रावण के बादलों से तात्पर्य है। भाद्र को भद्र कहने में जहाँ अनुप्रास का सम्यक् निर्वाह है, वहाँ कवि के शब्द-कोष का भी अच्छा परिचय मिल जाता है। 'बरसो' की आवृत्ति से ऐसा लगता है, जैसे वर्षा की झड़ी लग रही हो। 'कन-कन-छन-छन' से जान पड़ता है, जैसे टप-टप ऊपर से बूंदें गिर रही हों। × × × इस गीत में नकार के अनेकशः प्रयोग तथा आंतरिक तुक-साम्य के कारण जो नाद-सौंदर्य की छटा दिखलाई पड़ती है, उसकी ओर हमारा ध्यान गये बिना नहीं रहता। × × × तुक का जितना सफल प्रयोग श्री गुप्त जी द्वारा हुआ है, खड़ी-बोली के शायद ही किसी कवि द्वारा तुक का उतना समर्थ प्रयोग हुआ हो। तुक तो कवि के इशारों पर नृत्य करती हुई जान पड़ती है। माधुर्य गुण का उत्कृष्ट उदाहरण है यह गीत।'

५. 'आज भीगते ही घर पहुँचें, जन जन के जन, बरसो' का भाव निम्न-लिखित राजस्थानी दोहे के भाव से बहुत मिलता-जुलता है—

'आज धुराऊ गाजियौ, काली कांठल मेह।
भीगी पाग पधारस्यौ, री जाणूंली नेह॥'

प्रोषितपतिका नायिका आकाश में उमड़ते हुए बादलों को देखकर सोचती है कि आज उत्तर-दिशा का बादल गरजने लगा है और काली घटा वर्षा की सूचना दे रही है। हे प्रियतम ! यदि आप भीगी हुई पगड़ी से मेरे पास आयेंगे तभी मैं समझूँगी कि आपका मुझसे सच्चा स्नेह है।

अलंकार—१. छेकानुप्रास अलंकार का चमत्कारी प्रयोग।

२. 'मंत्र पढ़ो, छींटे दो, जागे सोये जीवन' में केवल उपमान का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

३. 'मानस' पर 'घट' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

४. 'कन-कन-छन-छन' में ध्वन्यात्मकता के कारण ध्वन्यर्थव्यंजना अलंकार।

घटना हो............चंद्रादित्य।

शब्दार्थ—घटा—बादल। चंद्रादित्य—चंद्रमा और सूर्य।

अर्थ—आकाश में उमड़ते हुए बादलों को देखकर उर्मिला को राम वन-गमन की वह घटना याद आ जाती है जो इतने वेग से घटी कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। उस घटना की ओर संकेत करती हुई ऊर्मिला

aiGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! जिस प्रकार घटा नीचे से ऊपर उठकर इतनी विस्तृत हो जाती है कि अपने आकार में चंद्रमा और सूर्य को ही छिपा लेती है, उसी प्रकार राम के बनवास की घटना आरम्भ में तो बहुत ही साधारण थी, आगे चलकर वह इतनी भयानक बन गई कि उसके कारण समूचे राजभवन की और समूचे राज्य की व्यवस्था ही अस्तव्यस्त हो गई।

विशेष—इस दोहे के लघु कलेवर में निहित अपार भाव-राशि को देखकर इसकी महत्ता का वर्णन उन्हीं शब्दों में किया जा सकता है जो विहारी के दोहों के लिए कहे गये हैं—

'देखन में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर।'

अलंकार—घटना और घटा का अर्थात् उपमेय और उपमान का एक ही धर्म होने से दीपक अलंकार।

तरसूं मुझ-सी............आयगी बारी।

शब्दार्थ—सरसे—फले-फूले। हरसे—प्रसन्न हो।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि मैं अपने समान ही दुख उठाती रहूँ और सारी प्रिय प्रकृति फले-फूले तथा प्रसन्न हो। कहने का भाव यह है कि मैं यही चाहती हूँ कि इस संसार में कोई भी मेरे समान दुखी न हो, सभी आनंदपूर्वक अपना जीवन बितायें। यदि सबको सुख होगा तो एक दिन सुखी होने की मेरी भी बारी आ जायेगी; अर्थात् एक दिन मेरा भी दुख दूर होगा और मैं भी सुखी बन जाऊँगी।

विशेष—१. प्रायः विरहिणी प्रकृति के सरस रूप को पसंद नहीं करतीं। वे चाहती हैं कि जिस प्रकार वे उजड़ गई हैं, उसी प्रकार प्रकृति भी उजड़ जाये। इसीलिए तो सूर की विरहिणी गोपियाँ कहती हैं—

'मधुबन तुम क्यों रहत हरे ?
बिरह बियोग स्याम सुन्दर के, ठाढ़े क्यों न जरे ?
मोहन बेनु बजावत तुम तर, सखा टेकि खरे।
मोहे थावर अरु जड़ जंगम, मुनि जन ध्यान टरे॥
वह चितवनि तू मन न धरत है, फिरि फिरि पुहुप धरे।
सूरदास प्रभु बिरह दवानल, नख-सिख लौं न जरे॥'

पर ऊर्मिला के चरित्र की यह विलक्षणता है कि वह स्वयं चाहे जितनी दुखी हो, किंतु प्रकृति हरी-भरी रहे, सभी सुख-सम्पन्न बने रहें।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

२. 'मेरी भी आयगी बारी' में भाग्यवाद के प्रति विश्वास व्यक्त किया गया है।

अलंकार—१. 'तरसूँ मुझ-सी मैं ही' में एक ही वस्तु का उपमेय और उपमान भाव से कथन है, अतः अनन्वय अलंकार।

२. 'सरसे-हरसे' में स्वरों और व्यंजनों की एक बार समता होने से छेकानुप्रास अलंकार।

बुँदियों को भी..................अपने आप !

शब्दार्थ—बुँदियों को भी—बूँदों को भी। तनु-स्पर्श—शरीर का छूना। ताप—गर्मी।

अर्थ—अपने विरह-ताप की अधिकता का वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ? मेरा विरह-ताप इतना अधिक बढ़ा हुआ है कि वर्षा-ऋतु की झरती हुई बूँदें भी जब मेरे शरीर का स्पर्श करती हैं तो वे इसके ताप के कारण अपने-आप भाप-सी बनकर उड़ जाती हैं।

भाव यह है कि मेरे शरीर का ताप इतना बढ़ा हुआ है कि जो बूँदें मेरे शरीर को छूती हैं, वे इसके ताप की गर्मी से तुरन्त भाप बनकर उड़ जाती हैं।

विशेष—इन पंक्तियों में ऊहात्मकता होने से अपेक्षित प्रभाव की क्षति हुई है। विरह-वर्णन के अंतर्गत ऊहात्मक प्रवृत्ति को अपनाने की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। अमरुकशतककार ने भी अपनी विरहिणी नायिका के विरह-ताप का ऐसा ही वर्णन किया है—

'तप्ते महाविरहवह्निशिखावलीभि-
रापांडुरस्तनतटे हृदये प्रियायाः।
मन्मार्गवीक्षणनिवेशितदीनदृष्टे-
र्नूनं छमच्छमिति वाष्पकणाः पतन्ति ॥'

अर्थात् मैं यहीं से देख रहा हूँ कि मेरी प्रियतमा का हृदय प्रचंड विरह की आग की लपटों से तप्त है, इसी कारण हृदयतल के ऊपर लगी हुई आग की लपटों से उसके स्तन चारों ओर से पीले पड़ गये हैं। अत्यंत कातर होकर वह मेरे मार्ग की ओर जो आँखें लगाये हुए है, उन आँखों से छन-छन करते हुए आँसुओं की बूँदें उसके स्तनों पर पड़ रही हैं।

ai Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

बिहारी की नायिका भी विरह-ताप से इतनी जलने लगती है कि जब उसके आँसू उसकी छाती पर आकर गिरते हैं तो छनछनाकर जल जाते हैं—

'पलनि प्रगटि बरुनीनु बढ़ि, नहिं कपोल ठहरात।
अँसुवा परि छतिया छिनकु, छनछनाइ छिपि जात ॥'

अलंकार— १. विरह-ताप का अत्यंत मिथ्या वर्णन होने से अत्युक्ति अलंकार।

२. 'उठती हैं वे भाप-सी' में बूँदों की भाप के साथ तुलना होने से उपमा अलंकार।

न जा उधर·····;·····इष्ट एकांत ही।

शब्दार्थ—शिखी—मोर। संकुचित—लज्जित। मुदित—प्रसन्न होकर। लास्य-लीला—नाच की आनंद-क्रीड़ा। पर-विघ्न—दूसरों की बाधा। अबाधा—सुख। विराग-अनुराग—वियोग और प्रेम। इष्ट एकांत—केवल यही इच्छा।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! तू उधर न जा जिधर आह्लादित होकर मोर अपनी मोरनियों के साथ नाच रहे हैं, ताकि वे मोर सुखी हों और आनंद से नाचते रहें। तुम्हारे वहाँ जाने से वे कहीं लज्जित न हो जायें, अतः उन्हें प्रसन्न होकर उनकी नाच की आनन्द-क्रीड़ा करने दो। मेरा सुख तो केवल इसी में है कि मैं दूसरों के लिए किसी भी प्रकार बाधा न बन जाऊँ। चाहे मैं वियोग का कष्ट सहन करती होऊँ और चाहे संभोगजन्य प्रेम का आनन्द भोगती होऊँ, मेरी तो केवल यही इच्छा है।

विशेष १. ऊर्मिला चूँकि दुख का अनुभव कर चुकी है, अतः वह नहीं चाहती कि किसी और को भी दुख की यातना भोगनी पड़े। यह उसकी करुण-भावना का फल है।

२. वर्षा-ऋतु में मोर-मोरनियों के नाच का वर्णन करना साहित्यिक परम्परा है।

अलंकार—'विराग-अनुराग' में स्वर और व्यंजनों की एक बार समता होने से छेकानुप्रास अलंकार।

इन्द्रवधू आने लगी············पड़ा यह हाय !

शब्दार्थ—इन्द्रवधू—लाल रंग का एक छोटा-सा कीड़ा, मखमली रंग का कीड़ा। विहाय—छोड़ कर। दूवा—दूब, घास।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अर्थ—वर्षा काल में इन्द्रवधू नामक कीड़े निकल पड़ते हैं। उन्हें देखकर ऊर्मिला अपनी सखी से कहती हैं कि हे सखि! ये इन्द्रवधू शचि नहीं हैं, क्योंकि वे तो अपने स्वर्ग को छोड़ कर इस भूतल पर आ ही नहीं सकतीं। वरन् ये तो नन्हीं दूवा घास का कोमल और अनुराग से भरा हुआ हृदय है जो किसी दुख के कारण बाहर निकल पड़ा है।

विशेष—१. इन पंक्तियों में 'इन्द्रवधू' शब्द का श्लेष ही वक्तव्य कल्पना का आधार है। पर यह कल्पना संगत प्रतीत नहीं होती।

२. डॉ० कन्हैयालाल सहल ने इन पंक्तियों का विश्लेषण करते हुए लिखा है—

'इन्द्र-वधू अपना स्वर्ग छोड़कर भला इस पृथ्वी पर (जो कंटकाकीर्ण है) क्यों आने लगी? यह इन्द्रवधू नहीं, नन्हीं दूबा का हृदय ही निकल पड़ा है। तथ्य की दृष्टि से देखा जाय तो इस उक्ति पर आपत्ति उठाई जा सकती है, क्योंकि वर्षा-ऋतु में जब इन्द्रवधू दिखलाई पड़ती है, उस समय दूब तो वापिस खिलती है; उसके हृदय निकल पड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु ऊर्मिला तो अपनी मनोदशा के अनुरूप ही सब वस्तुओं को देखती है। उनके मन में प्रविष्ट होकर कोई कवि की आँखों से देखे तो उक्त पद्य में प्रयुक्त अपह्नुति अलंकार का रहस्य समझ में आ सकता है। यह अलंकार यहाँ पर भाव-व्यंजना में सहायक हुआ है।'

अलंकार—सत्य का निषेध और उसके स्थान पर असत्य का आरोपण होने से अपह्नुति अलंकार।

बता मुझे नख-रंजनी.........हरी हरी?

शब्दार्थ—नख-रंजनी—मेंहदी। अरुण—(१) लाल, (२) दुख से दग्ध। हरी—(१) हरे रंग वाली, (२) प्रसन्न।

अर्थ—मेंहदी को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे मेंहदी! तू मुझे यह उपाय बता जिससे तू अन्दर से लाल होकर भी बाहर हरी बनी हुई है।

भाव यह है—मेंहदी का रंग हरा होता है, पर उसमें लाली छिपी होती है। ऊर्मिला उस लाली को दुख से दग्ध होने के कारण लाली मानती है और 'हरी' का अर्थ प्रसन्न बनी हुई करती है। इन अर्थों के आधार पर वह मेंहदी पर एक दुखी नारी का आरोपण करके उससे पूछती है कि तेरा हृदय दुख से

aiGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

इतना दग्ध है कि वह लाल ही पड़ गया है, पर इतनी भीषण वेदना को हृदय में संजोकर भी तू प्रसन्न बनी हुई है। यह तेरे चरित्र की विलक्षणता और महानता है। पर तू यह तो बता कि वह क्या उपाय है जिससे तू अपने हृदयस्थ दुख को छिपाकर प्रसन्न बनी रहती है। ताकि में भी अपनी वेदना को छिपा-कर प्रसन्न बनी रहूं और अपनी प्रसन्नता का वितरण करके सबको सुखी तथा प्रसन्न बना सकूं।

विशेष—१. कवि की कल्पना अत्यंत रमणीय एवं भावमयी है।
२. 'अरी' शब्द का प्रयोग घनिष्ठ आत्मीयता का सूचक है।

अलंकार—१. 'होकर भी भीतर अरुण बाहर हरी हरी' में अर्थ में विरोध का आभास होने से विरोधाभास अलंकार।

२. 'अरुण' और 'हरी' शब्दों के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

अवसर न खो·········तू मल्ली।

शब्दार्थ—निठल्ली—वेकार रहने वाली। विटप—वृक्ष। बल्ली—वल्लरी, बेल। कदम्ब-अवलम्ब—कदम्ब' वृक्ष का सहारा। वल्ली—मल्लिका नामक लता।

अर्थ—लता का तथा मल्लिका लता को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे निठल्ली बेल ! तू अवसर न खो, बल्कि शीघ्र बढ़कर वृक्ष से लिपट जा। हे भोली मल्लिका लता ! तू अब कदम्ब के सहारे को मत छोड़ना, वरन् इससे लिपटी ही रहना।

विशेष—१. भाव की दृष्टि से ये पंक्तियाँ अत्यंत मार्मिक हैं। ऊर्मिला जानती है कि प्रियतम से बिछुड़ने पर कितनी अथाह वेदना सहनी पड़ती है। इस वेदना ने उसके मन का इतना विस्तार कर दिया है कि बेलों और लताओं से उसकी घनिष्ठ आत्मीयता हो गई है। इसलिए वह उन्हें परामर्श देती है कि वे सदैव अपने प्रियतमों को अपने बाहु-पाशों में जकड़ी रहें, कभी उन्हें अलग न होने दें, अन्यथा उन्हें विरह की भयंकर यातना सहनी पड़ेगी।

२. 'निठल्ली' और 'लल्ली' शब्द घनिष्ठ प्रेम तथा आत्मीयता के सूचक हैं।

अलंकार—१. 'बढ़ जा बढ़ जा' में 'बढ़ जा' शब्दों की भाव-व्यंजक आवृत्ति होने से पुनरुक्ति अलंकार।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

२. 'कदम्ब', 'अवलम्ब' में स्वरों और व्यंजनों की एक बार समता होने से छेकानुप्रास अलंकार।

त्रिविध पवन ही था·········उन्हीं सा !

शब्दार्थ—त्रिविध—तीन प्रकार का—शीतल, मंद और सुगंधित। घन-रव—बादल की गरज। नीप—कदम्ब का फूल। प्रकृत—स्वाभाविक। सुकृत—यश। भा रहा—अच्छा लग रहा है।

अर्थ—प्रकृति के विभिन्न पदार्थों को देखकर विरहिणी ऊर्मिला को अपने प्रियतम की याद आ जाती है। अपनी इसी दशा का वर्णन करती हुई वह अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! यह शीतल, मंद और सुगंधित जो पवन चल रहा है, यह प्रियतम के समान ही है; अर्थात् जितना सुखद एवं शीतल आलिंगन प्रियतम का था, वैसा ही सुखद एवं शीतल इसका स्पर्श है। यह बादल की गरज भी प्रियतम की गरज के ही समान है; अर्थात् प्रियतम की वाणी में जैसा ओज था, वैसा ही ओज इस बादल की गरज में भी है। यह कदम्ब का फूल भी प्रियतम के समान ही है; अर्थात् जिस प्रकार की मृदुल एवं निर्मल मुस्कराहट प्रियतम के होंठों पर बिखरी रहती थी, वैसी ही मृदुल एवं निर्मल ज्योति इसकी पंखुड़ियों पर बिखरी हुई है। पर प्रियतम तो यहाँ हैं ही नहीं, केवल उनके गुण प्रकृति में बिखरे हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो उनका स्वाभाविक यश सर्वत्र फैल गया हो जो मुझे उतना ही अच्छा लगता है जितने प्रियतम मुझे प्रिय लगते हैं।

विशेष—१. प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण विरहिणी ऊर्मिला की मनोदशा को व्यक्त करने में पूर्णतया सफल है।

२. 'प्रिय-प्रवास' की विरहिणी राधा भी प्रकृति के विविध उपकरणों से प्रियतम की स्मृति में डूब जाती है—

'छू देती है मृदु पवन जो पास आ गात मेरा,
तो हो जाती परम सुधि है श्याम प्यारे करों की।
ले पुष्पों की सुरभि वह जो कुंज में डोलती है,
तो गंधों से वलित मुख की वास है याद आती।
ऊँचे-ऊंचे शिखर चित्त की उच्चता हैं दिखाते,
ला देता है परम दृढ़ता मेरु आगे दृगों के।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

नाना-क्रीड़ा-निलय-निर्जर चारु छींटे उड़ाता,
उल्लासों को कुंवर वर के चक्षु में है लसाता।

अलंकार—१. प्रियतम की पवन, घन-रव और नीप के साथ तुलना होने से उपमा अलंकार।

२. प्रकृति पर प्रियतम का आरोप करके फिर उसका निषेध होने से भ्रान्त्यापह्नुति अलंकार।

३. 'प्रकृत सुकृत' में स्वरों और व्यंजनों की एक बार समता होने से छेकानुप्रास अलंकार।

४. 'प्रकृत सुकृत फले, आ रहा जो उन्हीं सा' में अफल में फल की सम्भावना होने से फलोत्प्रेक्षा अलंकार।

सफल है............उनका कोष।

शब्दार्थ—घनों का—(१) बादलों का, (२) महान् व्यक्तियों का। घोष—(१) गर्जन, (२) महानता, (३) रोष। वंश-वंश को—(१) प्रत्येक बाँस को, (२) प्रत्येक कुल को, (३) मानव-जाति को। विभव—वैभव। नभ में विचरना—(१) आकाश में घूमना, (२) आत्मा को ऊँचा रखना (३) उच्च आध्यात्मिक कल्पनाओं में लीन रहना। धरा—(१) पृथ्वी, (२) साधारण प्राणी, (३) पृथ्वी के निवासी। हरा करना—(१) हरा-भरा बनाना, (२)सुखी बनाना, (३) कल्याण करना। जल में मोती भरना—(१) जल में मोती उत्पन्न करना, (२) व्यर्थ में दान देना, निःस्वार्थ-भाव से दान करना, (३) असीम करुण-भाव रखना। अक्षम—अपार। कोष—(१) भंडार, (२) भावना।

प्रथम अर्थ—आकाश में उमड़ते हुए बादलों को देखकर अपनी करुण-भावना से सिक्त होकर ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! जो बादल ग्रीष्म-ऋतु के ताप से सूखे हुए प्रत्येक बाँस को वृद्धि, वैभव और शीतलता प्रदान करते हैं, जो स्वयं तो आकाश में विचरण करते रहते हैं, पर अपने जल से सूखी हुई पृथ्वी को हरा-भरा बना देते हैं, जो सीपियों में अपनी बूंदें डालकर पानी को मोतियों से भर देते हैं, और जिनका जल का कोष अपार होता है, ऐसे ही बादलों का गर्जन सफल होता है। भाव यह है कि बादलों की सार्थकता पृथ्वी और इसके पदार्थों को हरा-भरा बनाने में तथा उसे वृद्धि एवं वैभव प्रदान करने में ही है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

द्वितीय अर्थ—महापुरुषों की महानता का रहस्य बताती हुई ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! उन्हीं महापुरुषों की ही महानता फल देने वाली होती है जो अपने ही कुल को नहीं, वरन् दूसरों के कुलों को वृद्धि, वैभव और संतोष प्रदान करते हैं, जो स्वयं तो अपनी आत्मा को ऊंचा रखते हैं अर्थात् उच्च विचारों से ओतप्रोत रहते हैं, पर साधारण प्राणियों की भी अवहेलना नहीं करते, वरन् अपने कार्यों से उन्हें भी सुखी बनाते हैं, जो निःस्वार्थ भाव से दूसरों को दान देते हैं, और जिनका भंडार अपार होता है, जिनके दान की कोई सीमा नहीं होती।

तृतीय अर्थ—बन में जाकर राम और लक्ष्मण ने अनेक राक्षसों का वध किया। उनके इस कार्य का औचित्य बताती हुई और लक्ष्मण की महत्ता का प्रतिपादन करती हुई ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! उन्हीं व्यक्तियों का रोष फल देने वाला होता है जो अपने कार्यों से समूची मानव-जाति को वृद्धि, वैभव और संतोष प्रदान करते हैं, जो स्वयं तो राजपाट त्यागकर और योगियों का जीवन अपनाकर उच्च आध्यात्मिक कल्पनाओं में लीन करते हैं, पर अपनी शक्ति से पृथ्वी के निवासियों का कल्याण करते हैं, जिनकी करुण-भावना अपार होती है, और जो प्रत्येक प्राणी पर अपना करुण-भाव दिखाकर उसे सुखी बनाते हैं।

विशेष—भाव गाम्भीर्य की दृष्टि से ये पंक्तियाँ अपूर्व हैं। सरलतम शब्दों से इतने गम्भीर भावों की व्यंजना गुप्तजी की महान् काव्य-प्रतिमा का प्रमाण है।

अलंकार—१. समान विशेष्य-विशेषणों के द्वारा प्रस्तुत अर्थ से अप्रस्तुत अर्थ की भी प्रतीति होने के कारण समासोक्ति अलंकार।

२. 'वंश वंश को देते हैं' में 'वंश' शब्द की भाव-व्यंजक आवृत्ति होने से लाटानुप्रास... [illegible] रुक्ति अलंकार।

३. 'हरा धरा' में स्वरों और व्यंजनों की एक बार समता होने से छेकानुप्रास अलंकार।

नंगी पीठ बैठकर..............फूले-से।

शब्दार्थ—ऊरुओं से—जंघाओं से। भूले से—संयोग से। ऊले-से—उमंग भरकर। प्राणेश्वर—प्रियतम, लक्ष्मण। संकुचित—लज्जित। फूले-से—आनन्द-विभोर से।

aiGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अर्थ—वर्षा-ऋतु में आकाश में उमड़ते हुए बादलों को देखकर ऊर्मिला को संयोगावस्था की एक बीती घटना याद आ जाती है जिसका वर्णन वह अपनी सखी से करती हुई कहती है कि हे सखि ! ऐसी ही वर्षा-ऋतु में जब मैं एक दिन झूले में झूल रही थी तो मैंने ज़बरदस्ती प्रियतम को भी उसमें बिठा लिया था। तब उन्होंने भय का प्रदर्शन करते हुए कहा था कि यदि तुम कहो तो मैं घोड़े की नंगी पीठ पर बैठकर उसे बहुत ही तेज़ी से दौड़ा सकता हूँ और फिर भी मुझे उस पर से गिरने का डर नहीं लगता। यदि कभी संयोग से उसकी लगाम भी टूट जाये तो मैं उसे अपनी जंघाओं के बल से रोककर वश में कर सकता हूँ। मुझे घोड़े पर से गिरने का भय नहीं लगता, चाहे वह बिना लगाम का ही क्यों न हो, किन्तु तुम्हारे इस झूले पर बैठने से डर लगता है। इसलिए मुझे उतार दो, क्योंकि यहाँ मैं कुछ नहीं कर सकता अर्थात् भय के कारण किसी भी प्रकार का न तो स्वयं ही आनन्द ले सकता हूँ; और न तुम्हें ही आनंदित कर सकता हूँ। ऊर्मिला कहती है कि तब मैंने कोई उत्तर नहीं दिया, बल्कि उमंग में भरकर दोनों पैंग और भी तेज़ कर दिये। तब अत्यंत भयभीत होने का प्रदर्शन करते हुए मेरे प्रियतम मुझसे यहीं पर लिपट गये थे जो बाहर से तो लज्जित होने का भाव-प्रदर्शन कर रहे थे, पर मन में अत्यधिक प्रसन्न और आनन्द-विभोर थे।

विशेष—१. इन पंक्तियों में कवि ने इस घटना का जिस प्रकार से वर्णन किया है, इससे वह निश्चय ही ऊर्मिला और लक्ष्मण के आदर्श प्रेम की रक्षा नहीं कर सका है। यहाँ पर ऊर्मिला और लक्ष्मण रीतिकालीन नायिका-नायक बन गये हैं जिनका प्रेम किसी आदर्श से बँधा नहीं होता। बिहारी ने भी इसी प्रकार के भावों का इस प्रकार वर्णन किया है—

'हेरि हिंडोरें गगन तें, परी परी सी टूटि।
धरी धाइ पिय बीच हीं, करी खरी रस लूटि॥'

दोनों की वर्णन-पद्धति में केवल युगीन-परिस्थितियों का अंतर है—एक की शैली स्वाभाविक है और दूसरे की ऊहात्मक।

२. बहाना बनाकर नायिका का आलिंगन करना भी रीतिकालीन प्रभाव है। बिहारी के नायक-नायिका भी चोरमिहीचनी के खेल में ही परस्पर आलिंगनबद्ध होने का अवसर पाते हैं—

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

'दोऊ चोरमिहीचनी, खेल न खेलि अघात।
दुरत हियें लपटाय कै, छुवत हियें लपटात॥'

ऐसा ही अवसर लक्ष्मण झूले में बैठकर ऊर्मिला का आलिंगन करने के लिए ढूंढ़ निकालते हैं।

सखि, आशांकुर............न मनभाये।

शब्दार्थ—आशांकुर—आशा के अंकुर। इस मिट्टी में—अयोध्या में। कामना—इच्छा। मनभायें—मन के अनुकूल।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपने मन का पछतावा अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! इस अयोध्या में आने पर तो मेरे आशा-रूपी अंकुर भी नहीं पाये; अर्थात् मैं कुछ दिन भी अपने प्रिय के साथ सुख से न रह सकी। मुझे बहुत अधिक और सब प्रकार का सुख मिले, इसकी तो मुझे इच्छा नहीं थी, पर मैं तो अपने प्रियतम के चरणों पर मनभाये फूल भी न चढ़ा सकी; अर्थात् मन-भरकर उनकी सेवा भी न कर सकी।

विशेष—इन पंक्तियों में ऊर्मिला का चित्रण आदर्श गृहिणी के रूप में किया गया है।

अलंकार—'आशांकुर' में 'आशा' पर 'अंकुर' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

कुलिश किसी पर............भड़क रहे हैं।

शब्दार्थ—कुलिश—वज्र। आली—सखी। तोयद—बादल। अरुण अधर —लाल होंठ।

अर्थ—वर्षा-ऋतु की भीषणता का वर्णन करती हुई ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! बिजली आकाश में कड़क रही है जो ऐसी प्रतीत होती है, मानो बिजली के रूप में कड़क कर आकाश वज्र गिरा रहा है। बादल गरज-गरज कर बरस रहे हैं। बेलों के लाल और नवीन पत्ते हवा के झोंकों से हिल रहे हैं जो ऐसे प्रतीत होते हैं मानो अपने मन की कुछ बात कहने के लिए बेलों के लाल-लाल होंठ फड़क रहे हों। मैं कहती हूँ कि हृदय की सार्थकता यही है कि वह अपने-में भावों को छिपाकर धड़कता रहे और भाव वे ही हैं जो अव्यक्त रहकर ही मन को उत्तेजित करते रहें। भाव यह है कि यदि हृदय में भावों की उथल-पुथल नहीं है तो वह शक्तिसम्पन्न नहीं हो सकता। हृदय की शक्ति और गति भावों के आंदोलन में ही निहित है

ai Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

और भावों की भावमयता तभी तक है जब तक वे होंठों तक आकर ही रुके रहें, अर्थात् वे अनकहे ही बने रहें।

विशेष—इस छंद की अंतिम चार पंक्तियों में ऊर्मिला ने अपने ही हृदय की दशा का वर्णन किया है। निरंतर धड़कनों को सहने के कारण वह इन्हें सहने की इतनी अभ्यस्त हो गई है कि इन्हें ही हृदय की सार्थकता का मूल मान बैठी है। वस्तुतः ये पंक्तियाँ प्रकारांतर से ऊर्मिला की अथाह व्यथा को ही व्यक्त करती हैं।

अलंकार—१. 'कुछ कहने के लिए लता के अरुण अधर वे फड़क रहे हैं' में अफल में फल की सम्भावना होने से फलोत्प्रेक्षा अलंकार।

२. 'अटक अटककर भटक भटककर' में वृत्त्यनुप्रास अलंकार।

मैं निज अलिंद…………छिपाई थी।

शब्दार्थ—अलिंद—चबूतरा, छज्जा। गमकना—महकना। चंचल—बिजली। घनाली—बादलों का समूह।

अर्थ—वर्षा-ऋतु को देखकर ऊर्मिला को संयोगावस्था की एक घटना याद आ जाती है जिसका वर्णन वह अपनी सखी से करती है कि हे सखि! एक रात ऐसी ही रिमझिम करके बूंदें पड़ रही थीं और आकाश में ऐसी ही घटा छाई हुई थी। मैं अपने महल के अलिन्द में खड़ी हुई थी, केतकी पुष्प की महक चारों ओर फैली थी जिससे सारा वातावरण महक रहा था। झिल्ली की झंकार हो रही थी जो मुझे बहुत ही प्रिय लग रही थी। झिल्ली की झंकार का अनुकरण मैं अपने नूपुरों से करने लगी, अर्थात् मस्त होकर अपने नूपुरों को बजाने लगी। उसी समय बिजली चमकी और बादलों का समूह गरज उठा। बिजली के प्रकाश में मैंने चौंककर देखा कि कोने में छिपे हुए मेरे प्रियतम खड़े थे। हे सखि! उन्हें देखकर मैं इतनी लज्जित हुई कि मैंने अपने मुख की लज्जा को उनकी छाती से लगाकर छिपाया, अर्थात् प्रेमावेश में मैं उनके हृदय से लग गई।

विशेष—१. समान पदार्थ देखकर विरहिणी को गत-घटनाओं का स्मरण हो आना स्वाभाविक ही है।

२. पंडित रामदहिन मिश्र ने इस कवित्त का काव्यशास्त्रीय विश्लेषण इस प्रकार किया है—

'इसमें ऊर्मिला आलम्बन विभाव है। उद्दीपन है बूंदों का पड़ना, घटा का

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

...ाना, फूल का गमकना, झिल्लियों का झनकारना आदि। छाती में मुँह छिपाना आदि अनुभाव हैं। लज्जा, स्मृति, हर्ष, विबोध आदि संचारी भाव हैं। इन भावों से परिपुष्ट रति स्थायी भाव विप्रलम्भ शृंगार रस में परिणत होकर ...नित होता है।'

अलंकार—आकस्मिक कारणांतर के योग से कर्त्ता को अनायास सिद्धि ...त हो जाने का वर्णन होने से समाधि अलंकार।

तन में तू भी............बन में जाग।

शब्दार्थ—तम—अन्धकार। जी—चिरंजीवी हो। बड़भाग—सौभाग्य- ...ली।

अर्थ—वर्षा-ऋतु में चमकते हुए जुगनू को देखकर ऊर्मिला उससे कहती ...कि हे जुगनू! यद्यपि तेरा प्रकाश बहुत कम है, पर अन्धकार में तेरा भी ...त्व है। दूसरों को प्रकाश देने का अवसर मिलने के कारण, भले ही वह ...-सा प्रकाश हो, तू सौभाग्वशाली है और मैं तुझे आशीर्वाद देती हूँ कि चिरंजीवी हो। पर साथ ही तुझसे यह विनय भी करती हूँ कि तेरा यहाँ ...कने से कोई लाभ नहीं है, क्योंकि यहाँ तो प्रत्येक भवन को प्रकाशित करने ...दीपक जल रहे हैं, इसलिए तू बनों में जाकर चमक, क्योंकि वहाँ पर ...श का कोई प्रबंध नहीं होता। अतः हो सकता है कि मेरे भी प्रियतम ...ी बन के अन्धेरे में भटक कर कष्ट पा रहे हों। तू उनके मार्ग का प्रदर्शन ...के उन्हें सुख पहुँचा।

विशेष—१. जुगनू के माध्यम से ऊर्मिला ने अपने प्रियतम के प्रति ...आसक्ति व्यक्त की है, क्योंकि वह अपने सब सुखों को उसी पर न्यौछा- ...र देना चाहती है।

२. 'जा बन बन में जाग' से यह स्पष्ट होता है कि ऊर्मिला को यह पता ...है कि उसका प्रियतम किस बन में जा रहा है। तभी तो वह किसी ...त बन का नाम नहीं ले पाती। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि ऊर्मिला ...करुण-भावना अपार है क्योंकि वह उसी बन को प्रकाशित करना नहीं ...ी जिसमें उसका प्रियतम है, वरन् सभी बनों के अन्धकार को दूर करना ...ी है, ताकि प्रत्येक वन में रहने वाले सभी प्राणियों को कष्टों से मुक्ति ...सके।

३. 'बड़भाग' शब्द के प्रयोग से ऊर्मिला की परोपकार की उत्कृष्ट भावना

aiGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

व्यक्त होती है। वह जुगनू को इसलिए बड़भागी समझती है, क्योंकि उसे दूसरों के कष्टों को दूर करने का अवसर मिलता है, चाहे वह कितना ही नगण्य क्यों न हो।

अलंकार—१. 'तम में तू भी कम नहीं' में 'तम' और 'कम' में स्वरों और व्यंजनों की एक बार समता होने से छेकानुप्रास अलंकार।

२. 'भवन भवन' और 'वन वन' में 'भवन' और 'वन' शब्दों की भावमयी आवृत्ति होने से पुनरुक्ति अलंकार।

हा ! वह सहृदयता............तड़िता।

शब्दार्थ—सहृदयता—रसिकता। कठोर-जड़िता—अत्यन्त कठोर। स्वजनि—हे सखि ! घनालिंगन—बादल के द्वारा आलिंगन में बाँधी हुई। तड़िता—बिजली।

अर्थ—बादलों में चमकती हुई बिजली को देखकर ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! आनन्द-क्रीड़ा में अपनाई गई रसिकता भी अत्यन्त कठोर होती है। देखो, इसीलिए बादल के द्वारा आलिंगन में बाँधी हुई बिजली उसके कठोर-बाहुपाश के कारण बार-बार तड़प उठती है।

ऊर्मिला का कहने का तात्पर्य यह है कि आनन्द-क्रीड़ा अन्त में दुखदायी ही सिद्ध होती है, चाहे वह कठोर बन्धन के कारण हो और चाहे वियोग की दुखद स्मृति के कारण।

विशेष—कवि के यह कल्पना अत्यन्त मौलिक एवं भावमयी है।

अलंकार—अहेतु में हेतु की सम्भावना होने से हेतूत्प्रेक्षा अलंकार।

गाढ़ तिमिर की...........चकराती है दृष्टि।

शब्दार्थ—गाढ़ तिमिर—गहरा अन्धकार।

अर्थ—वर्षा-ऋतु के कारण सर्वत्र अन्धकार फैला हुआ है। उसको देखकर ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! वर्षाजन्य गहरे अन्धकार की बाढ़ में सारी सृष्टि डूबी हुई है। ऐसा प्रतीत होता है मानो चक्कर में पड़कर दृष्टि चकरा रही हो।

भाव यह है कि जिस प्रकार चकराकर दृष्टि प्रकाश में भी अन्धकार देखती है, उसी प्रकार सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है, मानो चक्कर खाकर दृष्टि अपनी शक्ति ही खो बैठी हो।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

विशेष—वर्षाजन्य अन्धकार का भावपूर्ण वर्णन है।

अलंकार—१. 'गाढ़ तिमिर की बाढ़' में 'तिमिर' पर 'बाढ़' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

२. अहेतु में हेतु की सम्भावना होने से हेतूत्प्रेक्षा अलंकार।

लाई सखि मालिनें............विवाद है।

शब्दार्थ—वार—दिन। जम्बूफल—जामुन। रसाल—आम। देवर—शत्रुघ्न। प्रसादभागी—(१) खाने वाला, (२) कृपापात्र। विधि—भगवान्। प्रमाद—कोप।

अर्थ—अपनी संयोगावस्था की एक बीती घटना का वर्णन करती हुई उर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! तुझे वह दिन याद होगा जब एक दिन मालिनें डाली लाई थीं। डाली में से जीजी (सीता) ने जामुन ली थीं और मैंने आम लिए थे। देवर शत्रुघ्न भी वहीं पर खड़े हुए थे। वे हँसकर बोले कि अपना-अपना स्वाद है, किसी को कोई चीज अच्छी लगती है और किसी को कोई। यह सुन-कर मैंने पूछा था कि हे रसिक! तुम्हें कौन-सी चीज अच्छी लगती है? मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था कि हे देवि! मुझे तो दोनों ही चीजें अच्छी लगती हैं—जामुन और आम भी। मैं दोनों को ही रुचिपूर्वक खाने वाला हूँ, अथवा मैं तुम दोनों का ही कृपा-पात्र हूं, दोनों की ही कृपा चाहता हूँ। हे सखि! उस समय उनका यह विनोद बहुत अच्छा लगा था, पर आज भगवान् के कोप से वही विनोद दुख बन गया है।

विशेष—साकेतकार ने भारतीय आदर्श गृहस्थ-जीवन का चित्रण किया है, यह कवित्त उसी का एक अंश है।

अलंकार—गुणवाली वस्तु (विनोद) का भी दोषयुक्त होने के कारण तिरस्कार किये जाने का वर्णन होने से तिरस्कार अलंकार।

निचोड़ पृथ्वी पर.........सिक्त मेरा।

शब्दार्थ—वृष्टि-पानी—वर्षा का पानी। विचित्राम्बर—(१) रंग-बिरंगा आकाश, (२) रंग-बिरंगा वस्त्र। सृष्टिरानी—सृष्टि-रूपी रानी। मानस—(१) मानसरोवर, (२) हृदय। सिक्त—गीला।

अर्थ—वर्षा के थम जाने पर और आकाश पर रंग-बिरंगे बादलों के छा

ai Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

जाने पर ऊर्मिला सृष्टि (प्रकृति) को सम्बोधित करती हुई कहती है कि सृष्टि-रूपी रानी ! क्या तुमने वर्षा का पानी निचोड़कर पृथ्वी पर डाल दि है और अपने रंग-बिरंगे आकाश-रूपी वस्त्र को सुखा लिया है ? क्या ते मानसरोवर-रूपी हृदय पानी-रूपी करुणा से खाली हो गया है ? यदि ऐसा तो घबराने की कोई बात नहीं है, क्योंकि अभी तक मेरा अंचल गीला ब हुआ है, अर्थात् मेरे बहते हुए आँसू अभी थमे नहीं हैं, अतः वे वर्षा का अ पूरा कर सकते हैं।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि की उत्कृष्ट कल्पना का दर्शन होता है भावों के उत्कर्ष में वृद्धि करती है।

अलंकार—१. 'सृष्टिरानी' में 'सृष्टि' पर 'रानी' का अभेद आरोप हो से रूपक अलंकार।

२. 'अम्बर' और 'मानस' शब्दों के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार

सखि, छिन धूप······चौमासे की माया

शब्दार्थ—छिन—क्षण। चौमासे—वर्षा-ऋतु। श्वास—साँस। कृश— दुर्बल। निज-दर्शन-योग—(१) प्रियतम के दर्शन का संयोग, (२) आत साक्षात्कार के लिए किया गया योग। दैव—भाग्य।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! चौम में क्षण भर के लिए धूप निकल आती है और क्षण-भर के लिए सूर्य छिप छाया कर देता है। क्षण भर के लिए धूप और क्षण भर के लिए छाया क यह सब चौमासे की माया है। चाहे कितनी ही कष्टकर वर्षा होती रहे, यदि गया हुआ श्वास बना रहे, अर्थात् जीवन बना रहे तो विरह-वियोग भीषण कष्टों से दुर्बल बना हुआ शरीर भी सजीव बना रहेगा और इस प्र हमारे लिए प्रियतम के दर्शन का संयोग बना रहेगा। कहने का भाव यह है यदि मैं जीवित रही, तो मुझे आशा है कि कभी-न-कभी प्रियतम के द अवश्य कर लूँगी। यदि मैं जीवित न रह सकी तो प्रियतम के दर्शन का सं उसी प्रकार हाथ से निकल जाएगा जिस प्रकार प्राणायाम के विफल होने किसी योगी के लिए आत्मसाक्षात्कार के लिए किये गए योग का कोई नहीं रह जाता। भाग्य में जो कुछ लिखा है, उसे सहर्ष स्वीकार कर ले चाहिए। क्षण-भर के लिए धूप और क्षण-भर के लिए छाया उत्पन्न करना सब चौमासे की ही माया है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

विशेष—१. इन पंक्तियों की भाषा का विश्लेषण करते हुए डॉ०सहल ने लिखा है—

'हमने उसको रोक न पाया' में 'हमने' का प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है। इसलिए यहाँ च्युतसंस्कृति दोष है। 'सकने' के अर्थ में 'पाना' क्रिया अपनी सकर्मकता खो देती है। शुद्ध प्रयोग होगा...'यदि हम उसको रोक नहीं पाये।' सम्भवतः तुक-साम्य और छंदानुरोध की दृष्ट से कवि ने इस तरह का प्रयोग कर दिया है। 'देह उसे जो रोक न पाया' इस प्रकार का प्रयोग हो सकता था, पर 'हमने उसको रोक न पाया' में जो बल है, वह सम्भवतः संशोधित प्रयोग में नहीं है।'

२. श्वास, कृशता, दर्शन और योग शब्द योग-साधना के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग सरस शैली में हुआ है।

पथ तक जकड़े हैं.......................क्या कहेंगे ?

शब्दार्थ—वनचारी—बन में विचरण करने वाले। गेह—गृह, घर।

अर्थ—ठीक प्रकार से देखभाल न होने के कारण ऊर्मिला का उपवन झाड़ियों से भर गया है। उन झाड़ियों को देखकर वह अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! उपवन के सारे मार्गों को घेरा डालकर झाड़ियाँ जकड़े हुए हैं; अर्थात् उपवन में झाड़ियाँ इतनी फैल गई हैं कि इन्होंने मार्ग भी बंद कर दिये हैं। इन्हें देखकर तो ऐसा लगता है जैसे यह उपवन बन ही बन गया है। जब मेरे प्रियतम बन से लौटकर आयेंगे तो घर में रहकर भी वे बन में विचरण करने वाले ही बने रहेंगे, अर्थात् अपने बनवास से लौटकर आने पर यह घर भी उन्हें वन के समान ही लगेगा। अपने प्रिय उपवन की यह दशा देखकर उन्हें निश्चय ही दुःख होगा।

विशेष—ऊर्मिला अपने प्रियतम की रुचि का सदैव ध्यान रखती है। यह इसके अपार प्रेम का सूचक है।

अलंकार—१. 'उपवन वन' में 'वन' शब्द की निरर्थक-सार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार।

२. 'उपवन वन-सा हो गया' में उपवन का वन से सादृश्य वर्णित होने के कारण उपमा अलंकार।

करें परिष्कृत.......................इसका ध्यान।

शब्दार्थ—परिष्कृत—साफ। गहन—बन।

aiGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अर्थ—अपने उपवन में उगी हुई अनेक झाड़ियों को देखकर ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! मालिनों को आज्ञा दे दो कि वे इस उपवन की सफाई कर दें, इसकी झाड़ियों को काटकर इसके रूप को सुव्यवस्थित कर दें, क्योंकि बन में भी प्रियतम इसी उपवन की याद करते होंगे।

विशेष—ऊर्मिला सदैव अपने प्रियतम की रुचि का ध्यान रखती है। यह स्वभाव आदर्श गृहिणी का होता है।

अलंकार—'करते होंगे गहन में प्रियतम इसका ध्यान' में अनुमान होने से अनुमान अलंकार।

ठीक कहा तूने...............ज्यों गेह।

शब्दार्थ—अर्पित—प्रियतम को समर्पित। देह—शरीर। गेह—गृह, घर।

अर्थ—जब ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि वह उपवन की सफाई मालिनों से करा दे, क्योंकि उसके प्रियतम को अपने इस प्रिय उपवन का ही निरंतर ध्यान बना रहता होगा तो उसकी सखी उत्तर देती है कि उपवन की भाँति तुम्हारे इस सुन्दर शरीर का ध्यान भी उन्हें आता होगा, अतः तुम अपने शरीर की भी तो देखभाल करो। इसको सुनकर ऊर्मिला उत्तर देती है कि हे सखि ! तुमने ठीक ही कहा है कि मेरा यह शरीर भी मेरे प्रियतम को अर्पित है, इसलिए मुझे इसकी भी देखभाल करनी चाहिए। अतः जिस प्रकार तू मेरे घर को सँभालकर रखती है, उसी प्रकार तू मेरे इस शरीर को भी सँभाल। भाव यह है कि विरह-वेदना के कारण मुझे तो अपने शरीर की सुध-बुध रहती नहीं है। इसका ध्यान रखना तेरा ही काम है।

विशेष—विरह-वेदना के कारण विरहिणी अपने शरीर की भी सुध-बुध खो बैठती है। इन पंक्तियों में ऊर्मिला की इसी दशा का वर्णन किया गया है।

अलंकार—'तू सँभाल कर रख इसे, रखती है ज्यों गेह' में उपमा अलंकार।

रह चिर-दिन...........जीवन-दान का तुझे।

शब्दार्थ—चिर-दिन—सदैव। सृष्टि-सुंदरी—सृष्टि की सुंदरी। सुध—याद। जीवन—(१) जीवन, (२) जल।

अर्थ—वर्षा-ऋतु को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे वर्षा-ऋतु ! तू सदैव हरी-भरी बनी रहे; अर्थात् सदैव तेरी सत्ता बनी रहे। हे सृष्टि की सुंदरी ! तू बढ़ती रहे और सदैव सुखों से परिपूर्ण बनी रहे। तेरे

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

द्वारा मुझे अपने प्रवासी प्रियतम की निरंतर याद आती रहे और तुझे प्रत्येक प्राणी को जल-रूपी जीवन का दान करने का फल मिलता रहे।

भाव यह है कि जिस प्रकार कोई दानी मनुष्य दान के द्वारा दूसरों के कष्टों का निवारण करके, उन्हें सुख देकर, स्वयं भी सुख प्राप्त करता है, उसी प्रकार तू भी गर्मी से संतप्त प्राणियों और पदार्थों को जल देकर उन्हें गर्मी की तपन से मुक्त करती है, अतः उन्हीं प्राणियों तथा पदार्थों की भाँति निरंतर सुख को प्राप्त करती रह।

विशेष—१. वर्षा-ऋतु विरहिणी की भावनाओं को उद्दीप्त करके उसे दुख पहुंचाती है, इसलिए वर्षा-ऋतु और विरहिणी का वैर परम्परागत है। इन पंक्तियों में विरहिणी ऊर्मिला वर्षा-ऋतु के प्रति अपना प्रेम एवं सहानुभूति प्रकट करके चिर-पोषित परम्परा को तोड़ रही है।

२. वर्षा-ऋतु के लिए 'सृष्टि-सुन्दरी' विशेषण का प्रयोग बहुत ही भावपूर्ण है। वर्षा के कारण ही गर्मी से उजड़ी हुई सृष्टि पुनः हरी-भरी हो जाती है। अपनी शीतलता के कारण वर्षा-ऋतु सबको प्रिय लगती है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कोई सुन्दर नारी अपने सहज सौंदर्य से सभी को आकर्षित कर लेती है।

अलंकार—१. 'सृष्टि-सुन्दरी' इस विशेषण का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकर अलंकार।

२. 'फल जन-जीवन-दान का तुझे' में केवल उपमान (वर्षा-ऋतु) का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

हँसो, हँसो हे शशि............इतना पिये हूँ।

शब्दार्थ—हिंडोरे पर—लता-रूपी हिंडोरे पर। यथेष्ट—पर्याप्त, काफी। रुदन—रोना। पिये हूँ—वेदना-रूपी जल को पिये हुए हूँ।

अर्थ—प्रकृति के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कह रही है कि हे चंद्रमा! तुम सदैव हँसते रहो, अर्थात् अपनी निर्मल चाँदनी लेकर सदा आकाश में चमकते रहो। हे फूल! तुम भी फूलों और लता-रूपी हिंडोरे पर बैठकर झूलो तथा आनंदपूर्वक खिलते रहो। तुम्हें किसी और के दुख को सहने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि रोने के लिए तो मैं ही काफी हूँ और मैं वेदना-रूपी जल को इतना पिये हुए हूँ कि चाहे मैं उसकी कितनी ही झड़ी लगा दूं, पर उसका अन्त नहीं होगा।

aiGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

विशेष—ऊर्मिला की अपार करुण-भावना का वर्णन है।

अलंकार—'हिंडोरे पर बैठ झूलो' में केवल उपमान का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

प्रकृति, तू प्रिय की·········उनकी कथा।

शब्दार्थ—स्मृति-मूर्ति—याद की साकार मूर्ति। जड़ित—निर्जीव बने हुए। चेतन की—सजीव की। त्रुटि-पूर्ति— अभावों को पूरा करने वाली।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला कह रही है कि हे प्रकृति ! तू मेरे प्रियतम की याद की साकार मूर्ति है, अर्थात् तुझे देख कर मुझे अपने प्रवासी प्रियतम की याद आ जाती है। तू निर्जीव बने हुए सजीव प्राणियों के अभावों को पूरा करने वाली है। भाव यह है कि मैं अपने प्रियतम के विरह में निर्जीव बनी हुई हूँ, पर तुझे देखकर मुझे वहुत अधिक सान्त्वना मिलती है और मैं काफी सीमा तक अपने दुख से छुटकारा पा लेती हूं। हे मन की व्यथा ! तू भी मेरे मन में निरन्तर बनी रहे, ताकि मैं सदैव सजीव बनी रहूँ। हे सखि ! तू मुझे मेरे प्रियतम की कहानी सुना, क्योंकि उनकी कहानी से मुझे सुख मिलता है और मैं अपनी विरह-वेदना को भूल जाती हूँ।

विशेष—विरह-वेदना के कारण विरहिणी के विचारों में गाम्भीर्य नहीं रहता। उसके मन में विभिन्न विचारों के चित्र उभरते रहते हैं। ऊर्मिला के मन की इसी दशा का वर्णन कवि ने इन विविध विचारों के माध्यम से किया है।

अलंकार—'जड़ित चेतन' और 'रख सजीव मुझे मन की व्यथा' में अर्थ में विरोध का आभास होने से विरोधाभास अलंकार।

निरख सखी·········अर्घ्य भर लाये।

शब्दार्थ—निरख—देखो। खंजन—खंजन नामक पक्षी। उन—प्रवासी मेरे रंजन ने—मेरे प्रियतम ने। मन भाये—मनोहर। आतप—(१) धूप (२) आलोक। वँधूक—एक प्रकार का लाल फूल जिसकी तुलना होंठों से की जाती है। वारे—न्यौछावर किए। अर्घ्य—पूजा-जल।

अर्थ—वर्षा-ऋतु के वीत जाने पर और शरद-ऋतु के आने पर खंजन पक्षी दिखाई देने लगे। उन्हें देखकर ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि सखि ! देखो, खंजन पक्षी आ गये हैं। ये खंजन पक्षी नहीं हैं, वरन् ऐसा प्रतीत

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

होता है जैसे मेरे प्रवासी प्रियतम ने मेरी सुधि करके अपने नेत्रों को इस ओर फेरा हो। धरती पर यह फैली हुई धूप धूप नहीं है, बल्कि मेरे प्रियतम के शरीर का सौंदर्यजन्य आलोक है। सरोवरों में जो सुषमा-भरी सरसता दिखाई देती है ये उन्हीं के प्रेम-भाव सरस होकर खिल उठे हैं। मेरी सुधि करके वे बन से इस ओर घूमे हैं, इसी कारण ये हंस उड़कर यहाँ छा गये हैं। भाव यह है कि ये जो उड़ते हंस तुम्हें दिखाई दे रहे हैं, ये हंस नहीं हैं, वरन् उनकी इस ओर आती हुई गति है। सरोवरों में जो कमल फूले हुए दिखाई देते हैं, जो खिले हुए बंधूक पुष्प दिखाई देते हैं, ये न तो कमल हैं और न ये बंधूक पुष्प है, वरन् मुझ विरहिणी का ध्यान करके मेरे प्रियतम निश्चय ही प्रसन्नता से मुस्करा उठे हैं और यह उनके नेत्रों की तथा अधरों की बिखरी हुई शोभा है। हे शरद-ऋतु ! मैं तुम्हारा हार्दिक और उत्साहपूर्वक स्वागत करती हूँ। बड़े ही भाग्य से मुझे तुम्हारे दर्शन मिले हैं। तुम्हारे स्वागत में आकाश ओस-बिंदुओं के रूप में तुम पर मोतियों को न्यौछावर करता है और मैं आँसुओं के रूप में तुम्हारे चरणों पर पूजा का जल चढ़ाती हूँ।

विशेष—१. प्रकृति में अपने प्रियतम की छाया देखना साहित्य की प्राचीन परम्परा है। इस परम्परा का पालन अनेक कवियों ने किया है। जायसी ने पद्मावती के व्यापक सौंदर्य का वर्णन करते हुए लिखा है—

'नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन-ज्योति नग-हीर ॥'

केशव के राम भी प्रकृति के उपकरणों में सीता का रूप देखते हैं—

'कल हंस कलानिधि खंजन कंज कछू दिन केसव देख जिये।
गति आनन लोचन पावन के अनुरूपक से मन मानि लिये ॥
यहि काल कराल से सोधि सबै हठि कै बरसा मिस दूर किये।
अवधौं बिनु प्रानप्रिया रहिहै कहि कौन हितू अवलम्ब हिये ॥'

महादेवी भी मुस्काते आकाश में अपने प्रियतम की प्रसन्नता का रूप देखकर उनके आगमन की आशा से भर जाती हैं—

'मुस्काता संकेत-भरा नभ,
अलि ! क्या प्रिय आने वाले हैं ?'

२. विरहिणी प्रिय के आगमन की ही कल्पना से इतनी भाव-विभोर हो

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

). In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

उठती है कि मानो सचमुच ही उसके प्रियतम आने वाले हों। बिहारी की विरहिणी नायिका अपनी आँख की फड़कन को ही प्रियतम के आने का संकेत मानकर इतनी आशावती हो जाती है कि अपने मलिन वस्त्रों को त्यागकर नवीन वस्त्र धारण करने लगती है—

'मृगनैनी दृग की फरक, उर-उछाह, तन फूल।
बिन हीं प्रिय-आगम उमगि, पलटन लगी दुकूल॥

३. विरहिणी यशोधरा ने शरद-ऋतु के आगमन का वर्णन इन शब्दों में किया है—

'उनकी शांति कांति की ज्योत्स्ना जगती है पल-पल में।
शारदातप उनके विकास का सूचक है थल-थल में॥
नाच उठी आशा प्रति दल पर किरणों की झल-झल में।
खुला सलिल का हृदय-कमल खिल हंसों के कल-कल में॥'

अलंकार—१. प्रायः सम्पूर्ण गीत में अपह्नुति अलंकार का भावमय प्रयोग है।

२. 'अधर-से ये बंधूक सुहाये' में अधरों की बंधूक-पुष्पों से समानता वर्णित हैं, अतः उपमा अलंकार।

३. 'स्वागत' शब्द की भाव-व्यंजक आवृत्ति होने से पुनरुक्ति अलंकार।

४. 'नभ ने मोती वारे' में केवल उपमान (मोती) का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

अपने प्रेम-हिमाश्रु............लिया समेट।

शब्दार्थ—हिमाश्रु—शीतल आँसू। दूब—दूब नामक घास। रवि—सूर्य।

अर्थ—प्रेम की शक्ति का वर्णन करती हुई ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! दूब ने अपने प्रेम के शीतल आँसू सूर्य को भेंट किये और सूर्य ने उन्हें रत्नों के कण बनाकर समेट लिया, प्रेमपूर्वक ग्रहण कर लिया।

भाव यह है—दूब घास पर जो ओस की बूंदें होती हैं वे सूर्य की किरणों से मोतियों की तरह चमकने लगती हैं और फिर धीरे-धीरे सूख कर झड़ जाती हैं। प्रकृति की इसी घटना की व्याख्या ऊर्मिला इस प्रकार करती है कि दूब ने अपने ओस-रूपी आसुओं को अपने प्रिय सूर्य को उपहार देने के लिए प्रस्तुत किया। सूर्य ने उसके उपहार को आदरपूर्वक ग्रहण कर लिया, इसीलिए वे बूंदें फिर दूब पर दिखाई नहीं देतीं। इससे यह भाव व्यंजित होता है कि प्रेम

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

में बहुत बड़ी शक्ति होती है, तभी तो इतना विशाल सूर्य तुच्छ-सी दूब का उपहार पाकर कृतकृत्य हो जाता है।

विशेष—कवि की कल्पना भावों में सरसता तथा प्रभावशीलता उत्पन्न करने में पूर्ण सफल है।

अलंकार—अहेतु में हेतु की कल्पना होने से हेतूत्प्रेक्षा अलंकार।

प्रिय को था............पद-भार।

शब्दार्थ—प्रिय को—प्रियतम को। पद्महार—कमलों का हार। पद-भार—(१) गौरव का भार, (२) कमल-चरणों का भार।

अर्थ—संयोगावस्था की एक घटना का वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! जब मैंने अपने प्रियतम को कमलों का हार उपहार के रूप में दिया था तो उन्होंने कहा था कि इस उपहार के माध्यम से तुमने मुझे जो गौरव प्रदान किया है, उसके कारण मैं तुम्हारा बहुत ही आभारी हूँ। अथवा, तुमने इस उपहार के माध्यम से अपने कमल-चरणों का जो भार मेरे ऊपर डाल दिया है, उसके कारण मैं तुम्हारा बहुत ही आभार मानता हूं।

विशेष—आदर्श गृहस्थ-जीवन में प्रायः परिहास चला करता है। इन पंक्तियों में लक्ष्मण की परिहास-प्रवृत्ति स्पष्ट है।

अलंकार—१. 'पद्महार उपहार' में 'हार' शब्द की सार्थक-निरर्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार।

२. 'पद-भार' के दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

अम्बु अवनि............पित्त-पीड़ा-सी।

शब्दार्थ—अम्बु—जल। अवनि—पृथ्वी। अम्बर—आकाश। पुनीत—पवित्र। पित्त-पीड़ा-सी—पित्त की पीड़ा के समान जिसमें कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! जल, पृथ्वी और आकाश में स्वच्छ शरद-ऋतु की शोभा क्रीड़ा करती हुई-सी दिखाई देती है पर मेरे पीछे तो प्रियतम के आने की चौदह वर्षों की लम्बी अवधि पड़ी हुई है जिसके कारण मुझे उसी प्रकार सब चीजें कष्टकारिणी बनी हुई हैं जिस प्रकार पित्त-रोग की पीड़ा से ग्रस्त प्राणी को कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लगती।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

विशेष—प्रकृति का उद्दीपन विभाव के रूप में चित्रण है।

अलंकार—'पीछे पड़ी अवधि पित्त-पीड़ा-सी' में पूर्णोपमा अलंकार।

हुआ विदीर्ण..........विस्तीर्ण !

शब्दार्थ—विदीर्ण—फटना। श्वेत आवरण—सफेद चादर, सफेद बादल। जीर्ण—पुराना। व्योम—आकाश। शीर्ण—फटी हुई। कंचुक—केंचुली। विषधर—सर्प।

अर्थ—शरद-ऋतु के कारण आकाश में छाये हुए बादलों के टुकड़े जहाँ-तहाँ से हट गये हैं जिसके कारण आकाश की नीलिमा दिखाई देती है। आकाश की इसी दशा का वर्णन ऊर्मिला अपनी सखी से कर रही है कि हे सखि! जिस प्रकार केंचुली के फट जाने पर सर्प का काला रंग दिखाई देने लगता है उसी प्रकार जहाँ-तहाँ बादल-रूपी पुरानी चादर के फट जाने पर आकाश की नीलिमा दिखाई दे रही है।

भाव यह है कि बिखरे हुए बादलों के टुकड़ों से युक्त, विशाल आकाश केंचुली फटे हुए सर्प की भाँति बना हुआ है।

विशेष—१. आंतरिक तुक-साम्य के कारण इन पंक्तियों में संगीतात्मकता की प्रधानता है।

२. कवि की कल्पना-शक्ति की मौलिकता ने वक्तव्य को अधिक प्रभावशाली बना दिया है।

अलंकार—१. 'श्वेत आवरण जीर्ण' में केवल उपमान (आवरण) का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

२. 'व्योम शीर्ण कंचुक वरे विषधर-सा' में उपमा अलंकार।

शफरी अरी..........सागर में।

शब्दार्थ—शफरी—मछली। निमग्न—डूबना। सर—सरोवर, तालाब। रस—आनंद। गोरस—इंद्रियों का आनंद। रस-गोरस—इंद्रियों के द्वारा प्राप्त आनंद।

अर्थ—अपनी सीमा और स्वान में ही वास्तविक सुख होता है, इसका वर्णन करती हुई ऊर्मिला मछली को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे मछली! तू यह तो बता कि इस सरोवर में डूबकर भी तू क्यों तड़प रही है? अर्थात् सरोवर को प्राप्त करके तुझे सागर की आकांक्षा से तड़पना नहीं

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

चाहिये, क्योंकि अपने गागर में जो आनंद होता है, वह स्वयं सागर में भी नहीं मिल सकता।

ऊर्मिला अपने दुखी मन को सान्त्वना देती हुई कहती है कि उसे अपनी ही परिस्थितियों में संतुष्ट रहना चाहिये, क्योंकि वास्तविक आनंद तो अपनी ही परिस्थितिजन्य सीमा और साधनों में ही निहित होता है। अपनी सीमा को और अपने साधनों को लाँघकर सुख की इच्छा वस्तुत: दुख का ही कारण होती है, अत: उसे अपने वियोग में ही आनंद मानना चाहिये।

विशेष—शफरी के माध्यम से ऊर्मिला अपनी ही मन:स्थिति का वर्णन कर रही है। यह शैली अत्यंत भावपूर्ण है।

अलंकार—विशेष कथन का सामान्य कथन से समर्थन होने से अर्थांतर-न्यास अलंकार।

भ्रमरी, इस········सुख भोग कभी !

शब्दार्थ—मोहन—सुन्दर। मानस—(१)सरोवर,(२) हृदय। मादक—(१) नशीला, (२) आकर्षक। रस-भाव—(१) पुष्प रस, (२) सुख के भाव। मधु—(१) पुष्प रस, (२) सांसारिक वैभव। मदान्ध—पागल। क्षेम—कुशलता। सविशेष—विशेष रूप से।

प्रथम अर्थ—भ्रमरी को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे भ्रमरी ! सुन, इस मन को मोहने वाले मानसरोवर के पुष्पों के सभी रस नशीले हैं। तूने इनका जितना रस पी लिया है उतना ही पर्याप्त है। और अधिक रस पीकर पागल न बन। तेरी कुशलता इसी में है कि बस अब तू उड़ जा, क्योंकि यद्यपि रात अभी कुछ दूर है, फिर भी तू रात का आगमन न जानकर कहीं कमलों की पंखुड़ियों में बन्द न हो जाये ? समय किसी प्राणी का विशेष रूप से उपलब्ध सुख-भोग कभी सहन नहीं करता, अर्थात् काल क्रूर होता है। वह जिस भी प्राणी को सुखी देखता है उसे ही दुख पहुँचाता है।

द्वितीय अर्थ—सांसारिक सुख-भोग में डूबी हुई नारी ! यद्यपि तेरे सुन्दर हृदय के सभी भाव आकर्षक हैं, मधुर इच्छाओं से भरे हुए हैं। तूने जितना सुख भोग लिया है, उतना ही पर्याप्त है। तेरी कुशलता इसी में है कि तू इन इच्छाओं का त्याग कर दे क्योंकि शीघ्र ही उस दुर्भाग्य के हाथ में पड़ कर पीड़ित बनेगी। जिसकी तूं अभी तक कल्पना नहीं कर रही है। इसका कारण

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

). In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

यह है कि दुर्भाग्य किसी के सुखपूर्वक व्यतीत होते हुए दिनों को सहन नहीं करता।

विशेष—इन पंक्तियों से ऊर्मिला की अपार विरह-वेदना व्यक्त होती है। ऐसा लगता है कि वह वेदना की उस सीमा पर पहुँच गई है जहाँ सांसारिक सुखों के प्रति वैराग्य-भावना उत्पन्न होने लगती है।

अलंकार—१. मोहन, मानस, रस भाव, मधु आदि शब्दों के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

२. प्रस्तुत के द्वारा अप्रस्तुत अर्थ का भी बोध होने से अन्योक्ति अलंकार।

३. सम्पूर्ण कथन का 'दिन देख नहीं सकते सविशेष किसी जन का सुख भोग कभी' के द्वारा समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार।

इस उत्पल से काय······दृग त्राण।

शब्दार्थ—उत्पल-से—कमल से समान कोमल। काय—काया, शरीर। उपल से—पत्थर के समान कठोर। वक—बगुला। त्राण—छुटकारा।

अर्थ—बगुला को सम्बोधित करती हुई ऊर्मिला कहती है कि हे वक! तुम्हारा शरीर तो कमल के समान कोमल हैं, पर इस कोमल शरीर में पत्थर के समान कठोर तुम्हारे प्राण हैं। कहने का भाव यह है कि तुम देखने में तो बहुत ही कोमल दिखाई देते हो, पर हो तुम बहुत ही कठोर। हे वक! तुम अपना यह दिखावटी ध्यान रहने दो, ताकि मेरे नेत्रों के समान दुखी मछलियां दुख से छुटकारा पाएं।

विशेष—१. ऊर्मिला की करुण-भावना की सजीव अभिव्यक्ति है।

२. 'पावें ये दृग त्राण' के ये अर्थ भी हो सकते हैं—

(क) तू अपनी बन्द आंखों को खोल, जिससे तेरी आँखों को छुटकारा मिले (क्योंकि किसी बन्द वस्तु को खोलने से ही उसे छुटकारा मिलता है। आँखों को भी बलात् बन्द करने से दुख और उन्हें खोल लेने से सुख मिलता है।)

(ख) तू अपने इस ढोंग को छोड़ दे जिससे तेरे इस कुकृत्य को न देख सकने के कारण मेरी आंखें दुख से छुटकारा पा सकें (क्योंकि अब तुम्हारे इस ढोंग को देखकर मुझे बहुत दुख होता है।)

(ग) स्वयं गुप्त जी ने इन शब्दों के अर्थ की ओर इन शब्दों में संकेत दिया है—

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

'पावें ये दृग त्राण' में ऊर्मिला की अपनी आँखों से आशय है, अर्थात् यह दारुण अथवा भंड व्यापार देखने से मेरी आँखें परित्राण पावें। कोई चाहे तो भले ही इसमें रूपगर्विता की सिद्धि कर ले कि ऊर्मिला अपने नेत्रों को मीन समझ कर उनका परित्राण चाहती है।'

अलंकार—१. इस उत्पल से काय में हाय! उपल-से प्राण' में धर्म-लुप्तोपमा अलंकार।

२. 'हाय काय' में स्वरों और व्यंजनों की एक बार समता होने से छेकानुप्रास अलंकार।

३. 'पावें ये दृग त्राण' में दृग मछलियों का प्रतीक हैं। अतः वाचकोपमान-धर्मलुप्तोपमा अलंकार।

हंस छोड़ आये······क्या संदेश?

शब्दार्थ—हंस—(१) हंस नामक पक्षी, (२) आत्मा। मुक्ताओं का—(१) मोतियों का (२) मुक्त पुरुषों का।

प्रथम अर्थ—हंसों को सम्बोधित करके ऊर्मिला कहती है कि हे हंस! तुम अपने मोतियों का देश कहाँ छोड़ कर चले आये? और मुझ बंदिनी के लिए मेरे प्रवासी प्रियतम का क्या संदेश लाए हो?

द्वितीय अर्थ—अपनी आत्मा को सम्बोधित करती हुई ऊर्मिला कहती हैं कि हे आत्मा! तुम्हारा देश वह है जहाँ मुक्त पुरुष रहते हैं। तुम अपने उस देश को (आध्यात्मिक जगत् को) छोड़ कर यहाँ कहाँ चली आई? यहाँ तो मैं स्वयं बन्दिनी हूँ। बन्दिनी के साथ रह कर तुम्हें सुख नहीं मिलेगा, इसलिए यहाँ तुम्हारा आना व्यर्थ ही है।

विशेष—हंसों के द्वारा प्रवासी प्रियतम की संदेश की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। इन पंक्तियों में उसी परम्परा का प्रभाव है।

अलंकार—हंस और मुक्ताओं के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

हंस हहा······जर के!

शब्दार्थ—विवेक—ज्ञान। जर के—असहाय प्राणी के।

अर्थ—हंस को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे हंस! तुम्हारा तो नीर-क्षीर-विवेक अर्थात् दूध और पानी की पहचान का परम प्रसिद्ध ज्ञान है। लेकिन न जाने तुम्हारा वह ज्ञान क्यों नष्ट हो गया जो तुम मेरे आँसुओं की बूंदों को मोती समझ कर चुगने का प्रयास कर रहे हो।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

वस्तुत: ये मोती नहीं हैं, वरन् वियोगिनी एवं असहाय ऊर्मिला के आँसू हैं।

विशेष—इन पंक्तियों में ऊर्मिला की प्रलाप दशा का वर्णन है।

अलंकार—'मोती नहीं, अरे ये आंसू हैं ऊर्मिला जन के' में भ्रान्त्यापह्नुति अलंकार।

चली क्रौंचमाला········मंगलाचार।

शब्दार्थ—क्रौंचमाला—क्रौंच पक्षियों का समूह। सुकृति—पुण्यवान।

अर्थ—आकाश में उड़ते हुए क्रौंच पक्षियों के समूह को देखकर ऊर्मिला अपनी सखी से पूछती है कि हे सखि! यह बन्दनवार का रूप बनाकर क्रौंच पक्षिओं का समूह कहां जा रहा है। न जाने वह कौन पुण्यवान व्यक्ति होगा जिसके द्वार पर मंगलाचार हो रहा है और ये पक्षी-रूपी बन्दनवार उसी द्वार को सुसज्जित करने के लिए जा रही है।

विशेष—इन पंक्तियों में ऊर्मिला की विरह-व्यथा प्रकारान्तर से अभि-व्यक्त की गई है।

अलंकार—क्रौंचमाला पर बन्दनवार का अभेदारोपण होने से रूपक अलंकार।

सखि, गोमुखी········करुणा वहां।

शब्दार्थ—गोमुखी—नीचे की ओर प्रवाहित होने वाली। कुररीमुखी—क्रौंच पक्षी के समान वेदना प्रकट करने वाली।

अर्थ—ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! गंगा सदैव नीचे की ओर प्रवाहित होती रहे और क्रौंच पक्षी के समान वेदना प्रकट करने वाली करुणा ऊपर की ओर चलती रहे, जहां से गंगा निकलती है।

भाव यह है कि गंगा की पवित्रता एवं शीतलता (सुख तथा आनन्द) से संसार के निवासी परिप्रोत रहें, अर्थात् उनमें पवित्रता आदि सात्विक भाव बने रहें, और करुणा भगवान् की ओर चले ताकि संसार के निवासियों का दुःख जान कर उसका निवारण करें।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि की क्लिष्ट कल्पना अभीष्टार्थ की सुबोधता में बाधक है।

कोक शोक············रात।

शब्दार्थ—उत्पात—दुःख। सुप्रभात—सुखपूर्ण प्रभात।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अर्थ—विरही कोक एवं विरहिणी कोकी को सम्बोधित करती हुई विरह-व्यथिता ऊर्मिला कहती है कि हे कोक ! तू शोक मत कर। हे चकवी ! तू मेरी बात सुन। तेरी तरह मैं भी तो कष्ट में हूँ और प्रियतम से मिलन की आशा से इन कष्टदायक दिनों को बिता रही हूँ, अतः तू अपने मन में धैर्य धारण कर, अपने प्रिय से मिलने का अवसर आने दे और यह विरह-दुख मिलन-आशा को लेकर सहन कर ले, क्योंकि यह निश्चित है कि जो मेरा सुखों से भरा हुआ प्रभात होगा, वही तेरी सुख से भरी हुई सुहाग की रात होगी।

भाव यह है कि इस विरह-रात्रि के बीत जाने पर मिलन का प्रभात होगा जो मेरे लिए भी तथा तेरे लिए भी सुखदायी होगा।

विशेष—चकवा चकवी के शोक का परम्परागत वर्णन करके ही कवि ने इस वर्णन के माध्यम से ऊर्मिला के मन की दृढ़ता का परिचय दिया है।

अलंकार—'कोक शोक' में स्वरों और व्यंजनों की एक बार समता होने से छेकानुप्रास अलंकार।

हा ! मेरे कुञ्जों............वसन-सा धोया।

शब्दार्थ—कुंजों का कूजन—कुंजों में बोलने वाले पक्षियों की मधुर ध्वनि। चन्द्रोदय—चन्द्रमा का उदय। धवल—सफेद। वसन-सा—वस्त्र सा।

अर्थ—सन्ध्या के आने पर पक्षियों का चहचहाना बन्द हो गया है। इससे चिंतित होकर ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! मेरे कुंजों में बोलने वाले पक्षियों का मधुर स्वर बन्द हो गया है और उनके कुंजों पर चन्द्रमा ने आकर सफेद चाँदनी फैला दी है। यह घटना ऐसी प्रतीत होती है जैसे रोकर और निराश होकर सो जाने वाले बच्चे पर माँ स्वच्छ वस्त्र ओढ़ा देती है।

विशेष—१. इन पंक्तियों में कवि की नवीन कल्पना अत्यन्त भावपूर्ण है।

२. कुंजों का कूँजना में लक्षणा शब्द-शक्ति है।

अलंकार—१. 'यह चन्द्रोदय उसको उढ़ा रहा है' में केवल उपमान (चन्द्रोदय) का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

२. 'धवल वसन-सा' में उपमा अलंकार।

३. 'धवल वसन-सा धोया' में 'धवल' और धोया एकार्थवाची शब्दों का

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

प्रयोग होने से पुनरुक्तवदाभास अलंकार।

सखि.........देता है।

शब्दार्थ—करुणांकुर—करुणा के अंकुर। सेता है—उत्पन्न करता है। औषधीश—चन्द्रमा। स्वकरों से (१) अपनी किरणों से। (२) अपने हाथ से। अस्थिसार—(१) हड्डियों का खाद, (२) दृढ़ता।

अर्थ—ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि वियोग के द्वारा इस लोक करुणा का जन्म होता है और यह करुणा चन्द्रमा से उद्दीप्त होकर उसी प्रक पुष्ट होती है जिस प्रकार अंकुर हड्डी का खाद पाकर फलते-फूलते हैं। भा यह है कि प्रकृति के उद्दीपन विभाव मेरे करुण भाव को पुष्ट करके मेरे मन वियोगजन्य दुख को सहन करने की दृढ़ता उत्पन्न करते हैं।

विशेष—१. इन पंक्तियों में कवि ने प्रकृति का परम्परामुक्त वर्णन कि है। अब तक की साहित्यिक परम्परा यह रही है कि विरहिणी चन्द्रमा अपना शत्रु मानती रही है। सम्भवतः साहित्यिक जगत् में पहली बार ऊर्मि ने ही उससे प्रेरणा और दृढ़ता ग्रहण की है। कवि की इस मौलिक कल्पना आधार कदाचित् युग का प्रभाव है।

२. 'मेरी धरती' के प्रयोग से ऊर्मिला की जगत् के प्रति घनिष्ठ आत्मी व्यक्त होती है।

अलंकार—१. 'करुणांकुर' में 'करुणा' पर 'अंकुर' का अभेदारोप होने रूपक अलंकार।

२. 'स्वकर' तथा 'अस्थिसार' शब्दों के दो-दो अर्थ होने से श अलंकार।

जन प्राची जननी.........टोना है।

शब्दार्थ—जन—उत्पन्न करके। प्राची जननी ने—पूर्व दिशा-रूपी मा ने। शशि-शिशु—चन्द्रमा-रूपी बालक। डिठौना—टीका। टोना—बुरी अनुचित।

अर्थ—पूर्व दिशा में उगते हुए चन्द्रमा को देखकर विरहिणी ऊ अपनी सखि से कहती है कि हे सखि! पूर्व दिशा-रूपी माता ने शशि बालक को जो टीका लगा दिया है, ताकि उसको किसी की कुदृष्टि न उसे कलंक कहना अत्यन्त कठोर और अनुचित बात है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

भाव यह है कि चन्द्रमा में जो धब्बे से दिखाई देते हैं उन्हें लोग उसका क मानते हैं जो गौतम ऋषि द्वारा लगाया गया था। ऊर्मिला इस प्रचलित रणा का खंडन करती हुई कहती है कि यह चन्द्रमा का कलंक नहीं है, वरन् के माथे पर लगा हुआ टीका है। जिस प्रकार माता अपने बच्चे को किसी कुदृष्टि से बचाने के लिए उसके माथे पर या शरीर के किसी अंग पर रंग का टीका लगा देती है, उसी प्रकार पूर्व दिशा ने चन्द्रमा को जन्म र उसके माथे पर यह टीका लगा दिया है।

विशेष—कवि की यह मौलिक कल्पना परम्परागत काव्य-रूढ़ियों से न है।

अलंकार—१. 'प्राची जननी' और 'शशि शिशु' में प्राची पर जननी का शशि पर शिशु का अभेदारोप होने से रूपक अलंकार।

२. चन्द्रमा के कलंक में डिठौना की संभावना करने से अर्थात् एक वस्तु दूसरी वस्तु के रूप में कल्पना होने से वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार।

३. एक असत्य कथन की पुष्टि के लिए दूसरे असत्य की कल्पना होने से याध्यवसिति अलंकार।

सजनी············राज्य कलंक।

शब्दार्थ—मंजुल—स्वच्छ। मुकुर—दर्पण। मयंक—चन्द्रमा। राजकलंक कैकेयी के दुष्कर्म से सम्बन्धित कलंक।

अर्थ—चन्द्रमा में दिखाई देने वाले धब्बों के विषय में ऊर्मिला अपनी सी से कहती है कि हे सखि! मेरा तो निश्चित मत यही है कि यह चन्द्रमा कित नहीं है, वरन् स्वच्छ दर्पण के समान निर्मल है। मुझे तो ऐसा प्रतीत है, मानो राम को वन भेज कर कैकेयी ने जो कलंक लिया है और जिससे अयोध्या कलंकित हो गई है वही अपना कलंक हमें चन्द्रमा में दिखाई है। अर्थात् चन्द्रमा कलंकित नहीं है, वरन् हमारे स्वयं के मुख कलंकित र अपने कलंकों का प्रतिबिम्ब ही हमें चन्द्रमा में दिखाई देता है।

विशेष—१. कवि की इस नवीन और मंजुल कल्पना के द्वारा कैकेयी के ऊर्मिला के आक्रोश का बोध होता है।

२. कवियों ने चन्द्रमा में दिखाई देने वाले धब्बों की अनेक प्रकार से नाएँ की हैं। उदाहरणार्थ, गोस्वामी तुलसीदासजी की निम्नलिखित पंक्तियाँ त हैं—

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई !
कहहु काह निज-निज मति भाई ?
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई;
ससि महुं प्रगट भूमि के झाँई ।
मारेउ राहु ससिहि कह कोई,
उर महँ परी स्यामता सोई ।
कोउ कह जब विधि रति मुख कीन्हा,
सार भाग ससि कर हरि लीन्हा,
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं,
तेहि मग देखिअ नभ परिछाहीं ।
प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा ।
अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा;
विष संयुत कर निकर पसारी,
गारत विरहवंत नर नारी ।
कह हनुमन्त सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार प्रिय दास ।
तव मूरति बिधु उर बसति, सोई स्यामता अभास ॥

अलंकार—१. 'मंजुल मुकुर मयंक' में 'म' वर्ण की अनेक वार आवृ होने ये वृत्यनुप्रास अलंकार ।

२. 'मुकुर मयंक' में वाचक शब्द और साधारण धर्म का लोप होने वाचकधर्मलुप्ता उपमा अलंकार ।

३. अहेतु में हेतु की कल्पना होने से हेतूत्प्रेक्षा अलंकार ।

किसने......................वह हाला ।

शब्दार्थ—निशीथ—रात्रि । नीलम—नीला आकाश । बुदबुद देकर—बुलबुले उत्पन्न करके । हाला—शराब ।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! जि प्रकार प्याले में भरी हुई शराब बुलबुले उत्पन्न करके उफनती है और उसे पीने वाला मतवाला होकर अपनी स्मरण-शक्ति खो देता है, उसी प्रकार इस ता से भरी रात ने मेरी विरह-व्यथा को उद्दीप्त करके मुझे पागल सा बना दि है । मेरे लिए आकाश प्याले के समान है और इसमें चमकते हुए तारे श से उत्पन्न बुलबुलों के समान हैं ।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

विशेष—इन पंक्तियों में कवि पर उमर ख़ैय्याम का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

अलंकार—इन पंक्तियों में सांगरूपक अलंकार है।

सखि, निरख............बिखराता है पारा।

शब्दार्थ—निरख—देख। ढलमल ढलमल—शिथिल। झलमल-झलमल—झिल-मिलाते हुए। अंतःस्तल—हृदय। थल-थल तरके—प्रत्येक स्थान को भिगोता हुआ।

अर्थ—शरदकालीन सौन्दर्य से युक्त नदी की शोभा का वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! तू नदी की धारा को देख। इस धारा में झिलमिलाते हुए तारे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो किसी रमणी का सितारों से जड़ा हुआ शिथिल अंचल लहरा रहा हो।

इस नदी की धारा का निर्मल जल पृथ्वी के हृदय को भरकर उछल-उछल कर, छल-छल करके, प्रत्येक स्थान को भिगोता हुआ और कल-कल की मधुर ध्वनि करता हुआ बह रहा है। यह धारा ऐसी प्रतीत होती है, मानो पारा बिखरा हुआ हो।

विशेष—नाद-सौंदर्य की दृष्टि से ये पंक्तियाँ अत्यन्त उत्कृष्ट हैं। नाद के द्वारा वक्तव्य का बिम्ब प्रस्तुत करने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है।

अलंकार—१. 'ढलमल ढलमल', झलमल झलमल' में वृत्त्यनुप्रास अलंकार।

२. 'चंचल अंचल' में स्वरों और व्यंजनों की एक बार समता होने से छेकानुप्रास अलंकार।

३. धारा पर अंचल की तथा पारे की सम्भावना करने से वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार।

लोल लहरियाँ........किनारा।

शब्दार्थ—लोल लहरियाँ—चंचल लहरें। भ्रू-विलास-रस—युवतियों की भौंहों के संकेतों से उत्पन्न आनन्द। इंगित—संकेत। मुखरित—ध्वनित। तट—किनारा। कूल-किनारा—सारा किनारा।

अर्थ—नदी की लहरों के सौंदर्य का वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! नदी की धारा में चंचल लहरें इधर-उधर घूम रही हैं जो युवतियों की भौंहों के संकेतों से उत्पन्न आनन्द दे रही हैं।

iGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

वे ऐसी प्रतीत होती हैं मानो मुग्धा नायिका की भाँति लज्जा के कारण वाणी से न बोल कर संकेतों से ही अपने भावों को प्रकट कर रही हैं। जब वे किनारों से टकराती हैं तो सारा किनारा मधुर ध्वनियों से ध्वनित हो उठता है।

विशेष—१. लहरों का मुग्धा नायिका के रूप में किया गया यह वर्णन अत्यन्त मार्मिक एवं भावपूर्ण है।

२. 'कूल किनारा' में 'कूल' शब्द के प्रयोग से पुनरुक्ति दोष का आभास है, पर समानार्थी शब्दों का प्रयोग भाव को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए प्रायः होता है। यहाँ पर भी इस शब्द से वक्तव्य के प्रभाव में वृद्धि हुई है, अतः यहाँ यह प्रयोग दोष न होकर गुण ही है।

अलंकार—१. लहरों पर मुग्धा नायिका का आरोप है, पर केवल लहरों का ही कथन है, नायिका का नहीं। अतः केवल उपमान (लहरों) का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

२. 'लोल लहरियाँ डोल रही हैं, भ्रू विलास-रस घोल रही हैं' में रूपक अलंकार।

३. 'इंगित ही में बोल रही हैं' में अर्थ में विरोध का आभास होने से विरोधाभास अलंकार।

४. 'मुखरित कूल किनारा' में 'कूल' और 'किनारा' एकार्थवाची शब्दों की पुनरुक्ति का आभास होने से पुनरुक्तवदाभास अलंकार।

पाया अब पाया............अवधि दूतिका द्वारा।

शब्दार्थ—सागर—(१) समुद्र, (२) प्रियतम। उजागर—(१) निर्मल, (२) सुन्दरी। नागर—प्रियतम।

अर्थ—नदी की प्रियतम से मिलनेच्छुक नायिका के रूप में कल्पना करके उसका वर्णन ऊर्मिला अपनी सखी से कर रही है कि हे सखि! अपना प्रियतम सागर अब मिला, अब मिला, इस आशा से यह नदी-रूपी स्वच्छ सुन्दरी नायिका चली जा रही है। न जाने मेरे प्रियतम भी अवधि रूपी नायिका के द्वारा कब तक आयेंगे? भाव यह है कि जिस प्रकार कोई दूती नायक को बुलाकर उसे नायिका से मिला देती है, उसी प्रकार बनवास की अवधि समाप्त होने पर मेरे प्रियतम भी मुझसे मिलेंगे।

विशेष—१. नदी पर विरहिणी नायिका का आरोप बहुत ही भावपूर्ण है।

२. 'पाया, अब पाया' से उसकी मिलन-आतुरता साकार हो उठी है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अलंकार—१. नदी पर नायिका का आरोप है, पर नायिका का कथन नहीं है। अतः केवल उपमान (नदी) का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

३. 'अवधि-दूतिका' में 'अवधि' पर 'दूतिका' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

मेरी छाती············नहीं सहारा।

शब्दार्थ—दलकना—अत्यधिक दुखी होना। मानस-शफरी—हृदय-रूपी मछली। लोचन-सीमा—आँखें अपनी सम्पूर्ण शक्ति से।

अर्थ—शरदकालीन नदी की निर्मल धारा को देखकर विरहिणी ऊर्मिला की विरह-व्यथा और अधिक तीव्र हो जाती है। इसी का वर्णन वह अपनी सखी से कर रही है कि हे सखि ! मेरी छाती अत्यधिक दुखी हो रही है और मेरी हृदय-रूपी मछली प्रियतम से मिलने के लिए अत्यन्त आतुर हो रही है। विरह-दुख के कारण मेरी आँखें अपनी सम्पूर्ण शक्ति से आँसू बहा रही हैं, क्योंकि प्रियतम के वन चले जाने पर अब मेरा कोई सहारा नहीं रह गया है।

विशेष—१. प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण है।

२. 'लोचन-सीमा' में 'सीता' का अर्थ 'पूर्ण' या 'पराकाष्ठा' है। बिहारी ने भी 'अवधि' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है—

> 'तो तन अवधि अनूप, रूप लग्यौ सब जगत कौ।
> मो दृग लागे रूप, दृगनि लगी अति चटपटी ॥'

अलंकार—'मानस-शफरी' में 'मानस' पर 'शफरी' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

सखी सत्य············मेरे धनी।

शब्दार्थ—तपामग्न—पूरी तरह से तपस्या में लगे हुए। धनी—प्रियतम।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला की सखी उसे कहती है कि वह अपने शरीर की चिन्ता करे, क्योंकि उसका शरीर नित्य क्षीण होता जा रहा है। यह सुनकर ऊर्मिला अपनी सखी से पूछती है कि क्या मैं सचमुच घुली जा रही हूं ? यदि तुम्हारी बात ठीक है तो यह कोई बुरी बात नहीं है कि मैं घुलती-घुलती चाँदनी में मिल जाऊं। पर नहीं, यह बात ठीक नहीं होगी, क्योंकि पूरी तरह

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

तपस्या में लगे हुए मेरे प्रियतम आज चाँदनी नहीं चाहते। इसका कारण यह है कि चाँदनी उद्दीपन विभाव के कारण तपस्या में बाधक हो सकती है। अतः मेरा भी चाँदनी में मिल जाना ठीक नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार वे आजकल चाँदनी से विमुख हैं, उसी प्रकार मुझसे भी विमुख हो जायेंगे।

विशेष—रीतिकालीन कवियों के विरह-वर्णन में ऊहात्मकता की प्रवृत्ति पर्याप्त मिलती है। बिहारी की विरहिणी कपूर की भाँति उड़ती हैं—

'देखत बुरै कपूर ज्यौं, उपै जाय जनि लाल।
छिन छिन जाति परी खरी, छीन छबीली बाल॥'

पर गुप्तजी ने अपनी विरहिणी की क्षीण होकर चाँदनी में मिल जाने की बात कही है। इसमें रीतिकालीन ऊहात्मकता की प्रवृत्ति का प्रभाव स्पष्ट है।

संस्कृत-साहित्य में भी ऊहात्मकता की कमी नहीं है। संस्कृत के एक कवि ने विरहिणी की कृशता का वर्णन करते हुए लिखा है कि विरहिणी की सखी उसे एकटक ही देखती है, पलक नहीं मारती, क्योंकि उसे डर है कि कहीं पलकों की हवा से वह कृशांगी उड़ न जाये—

'उद्धूयेत नतभ्रूः पक्ष्मनिपातोद्भवैः पवनैः।
इति निर्निमेषमस्या विरहवयस्या विलोकते वदनम्॥'

नैश गगन के······निरुपाय।

शब्दार्थ—नैश—रात्रि के। गात्र—शरीर। निरुपाय—असहाय, विवश।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला की सखी उससे कहती है कि तुम्हारी गरम आहों के कारण रात्रि के आकाश के शरीर में जलने के फफोले पड़ गए हैं जो तारों के रूप में दिखाई दे रहे हैं। यह सुनकर ऊर्मिला अत्यन्त व्यथित होकर कहती है कि हे राम! मैं अब इतनी असहाय बन गई हूँ कि अपनी विषम वेदना में आह भी नहीं भर सकती।

विशेष—१. इस दोहे की द्वितीय पंक्ति का 'साकेत' के प्रथम संस्करण में यह रूप था—

'तो क्या मैं निःश्वास भी न लूँ आज निरुपाय।'

२. इन पंक्तियों में विरह का ऊहात्मक वर्णन है।

हिन्दी के अन्य कवियों ने भी अत्युक्ति में कसर नहीं छोड़ी है। 'शंकर' कवि की विरहिणी की आह तो प्रलय ही मचा देती है—

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

'शंकर' नदी नद नदीसन के नीरन की,
भाप बन अम्बर तें ऊँची चढ़ जायगी।
दोनों ध्रुव छोरन लों पल में पिघल कर,
घूम घूम धरनी धुर सी बढ़ जायेगी।
झारेंगे अँगारे ये तरनि तारे तारापति,
जारेंगे खमँडल में आग मढ़ जायेगी।
काहू विधि विधि की बनावट बचेगी नहिं,
जो पै वा बियोगिनी की आह कढ़ि जायेंगी॥'

अलंकार—प्रकृत का या उपमेय (तारे) का निषेध करके अन्य का (फफोलों का) आरोप होने से अपह्नुति अलंकार।

तारक-चिह्नदुकूलिनी······सुधाधर-पात्र।

शब्दार्थ—तारक-चिह्नदुकूलनी—तारों से जड़ी साड़ी पहनने वाली। मधु मात्र—समस्त मदिरा। श्यामा—(१) रात, (२) नायिका। सुधाधर-पात्र—चन्द्रमा-रूपी प्याला।

अर्थ—प्रातःकाल होने पर चन्द्रमा की शोभा फीकी पड़ जाती है। उसका वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! प्रातःकाल में यह फीका चन्द्रमा ऐसा प्रतीत होता है जैसे तारे-रूपी सितारों से जड़ी हुई साड़ी वाली रात-रूपी नायिका समस्त मदिरा को पीकर तथा चन्द्रमा-रूपी प्याले को खाली करके यहाँ उलट कर रख गई हो।

भाव यह है कि जब तक प्याला मदिरा से भरा रहता है, तब तक वह मादकता से भरा होता है, लेकिन जब मद्यप उसकी मदिरा को पीकर उसे उलट कर रख देता है तो वह बिल्कुल सूना दिखाई देने लगता है। इसी प्रकार सारी रात चंद्रमा ज्योतियुक्त बनकर मादकता बिखराता रहता है, किन्तु प्रातःकाल होते ही वह फीका पड़ जाता है।

विशेष—वक्तव्य को प्रभावशाली बनाने के लिए कवि की यह कल्पना पूर्णतया सक्षम है। प्रसाद ने भी एक स्थल पर ऐसी ही कल्पना का आश्रय लिया है—

'इन्द्रनील मणि महा चषक था,
सोम-रहित उलटा लटका;

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

आज पवन मृदु साँस ले रहा,
जैसे बीत गया खटका।'

अलंकार—१. रात्रि पर नायिका का और चन्द्रमा पर पात्र का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

२. 'तारक' और 'श्यामा' शब्दों के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

आलि, काल है········संतप्त-सभीत।

शब्दार्थ—आलि—सखी। काल—समय। काल—नश्वर। उष्ण—गर्मी। शीत—सर्दी। संतप्त—ताप से दुखी। सभीत—भयभीत। आगत—आने वाला, अतिथि।

अर्थ—हेमन्त-ऋतु के आने पर विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! समय अन्त में नश्वर है, वह गतिमय है। चाहे गर्मी हो, चाहे सर्दी, सदैव कोई भी ऋतु नहीं रहती। अतः हमें ताप से दुखी और भयभीत देखकर तथा हमारी दशा पर दया करके यह हेमन्त-ऋतु आई है। आने वाले का स्वागत करना ही उचित होता है, पर मेरे पास तो आँसुओं के अतिरिक्त और कुछ है भी नहीं, जिससे इसका स्वागत करूं। यदि प्रियतम मेरे पास होते तो इसका घी और गुड से स्वागत करती। यद्यपि इस ऋतु में पाक-पकवानों का विशेष महत्त्व है, पर मैं तो यह भी नहीं कर सकती, क्योंकि विरहिणी होने के कारण मेरे तो स्वादिष्ट भोजन करने के दिन भी बीत गये हैं। यह हेमन्त-ऋतु हमें ताप से दुखी और भयभीत देखकर तथा हमारी दशा पर दया करके आ गई है।

विशेष—१. विरहिणी स्वादिष्ट भोजनों का त्याग कर देती है। इन पंक्तियों में ऊर्मिला के इस त्याग की ओर संकेत है जिससे उसके आदर्श चरित्र पर प्रकाश पड़ता है।

२. 'काल है काल अन्त में' में अर्थांतरसंक्रमितवाच्यध्वनि है।

३. ऊर्मिला का यह कथन कि वह घी-गुड़ से उसका स्वागत करती, अनुचित है। यह स्वागत-सामग्री तो निर्धनों की है, राजभवन में इनका क्या काम? राजाओं या रानियों की स्वागत-सामग्री तो अपने ही ढंग की है जो उनके वैभव की द्योतिका होती है।

अलंकार—१. 'आगत' और 'स्वागत' में स्वरों और व्यंजनों की एक बार समता होने से छेकानुप्रास अलंकार।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

२. 'काल है काल अन्त में' में 'काल' शब्द की भिन्नार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार।

हे ऋतुवर्य........संतप्त-सभीत।

शब्दार्थ—ऋतुवर्य—ऋतुओं में श्रेष्ठ। व्याज सहित ऋण भरना—सारी कमी पूरी करना। मीत—मित्र।

अर्थ—ऊर्मिला हेमंत-ऋतु को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे ऋतुओं में श्रेष्ठ! मेरी दीन दशा देखकर मुझको क्षमा करना, क्योंकि इसी दशा के कारण मैं तुम्हारा उचित स्वागत नहीं कर पा रही हूँ। फिर भी निरंतर प्रति वर्ष तुम अपना यहाँ पर फेरा करती रही। हे मित्र। जब मेरे प्रियतम विदेश से लौट आयेंगे तो मैं सारी कमी पूरी कर दूँगी; अर्थात् इतना भव्य स्वागत करूँगी कि तुम इन कमियों को भूल जाओगे। यह हेमंत ऋतु हम पर क्षमा करके और हमें संताप से दुखी तथा भयभीत देखकर आई है।

विशेष—गुप्त जी की भाषा में ग्रामीण शब्दों एवं मुहावरों के प्रयोग भी बहुलता से मिलते हैं। 'व्याज सहित ऋण भर दूँगी' इसका उदाहरण है।

अलंकार—'फिर फिर अपना फेरा' में 'फिर' शब्द की भाव-व्यंजक आवृत्ति होने से पुनरुक्ति और 'फ' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार।

सी-सी करती हुई................संतप्त-सभीत।

शब्दार्थ—सी-सी करती हुई—जाड़े से ठिठुरती हुई। पार्श्व—समीप। सम्बल—सहारा। पुनीत—पवित्र।

अर्थ—हेमंत-ऋतु को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे हेमंत ऋतु! कभी-कभी जब मैं जाड़े से बहुत दुखी हो जाती थी तो ठिठुरती हुई अपने प्रियतम के पास पहुँच जाती थी। वे मुझे अपने पास देखकर अत्यंत प्रसन्न होते थे और तुम्हें अपना उपकारी मानते थे लेकिन अब तो जाड़े को दूर करने के लिए मेरा कम्बल ही एकमात्र मेरा सहारा है, अतः मैं तुझे आनंदकारी कोमल शैया पर नहीं बिठा सकती। आज तो तुम्हें बैठने के लिए यह पवित्र आसन ही दे सकती हूँ। मेरी विवशता और असहाय दशा को देखकर यह आसन ही ग्रहण करो। यह हेमंत-ऋतु हम पर दया करके और हमें संताप से दुखी तथा भयभीत देखकर आई है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने जो कल्पना की है, वह अत्यंत सरस एवं भावमयी है।

अलंकार—'कम्वल' और 'सम्बल' में स्वरों और व्यंजनों की एक बार समता होने से छेकानुप्रास अलंकार।

कालागुरु की·········संतप्त-सभीत।

शब्दार्थ—कालागुरु—काले रंग की अगरबत्ती। सुरभि—सुगंधि। हसंती—अँगीठी। अनल-कुसुम—आग के फूल। धुकधुकी—हृदय की धड़कन। उद्दीप्त—जगना। अतीत—भूतकाल, बीता हुआ समय।

अर्थ—हेमंत-ऋतु में शीत से बचने के लिए लोग अंगीठियाँ जला लेते हैं। उन अँगीठियों के खिले हुए अंगारों को देखकर ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! काले रंग की अगरबत्ती की सुगन्धि अंगीठी से उठ रही है और उसमें अंगारे जल रहे हैं। ये जलते हुए अँगारे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो मंगल तारे चमक रहे हों, या आग के फूल खिले हुए हों। इन्हें देखकर मेरे हृदय की धड़कनों में मेरा भूतकाल जग उठा है; अर्थात् बीती हुई घटनाएँ याद आ गई हैं। हेमंत-ऋतु दया करके और हमें संताप से दुखी तथा भयभीत देखकर आ गई है।

विशेष—दहकते हुए अंगारों की मंगल तारों या आग के फूलों के रूप में कल्पना करना अत्यंत भावपूर्ण है।

अलंकार—१. दहकते अंगारों की मंगल तारों के रूप में सम्भावना होने से वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार।

२. 'हसंती' विशेष्य का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार।

३. 'अनल-कुसुम' में 'अनल' पर 'कुसुम' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

अब आतप-सेवन············वहीं चल तू।

शब्दार्थ—आतप-सेवन—आग में तापना। पैठा—निहित, छिपा हुआ।

अर्थ—सर्दी से बचने के लिए सखी ऊर्मिला से विनय करती है कि वह आग से तापे। इसे सुनकर ऊर्मिला कहती है कि हे सखि! तू मेरे साथ इस प्रकार का छल न कर, क्योंकि अब आग के तापने में तप नहीं है, बल्कि अब तो तप पानी में छिपा हुआ है। अतः यदि तू चाहे तो मुझे पानी के पास ले चल, ताकि मैं उसमें पैठकर तप कर सकूं।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

भाव यह है कि योगी सर्दी में पानी में घुसकर और गर्मी में आग से तप कर तप करते हैं। मेरे लिए यह उचित नहीं है कि मेरे प्रियतम तो सर्दी में वन में कष्ट उठा रहे हों और मैं यहाँ आग से तपकर सुख भोगूँ।

विशेष—इन पंक्तियों में यह बताया गया है कि ऊर्मिला किसी भी प्रकार का सुख नहीं चाहती। वह उस बात का भी विरोध करती है जिससे उसे थोड़े से-थोड़े सुख की प्राप्ति की सम्भावना होती है।

नाइन रहने दे..............है मेरा।

शब्दार्थ—तनु—शरीर। सुस्नेह-पूर्ण—उत्तम प्रेम-रूपी तेल से चिकना।

अर्थ—नाइन ऊर्मिला के शरीर पर तेल लगाने के लिए आई है। ऊर्मिला उससे कहती है कि हे नाइन! रहने दे, मुझे तेरा तेल नहीं चाहिए। चाहे मेरा शरीर रूखा सही, पर मेरा मन तो प्रेम-रूपी तेल से चिकना है।

भाव यह है कि मेरे मन में अपने प्रियतम के प्रति अगाध प्रेम है। यही मेरा सौन्दर्य है। अतः मुझे किसी भी प्रकार के शृंगार-प्रसाधन की आवश्यकता नहीं है।

विशेष—प्रियतम के प्रति अगाध प्रेम और शृंगार-प्रसाधनों के प्रति विमुखता ऊर्मिला के आदर्श चरित्र की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं।

अलंकार—'स्नेह' के दो अर्थ (प्रेम और तेल) होने से श्लेष अलंकार।

मेरी दुर्बलता क्या............क्षण में।

शब्दार्थ—दर्पण—शीशा। निरख—देखकर। वह तो—वह शीशा तो।

अर्थ—ऊर्मिला की सखी उसे दर्पण दिखाती है और कहती है कि वह स्वयं ही देख ले कि शरीर की चिंता न करने के कारण वह कितनी दुर्बल हो गई है। इस पर ऊर्मिला उत्तर देती है कि हे सखि! तू मुझे दर्पण में मेरी दुर्बलता क्या दिखा रही है? अर्थात् तेरा यह प्रयत्न मुझे सुख-भोग की ओर नहीं ले जा सकता क्योंकि मेरे दुर्बल मुख पर भी प्रेम की इतनी कांति है कि उसके सामने यह दर्पण स्वयं ही क्षणभर में धुंधला पड़ जाता है। अथवा, मैं अपनी दुर्बलता नहीं देख पाती क्योंकि जैसे ही तू उसे मेरे मुख के सामने करती है, वह मेरी निःश्वासों से धुंधला बन जाता है और धुंधले दर्पण में कभी भी कुछ दिखाई नहीं दिया करता।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने अत्यन्त कुशलता से भाव-गाम्भीर्य की ऐसी योजना की है जिससे ऊर्मिला का स्वाभिमान और विवशता एक साथ प्रकट

aiGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

होती है। जब वह अपने मुख की प्रेमजन्य कांति का वर्णन करती है तो उसका स्वाभिमान व्यक्त होता है और जब वह निःश्वासों से दर्पण के धुंधले होने की बात करती है तो उसकी विवशता प्रकट होती है। दो विरोधी भावों का एकत्र चमत्कारपूर्ण समन्वय कवि की प्रतिभा का प्रमाण है।

अलंकार—१. कारण-सहित कार्य का वर्णन होने से काव्यलिंग अलंकार।

२. मुख की अपेक्षा दर्पण की हीनता का वर्णन होने से व्यतिरेक अलंकार।

एक अनोखी............निज सर में।

शब्दार्थ—पद्मिनी—कमलिनी। नालशेष—जिसकी केवल नाल शेष रह गई है, अर्थात् सूख गई है।

अर्थ—जब ऊर्मिला की सखी उससे कहती है कि अपने शरीर की देख-भाल न रखने के कारण बहुत दुर्बल हो गई है तो वह उत्तर देती है कि प्रियतम (लक्ष्मण) के वियोग में केवल मैं ही तो इस घर में दुबली नहीं हुई, वरन् सभी प्राणी दुर्बल हो गये हैं। भाव यह है कि राजभवन तथा राज्य के सभी प्राणियों को उनका वियोग असह्य बना हुआ है जिससे सभी दुर्बल हो गये हैं। यहाँ तक कि प्रकृति के पदार्थ भी उनके वियोग से दुखी हैं। तू स्वयं ही देख ले कि अपने (प्रियतम) सरोवर के साथ रहती हुई भी कमलिनी पूर्णतया सूख गई है और अब सरोवर में उसकी केवल नाल बची हुई है।

विशेष—१. 'आज हुई नालशेष निज सर में' में 'निज' शब्द का प्रयोग अत्यन्त सार्थक एवं भावोत्कर्षक है। लक्ष्मण के वियोग का प्रकृति पर भी इतना गम्भीर प्रभाव पड़ा है कि कमलिनी अपने सरोवर में होते हुए भी, जो उसके विकास का आधार है, सूख गई है। यदि वह अपने सरोवर में न होकर किसी दूसरे सरोवर में होती और तब सूख जाती तो कोई विशेष बात न थी।

२. सूरदास ने भी कृष्ण-वियोग के प्रभाव का ऐसा ही व्यापक वर्णन किया है—

'ऊधौं हमहिं कहा समझावहु।
पसु पंछी सुरभी ब्रज की सब, देखि स्रवन सुनि आवहु॥
त्रिन न चरत गो, पिवत न सुत पय, ढूँढ़त बन बन डोलैं।
अलि कोकिल दै आदि विहंगम, भाँति भयानक बोलैं॥
जमुना भई स्याम स्यामहिं बिनु, इंदु छीन छय रोगी।
तरुवर पत्र बसन न सँभारत, बिरह वृच्छ भये जोगी॥

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

गोकुल के सब लोग दुखित हैं, नीर बिना ज्यौं मीन ।
सूरदास प्रभु प्रान न छूटत, अवधि श्रास में लीन ॥'

अलंकार—१. 'एक अनोखी मैं ही क्या दुबली हो गई सखी घर में' में काकु-ध्वनि से अर्थ में परिवर्तन होने से काकुवक्रोक्ति अलंकार।

२. 'निज' विशेषण का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकर अलंकार।

पूछी थी सुकाल-दशा............किसान की।

शब्दार्थ—सुकाल-दशा—कुशलता की दशा। देवर—शत्रुघ्न। कर्षक—किसान। गोरस—दूध। बखान की—बताई। अबला—नारी।

अर्थ—राम, लक्ष्मण और सीता के वनवास का दुख जाने-अनजाने सारे राज्य में व्याप्त हो रहा है, इसका वर्णन करती हुई ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! आज मैंने अपने देवर शत्रुघ्न से प्रजा की कुशल-दशा पूछी थी और यह भी पूछा था कि इस साल कपास, धान, ईख आदि की कैसी उपज हुई है? अर्थात् इस साल कैसी फसल पैदा हुई है? इस पर उन्होंने उत्तर दिया था कि हे देवि! इस बार देखने में तो ऐसा लगता है कि अन्य वर्षों की अपेक्षा इस वर्ष इंद्र भगवान् ने दूनी कृपा की है, अर्थात् इस साल दूनी वर्षा हुई है जिसके कारण दूना अन्न पैदा हुआ है। यही प्रश्न एक गाँव में जाकर जब मैंने किसानों से पूछा तो उन्होंने अन्न, गुड़ और दूध की वृद्धि का ही वर्णन किया; अर्थात् अपनी समृद्धि का खूब वर्णन किया। इसी बीच एक किसान की नारी यह कह कर रो पड़ी कि इतनी समृद्धि होते हुए भी इस वर्ष न पदार्थों में स्वाद कुछ भी नहीं है। भाव यह है कि राम, लक्ष्मण और सीता के वियोग का दुख जाने-अनजाने सभी के मन में व्याप्त हो रहा है।

विशेष—इन पंक्तियों से तत्कालीन राजाओं की प्रजा-हितैषिणी-भावना स्पष्ट है। इससे पता चलता है कि उस काल में राजा साधारण व्यक्ति की भाँति गाँव-गाँव घूमकर प्रजा के दुख-सुख का समाचार प्राप्त किया करते थे।

अलंकार—समृद्धि होते हुए भी कार्य के न होने से विशेषोक्ति अलंकार।

हम राज्य............भरते हैं।

शब्दार्थ—कर्षक—कृषक। सम्पन्न—धनी। भव-वैभव—सांसारिक ऐश्वर्य।

अर्थ—ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! हम राज्य को ही

a Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सब कुछ समझ कर उसके लिए उचित-अनुचित सब कुछ कर देते हैं (ऊर्मिला का संकेत कैकेयी की ओर है जिसने अपने पुत्र भरत को राज्य दिलवाने के लिए राम को चौदह वर्ष का बनवास दिलवाया), परन्तु वास्तविकता यह है कि हमारे कृषक ही सच्चा राज्य करते हैं। भाव यह है कि राजा का परम कर्तव्य प्रजा का पालन करना होता है और यह कार्य किसान अन्न इत्यादि उत्पन्न करके करते हैं। इसीलिए उन्हें ही सच्चा राजा मानना चाहिए। उन किसानों के खेतों में अन्न उत्पन्न होता है और अन्न जीवन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। इसीलिए वे ही सबसे अधिक धनी कहे जा सकते हैं। राजा लोग अपनी पत्नियों का सच्चा प्रेम पाने में प्रायः असफल ही रहते हैं, इसीलिए तो कैकेयी के द्वारा महाराज दशरथ को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा, किन्तु किसानों में सच्चा दाम्पत्य भाव होता है और वे अपनी पत्नियों सहित आनंदपूर्वक अपने खेतों पर घूमते रहते हैं तथा संसार को ऐश्वर्य से भरते हैं, जबकि हम राज्य के लिए ही मरते रहते हैं।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने कृषक-जीवन के माध्यस से अयोध्या-राज्य में घटित होने वाली घटनाओं का संकेत बड़ी कुशलता से दिया है। ये घटनाएं राम बनवास से सम्बद्ध हैं। इन घटनाओं में चूंकि ऊर्मिला का प्रियतम भी आबद्ध है, इसीलिए इनके प्रति उसके मन में ग्लानि होना मनोवैज्ञानिक आवश्यकता है।

वे गोधन..........मरते हैं।

शब्दार्थ—गोधन—गऊओं का धन। उदार—दानी। सुधा—अमृत। आगर—भण्डार। श्रम-सागर—श्रम का सागर।

अर्थ—राजाओं से किसानों की तुलना करती हुई ऊर्मिला किसानों को ही अधिक महत्त्व देती है और किसानों के महत्त्व का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि किसानों के पास गऊओं का धन सबसे बड़ा धन होता है इसीलिए वे बहुत बड़े धनी भी हैं। किन्तु धनियों में कृपणता की जो सहज प्रवृत्ति प्रायः होती है उसका इनमें अभाव ही होता है। ये धनी होते हुए भी दानी होते हैं। इनको सुधा के समान जीवन-दायक गऊ का दूध सुलभ होता है। ये सहन-शीलता के मंडार और अत्यन्त परिश्रमी होते हैं। कठिन से कठिन श्रम रूपी सागर को पार करने से भी ये नहीं हिचकिचाते और हम लोग राज्य के लिए उचित-अनुचित सभी प्रकार के कार्य करते रहते हैं।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

विशेष—किसानों के गुणों का स्वाभाविक वर्णन है।

अलंकार—१. 'उनको सुलभ सुधा की धार' में केवल उपमान का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

२. 'श्रम-सागर' में 'श्रम' पर सागर का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

यदि वे करें………भरते हैं।

शब्दार्थ—उत्सव-पर्व—त्यौहार। प्रहरी—पहरेदार।

अर्थ—किसानों के जीवन की महत्ता का वर्णन करती हुई ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि किसानों में इतने गुण होते हैं कि यदि वे अपने जीवन पर गर्व भी करें तो अनुचित नहीं है। उनका जीवन इतना निश्चिन्त और आनन्दमय होता है कि वे हर क्षण उल्लास से भरकर कोई-न-कोई त्यौहार मनाते रहते हैं। हमारे समान शक्तिशाली राजा उनके पहरेदार होते हैं, इसीलिए उन्हें किसी से डर नहीं होता। और हम राज्य के लिए उचित-अनुचित कार्य करते रहते हैं।

विशेष—इन पंक्तियों में कृषकों के हर्षपूर्ण एवं चिन्ताहीन जीवन का वर्णन है।

अलंकार—'वे किससे डरते हैं' में काकु के द्वारा अर्थ परिवर्तन होने से काकुवक्रोक्ति अलंकार।

करके मीन-मेख…………भरते हैं।

शब्दार्थ—मीन-मेख करना—दोष निकालना। बुद्ध—ज्ञानी। शाखामयी—तर्क-वितर्कमयी। धरते हैं—धारण करते हैं।

अर्थ—बुद्धिजीवी लोगों के जीवन की निस्सारता और कृषक-जीवन की महत्ता का वर्णन करती हुई ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! बुद्धिजीवी व्यक्ति भले ही सब ओर दोष निकाल कर अपने कठोर वादों का प्रचार करते रहें और अपनी बुद्धि से तर्क-वितर्कों को जन्म देते रहें, किन्तु कृषक तर्क-वितर्कों के जंजाल में नहीं पड़ते। वे तो मूलधर्म को सहज-रूप से धारण करते हैं और हम लोग राज्य के लिए उचित-अनुचित कार्य करते रहते हैं।

विशेष—इन पंक्तियों में बुद्धिवाद का खण्डन किया गया है।

होते कहीं…………भरते हैं।

शब्दार्थ—भोग—सुख।

Sri Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अर्थ—किसानों के जीवन की महत्ता का वर्णन करती हुई ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि यदि हम लोग भी कहीं किसान होते तो हम में भी कृषकों-जैसी त्याग-भावना और सहिष्णुता होती और फिर इन सुखों का भोग नहीं कर पाते जो हमें किसानों ने अपने त्याग और परिश्रम से दिए हैं। उन्हीं अन्नदाता किसानों के दिए हुए सुख हमारा दुख दूर करते हैं, और हम उनके जीवन का अनुकरण न करके राज्य की प्राप्ति के लिए उचित-अनुचित कार्य करते रहते हैं।

विशेष—'कौन भोगता फिर ये भोग' का यह अर्थ भी हो सकता है कि फिर हमें ये भोगजन्य कष्ट न सहने पड़ते।

प्रभु को निष्कासन............तुझे धिक्कार !

शब्दार्थ—प्रभु को—राम को। निष्कासन—बनवास। कारागार—जेल। उन तात को—अत्यन्त सरल एवं गुणी दशरथ को।

अर्थ—राज्य को धिक्कारती हुई ऊर्मिला कहती है कि जिस राज्य के कारण राम जैसे महापुरुष को बनवास मिला, मुझे यह वियोग का जीवन मिला जिसे पाकर मैं बंदिनी की भाँति जेल का-सा कष्टकारक जीवन व्यतीत कर रही हूँ और सरल एवं गुणी श्वसुर दशरथ को मृत्यु-दण्ड मिला, ऐसे राज्य को धिक्कार है।

विशेष—राज्य के कारण ही ऊर्मिला को वियोग-व्यथा सहन करनी पड़ रही है, अतः राज्य के प्रति उसकी घृणा होनी स्वाभाविक ही है।

अलंकार—'मुझको कारागार' का अर्थ है कारागार के समान, कष्टकारक राजभवन। अतः वाचकधर्म-उपमानलुप्ता उपमा अलंकार।

चौदह चक्कर............चक्कर !

शब्दार्थ—अभंग—पूरे। कलह-मूल—झगड़े की जड़।

अर्थ—चौदह वर्षों की लम्बी अवधि का ध्यान करके ऊर्मिला व्यथित हो उठती है और अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! जब यह पृथ्वी सूर्य के पूरे चौदह चक्कर लगा लेगी, अर्थात् पूरे चौदह वर्ष बीत जायेंगे तब मेरे प्रियतम अपने प्रभु राम के साथ इस ओर घूमेंगे—अयोध्या वापिस लौटेंगे। इस लम्बी अवधि को विताने के लिए दिन पर दिन और रात पर रात गिनती रहूँ लेकिन न जाने यह लम्बी अवधि मैं किस प्रकार पार कर पाऊँगी क्योंकि यहाँ तो वियोग-दुख प्रत्येक पल प्राणों से टक्कर ले रहा है, अर्थात पल-पल जीवन के

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

खतरा बना हुआ है और प्रियतम तभी लौटेंगे जब यह झगड़े की जड़ पृथ्वी सूर्य के चौदह चक्कर लगा लेगी।

विशेष—यह वैज्ञानिक सिद्धांत है कि पृथ्वी एक वर्ष में सूर्य का एक चक्कर लगा देती है। अतः चौदह वर्षों के लिए चौदह चक्करों का प्रयोग विज्ञान-सम्मत है।

अलंकार—सिंहावलोकन अलंकार।

सिकुड़ा-सिकुड़ा············विषम पाले से !

शब्दार्थ—सभीत सा—डरा हुआ सा। कसाले से—अधिकता से।

अर्थ—शीत ऋतु में दिन छोटे होते हैं और रात बड़ी। इसी का वर्णन करती हुई ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! शीत की अधिकता के कारण दिन तो भयभीत सा होकर छोटा हो गया था, किन्तु यह रात तो इतनी लम्बी हो गई है कि काटे कटती ही नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे यह भयानक पाले से जम गई हो।

विशेष—१. विरहिणी के लिए लम्बी रात का वर्णन करना साहित्यिक परम्परा है। विरहिणी ऊर्मिला का अनुमान यह है कि रात पाले के कारण जम गई है, इसलिए गतिहीन हो गई है और आगे नहीं बढ़ पाती। सूर की विरहिणी की रात इसलिए नहीं कटती कि वीणा के द्वारा उसने चन्द्रमा के हिरणों को मुग्ध कर लिया है और वे आगे नहीं बढ़ पाते—

'दूरि करहि बीना कर धरिबौ।
रथ थाक्यौ, मानो मृग मोहे, नाहिन होत चन्द को ढरिबौ॥
बीतै जाहि सोइ पै जानै, कठिन सु प्रेम पास को परिबौ।
प्राणनाथ सँगहि तैं बिछुरे, रहत न नैन नीर कौ झरिबौ॥
सीतल चंद अगिन सम लागत, कहिए धीर कौन विधि धरिबौ।
सूर सु कमलनयन के बिछुरैं झूठौ सब जतननि कौ करिबौ॥'

२. इन पंक्तियों में कवि की कल्पना बड़ी ही सजीव एवं काव्यमयी है।

अलंकार—१. अहेतु में हेतु की कल्पना करने से हेतूत्प्रेक्षा अलंकार।
२. 'दिन सभीत सा' में उपमान का लोप होने से लुप्तोपमान उपमा अलंकार।

आये सखि············मोद में।

शब्दार्थ—द्वारपटी—द्वार पर लगा हुआ पर्दा। वंचक वंचित से—

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

छली होते हुए भी छले गये के समान। रोम पट—ऊनी वस्त्र। आवरण—रजाई। प्रतोद—कोड़ा। कर्षित—खिंचे हुए, बंधे हुए।

अर्थ—संयोगावस्था की एक सुखद घटना का वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! एक दिन मेरे प्रियतम अपने हाथ से द्वार पर लगे हुए पर्दे को हटा कर अन्दर आये। वे मज़ाक करने के इरादे से झूठमूठ काँप रहे थे और स्वयं छली होकर भी छले हुए से दिखाई दे रहे थे अर्थात् वे ऐसी क्रिया कर रहे थे जिससे ऐसा लगता था कि उन्हें किसी ने धोखा दे दिया हो। अन्दर आकर अपने ऊनी वस्त्र को मेरी गोद में डालकर बोले कि तनिक तुम भी इस वस्त्र को ओढ़ कर देखो। इसके बाद हुआ यह कि मैं अपनी रजाई झटपट छोड़ कर उठ बैठी। हवा के झोंके हमारे शरीरों में कोड़े के समान लग रहे थे। फिर भी हम दोनों पति-पत्नी के रोम-रोम प्रसन्नता से खिले हुए थे, क्योंकि हम दोनों एक दूसरे के बाहुपाश में बंधे हुए थे।

विशेष—लक्ष्मण का अपनी पत्नी के साथ यह परिहास उसके प्रति अगाध प्रेम का सूचक है।

अलंकार—१. 'परिणत हो रहा था पवन प्रतोद में' में प्रकारान्तर से अभीष्टार्थ को व्यक्त करने के कारण पर्यायोक्ति अलंकार।

२. हवा के तेज़ झोंकों के होते हुए भी प्रसन्न होना अर्थात् कारण के विरुद्ध कार्य का वर्णन होने से विभावना अलंकार।

करती है················यह देख।

शब्दार्थ—धुआँधार—धुएं के समान छाया कुहरा।

अर्थ—ऊर्मिला की सखी ऊर्मिला से बार-बार आग्रह करती है कि वह शीत से अपने को बचाए। इस पर ऊर्मिला उत्तर देती है कि हे सखि! तू बार-बार जाड़े का नाम लेती है पर मैं तो इस धुएँ के समान छाए कुहरे को देख कर जली सी जा रही हूँ, अर्थात् कुहरे को देख कर मेरी वियोगाग्नि भड़क रही है।

विशेष—१. शिशिर-ऋतु का उद्दीपन रूप में वर्णन है जो परम्परागत है।

२. बिहारी की विरहिणी भी वर्षा की झड़ी को संसार को जलाने वाला धुआँ समझती है—

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

'धुरवा होहिं न, अलि, उठै धुआँ धरनि-चहुँकोद।
जारत आवत जगत कौं, पावस-प्रथम-पयोद ।।'

अलंकार—कारण के विरुद्ध कार्य होने से विभावना अलंकार।

सचमुच यह............इस बार।

शब्दार्थ—नीहार—कुहरा। निहार—देख।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला कुहरे को धुआँ समझती है। जब उसकी सखी उसे बताती है कि यह धुआँ नहीं, बल्कि कुहरा है तो ऊर्मिला कहती है कि यदि यह सचमुच ही कुहरा है, तो इस कुहरे को तू ध्यान से देख। यह ऐसा प्रतीत होता है जैसे अन्धकार ही सर्दी के भय से सफेद हो गया हो।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि की कल्पना का उत्कृष्ट रूप है। कुहरे को 'भय से सफेद पड़ा अंधकार' कहना बहुत ही भाव-व्यंजक है।

अलंकार—१. 'सचमुच यह नीहार तो अब तू तनिक निहार' में 'निहार' शब्दों की भिन्नार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार।

२. 'अंधकार भी शीत से श्वेत हुआ इस बार' में अहेतु में हेतु की सम्भावना होने से हेतूत्प्रेक्षा अलंकार।

कभी गमकता............मनोमृग-अन्ध!

शब्दार्थ—गमकता था—महकती थी। गन्ध—सुगन्धि। मनोमृग—मन-रूपी हिरण। अन्ध—मूर्ख।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! संयोगावस्था में मनोभावों को उद्दीप्त करने के लिए जिन स्थानों पर कस्तूरी की सुगन्ध महकती रहती थी वे स्थान सुगन्धि से हीन होकर सूने बने हुए हैं। उन्हें देखकर विगत घटनाओं की स्मृति होने के कारण आज मेरा मन रूपी मूर्ख मृग चौंककर विस्मित हो जाता है, दुःख से भरकर किंकर्तव्यविमूढ़ बन जाता है।

विशेष—'मनोमृग अन्ध' में अन्ध शब्द का प्रयोग मन की दुःखी अवस्था का और उसके प्रति आत्मीयता का सूचक है।

अलंकार—'मनोमृग' में मन पर मृग का अभेदारोप होने से रूपक अलंकार।

शिशिर............भाव-भुवन में।

शब्दार्थ—निज नन्दन में—अपने नन्दन के समान सुन्दर बन में।

iGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

पाण्डुरता—पीलापन। आनन—मुख। मानस-भाजन—हृदय-रूपी बर्तन। अकिंचन—निर्धन। उत्कण्ठा—प्रबल इच्छा। भाव-भुवन—भाव रूपी जगत्।

अर्थ—शिशिर को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे शिशिर! तू पतझड़ को प्राप्त करने के लिए पर्वतों और बनों में मत घूम। मैं अपने इस नन्दन के समान सुन्दर बन में ही तुझको मनचाहा पतझड़ दे दूंगी। तुझे जितना कम्पन चाहिए वह मेरे इस शरीर में विद्यमान है, क्योंकि विरह-जन्य व्यथा के कारण मेरा शरीर दिन-रात काँपता रहता है। तुझे जितना पीलापन चाहिए, वह मेरे मुख से ले ले, क्योंकि मेरी सखी कहती है कि विरह-दुख के कारण मेरे मुख पर पीलेपन का अभाव नहीं है। हे भाई! यदि तू अपनी सर्दी से मेरे आँसुओं को मेरे हृदय-रूपी बर्तन में जमा दे तो मैं निर्धन उसको अपने मन में मोती की तरह सम्भाल कर रखूं, प्रियतम के प्रवासी होने के कारण मेरा हँसना तो छूट गया है, अब तुम मुझे ऐसी स्थिति में डाल दो कि अपने जीवन में मैं रो भी न सकूं। मेरी यह जानने की प्रबल इच्छा है कि हँसी और रुदन के अभाव में भाव-रूपी जगत् में क्या प्रभाव होता है।

इन पंक्तियों में ऊर्मिला की विरह-व्यथा अत्यन्त सघन हो उठी है। वह बताना चाहती है कि शिशिर ऋतु उसके शरीर में ही विद्यमान है। जिस प्रकार शिशिर से उत्पन्न पतझड़ प्रकृति को प्रभावित किए रहता है, उसी प्रकार उसका जीवन भी पतझड़ के समान है, क्योंकि वियोग के कारण उसके मन में कोई मधुर आशा और उमंग शेष नहीं रह गई है। शिशिर में चलने वाली वायु वृक्ष आदि को झकझोरती रहती है, उसी प्रकार विरहजन्य कंपन उसके शरीर को कँपाती रहती है। शिशिर में वृक्षों के पत्ते इत्यादि पीले पड़ जाते हैं, उसी प्रकार विरह-व्यथाजन्य पीलापन उसके मुख पर सदा विद्यमान रहता है। शीत के कारण पानी पाले के रूप में जम जाता है और ओस मोतियों जैसा रूप धारण करके चमकती रहती है, उसी प्रकार उसके मन में संयोगावस्था की घटनाएं व्याप्त हैं जिनको वह याद करना भी नहीं चाहती और भुलाना भी नहीं चाहती। हँसना और रोना विकास और ह्रास के प्रतीक हैं। शिशिर ऋतु में प्रकृति में न विकसित पुष्प इत्यादि दृष्टिगोचर होते हैं और न ठूंठ वृक्ष ही। इस प्रकार ऊर्मिला ने अपने शरीर पर शिशिर ऋतु का सावयव आरोप किया है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

विशेष—नारी के शरीर में प्राकृतिक उपकरणों का आरोप प्राचीन काव्य-परम्परा है। राधा के नखशिख का वर्णन करते हुए विद्यापति लिखते हैं—

'माधव कि कहब सुन्दरि रूपे।
कतेक जतन विहि आनि समारल देखल नयन सरूपे।
पल्लवराज चरन-जुग सोभित गति गजराजक भाने।
कनक-कदलि पर सिंह समारल तापर मेरु समाने।
मेरु उपर दुह कमल फुलायल नाल बिना रुचि पाई।
मनिमय हार धार बहु सुरसरि तओ नहि कमल सुखाई।
अधर बिम्ब सन दसन दाड़िम बिजु रवि ससि ऊगथि पासे।
राहु दूर बस नियरो न आबथि तैं—नहिं कहथि गरासे।
सारंग नयन बयन पुनि सारंग सारंग तसु समधाने।
सारंग उपर उगल दस सारंग केलि करथि मधुपाने।'

ऐसा ही वर्णन सूरदास ने भी किया है—

'अद्भुत एक अनुपम बाग।
जुगल कमल पर गजवर क्रीड़त, तापर सिन्ध करत अनुराग।
हरि पर सरवर सर पर गिरवर गिर पर फूले कंज पराग।
रुचिर कपोत बसे ता ऊपर ता ऊपर अमृत फल लाग।
फल पर पुहुप पुहुप पर पल्लव तापर सुक पिक मृगमद काग।
खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर इक मनिधर नाग।'

अलंकार—१. विरहिणी के शरीर पर शिशिर ऋतु का अंगों-सहित अभेद आरोप होने से सांगरूपक अलंकार।

२. 'तो मोती-सा मैं अकिंचना रक्खूँ उसको मन में' में उपमा अलंकार।

३. 'हँसी गई, रो भी न सकूँ मैं' में कारण के होते हुए भी कार्य के न होने का वर्णन होने से विशेषोक्ति अलंकार।

सखि न हटा.............समान-दशा।

शब्दार्थ—सहानुभूति-वशा—सहानुभूति के वशीभूत होकर। जालगता—(१) जाल में फंसी हुई (२) दुःखी।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला की सखी उसके भवन की सफाई करते हुए मकड़ी को उसके जाले सहित हटाना चाहती है। ऊर्मिला उससे कहती है कि हे सखि! इस मकड़ी को यहाँ से न हटा क्योंकि यह मेरे प्रति सहानुभूति के वशीभूत

iGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

होकर ही यहाँ आई है। यही मेरी वास्तविक वेदना को जान सकती है, क्योंकि हम दोनों की इस महल में समान दशाएँ हैं—यह अपने जाल में फँसी हुई है और मैं वियोग दुःख से दुःखी हूँ।

विशेष—१. इन पंक्तियों में ऊर्मिला की व्यापक करुण भावना का चित्रण है।

२. समान धर्मा ही एक दूसरे की स्थिति का सही मूल्यांकन कर सकते हैं। दुःखी प्राणी ही अन्य प्राणी के दुःख को समझ सकता है यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। मीराबाई ने इस सत्य की अभिव्यक्ति इन शब्दों में की है—

'हेरी मैं तो प्रेम दीवानी मेरो दरद न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस बिध सोना होय।
गगन मंडल पै सेज पिया की किस बिध मिलना होय।
घायल की गति घायल जानै कि जिन लाई होय।
जौहरी की गति जौहरी जानै, कि जिन जौहर होय।
दरद की मारी बन बन डोलूँ, बैद मिला नहिं कोय।
मीरा के प्रभु पीर मिटैगी, जब बैद साँवलियाँ होय।

३. 'सहानुभूतिवशा' और 'जालगता' शब्द हिन्दी-भाषा की प्रकृति के विरुद्ध हैं।

अलंकार—'जालगता' के दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

भूल पड़ी......यहाँ।

शब्दार्थ—तुझसे—तेरे समान मधुर। वीणा—मन की वीणा।

अर्थ—प्रातःकालीन किरण को जो झरोखे से उसके कमरे में आ रही है, सम्बोधित करती हुई ऊर्मिला कहती है कि हे किरण! तू भूल से कहाँ आ गई, मेरे झरोखे से न झाँक और वहीं लौट जा जहाँ तेरे समान मधुर तार गूंज रहे हों, अर्थात् जहाँ आनन्द और सुख हो। यहाँ तो दुख ही दुख है क्योंकि मेरी मन-रूपी वीणा विरहजन्य आँसुओं से गीली और ढीली बनी हुई है। जिस प्रकार गीले और ढीले तारों से कोई स्वर नहीं निकल सकता उसी प्रकार मेरे जीवन में किसी प्रकार का आनन्द और सुख नहीं है। तुझमें लाल रंग भी है, हरा रंग भी है, पीला रंग भी है और नीला रंग भी है। लेकिन मेरे मन में न कोई सुखकारक प्रेम है, न प्रसन्नता है, न उत्सुकता है और न ही व्यापकता है। इसीलिए यहाँ पर कोई आनन्द नहीं है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने लाल, हरे आदि रंगों के माध्यम से भावों की जो अभिव्यक्ति की है, वह अत्यन्त भावपूर्ण है।

अलंकार—१. 'झाँक झरोखे' में छेकानुप्रास अलंकार।

२. 'गूँजे तुझसे तार जहाँ' में साधारणधर्मलुप्ता उपमा अलंकार।

३. 'मेरी वीणा गीली-गीली' में केवल उपमान (वीणा) का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार और गीली शब्दों की भाव-व्यंजक आवृत्ति होने से पुनरुक्ति अलंकार।

शीतकाल······गान वहाँ ?

शब्दार्थ—मानस—हृदय, मानसरोवर-रूपी हृदय। रुदन—रोना।

अर्थ—अपने झरोखे से आती हुई प्रातःकालीन किरण को सम्बोधित करती हुई ऊर्मिला कहती है कि हे किरण ! यह शीतकालीन प्रभात है जबकि शीत की अधिकता होती है। मेरा मानसरोवर-रूपी हृदय व्यथा-रूपी झोंकों से उफन रहा है। मुझे डर है कि तुम्हारा शरीर छींटों से न भर जाए जिसके कारण तुम्हें कष्ट पहुँचे। भाव यह है कि शीत-ऋतु का प्रभात शीत की अधिकता लिए हुए होता है जिसके कारण जल बहुत ही ठंडा होता है। यदि उस समय किसी प्राणी पर जल के छींटे पड़ जाएं तो शीत के कारण वे अत्यन्त कष्टकारक होते हैं। अतः ऊर्मिला किरण से कहती है कि उसे उसके पास आकर निश्चय ही कष्ट होगा, अर्थात् जहाँ दुख होता है वहाँ सुख नहीं हो सकता। इसीलिए हे किरण ! तुम भूल से यहाँ आ गई हो। अच्छा यही है कि तुम यहाँ से लौट जाओ।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि की कल्पना-प्रवीणता मुखरित है।

अलंकार—'उछल रहा है मानस मेरा' में केवल उपमान (मानस) का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

मेरी दशा······न हाँ !

शब्दार्थ—कसक—पीड़ा। मींड़—एक स्वर से दूसरे स्वर पर जाने की क्रिया।

अर्थ—अपने झरोखे से आती हुई प्रातःकालीन किरण को सम्बोधित करती हुई ऊर्मिला किरण से कहती है कि हे किरण ! मेरी दशा कुछ ऐसी हो गई है जैसे वीणा के तारों पर चलती हुई उंगली की हो जाती है, अर्थात् जिस

SriGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्रकार वीणा के तारों पर चलती हुई उंगली एक क्षण के लिए भी स्थिर नहीं रह सकती, उसी प्रकार मेरा मन भी स्थिर नहीं हो पाता। मेरी हृदय की वीणा में कसक तो है, परन्तु मींड़ जैसी व्यवस्था और मधुरता नहीं है। इसीलिए दुविधा में पड़ी हुई मैं न हाँ कह सकती हूँ और न नहीं। हे किरण! तुम भूल से यहाँ आ गई हो जहाँ दुख ही दुख है, अतः तुम यहाँ से लौट जाओ।

विशेष—मन की स्थिरता की तुलना वीणा के तारों पर थिरकती हुई उंगली से देना बहुत ही सार्थक एवं भावपूर्ण है।

अलंकार—उपमा अलंकार।

न तो अगति·········एक झकझोर।

शब्दार्थ—अगति—अचेतना। गति—चेतना।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! जिस प्रकार झाड़ को जब हवा का झोका झिकझोरता है तो वह न तो अचेतन ही रहता है, क्योंकि वह हिलने-डुलने लगता है; और न उसमें चेतना ही आती है, क्योंकि वह चेतन प्राणी की भांति चल फिर नहीं सकता। इसी प्रकार मेरे जीवन में भी किसी दिशा में भी न अचेतना है और न चेतना। जब विरह व्यथा इसे झकझोरती है तो यह चंचल हो उठता है और जब वह व्यथा शांत हो जाती है तो यह भी निर्जीव-सा बन जाता है। इस भाँति मेरा जीवन द्विविधामयी स्थितियों में व्यतीत हो रहा है।

विशेष—विरहिणी के जीवन की द्विविधामयी स्थिति का अत्यंत कारुणिक चित्रण है।

अलंकार—१. 'न तो अगति ही है न गति' में अर्थ में विरोध का आभास होने से विरोधाभास अलंकार।

२. 'जीवन के झाड़' में 'जीवन' पर 'झाड़' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

३. 'रही एक झकझोर' में केवल उपमान (झकझोर) का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

पाऊँ मैं तुम्हें·········आओ।

शब्दार्थ—लूं अँचल पसार—आँचल फैलाकर ले लूं, प्रेमपूर्वक ग्रहण कर

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

लूं। पीतपत्र—पतझर का पीला पत्ता। निमित्त—लिए। स्वरस-वित्त—अपना रस-रूपी धन।

अर्थ—पतझड़ के पीले पत्ते को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे पतझड़ के पीले पत्ते! मेरी और तुम्हारी दोनों की स्थिति समान है, क्योंकि तुम भी पीले हो और मैं भी विरह-व्यथा के कारण पीली पड़ी हुई हूँ। अतः तुम मेरे पास आओ, जिससे मैं तुम्हें प्रेमपूर्वक ग्रहण कर सकूं।

ऊर्मिला के कहने का भाव यह है कि वृक्ष को फूल और फल देने के लिए पत्ता अपनी शक्ति और रस देकर झड़ जाता है। दूसरों के हित के लिए सर्वस्व समर्पित कर देना तो महानता है, पर उस त्याग से उत्पन्न दुर्गति को सहन न करके अपने अस्तित्व को मिटा देना अच्छा नहीं है। यह कायरता है। सम्पूर्ण महानता यही है कि दूसरों के लिए अपना सर्वस्व समर्पित भी कर दिया जाय और उस त्याग के कारण उत्पन्न विषम स्थिति को सहर्ष सहन भी किया जाय।

विशेष—पीले पत्ते के माध्यम से जीवन की गरिमा की अभिव्यक्ति बहुत ही प्रभावपूर्ण है।

अलंकार—'स्वरस-वित्त' में 'रस' का 'वित्त' पर अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

तुम हो……आओ।

शब्दार्थ—नीरस—रसहीन, सूखा हुआ। वीर—भाई।

अर्थ—पतझड़ के पीले पत्ते को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे पतझड़ के पीले पत्ते! तुम्हारा शरीर रसहीन है और मुझ में आँसू भरे हुए हैं। हे भाई! मुझे भी अपने इस शरीर का उपयोग बताओ; अर्थात् यह बताओ कि यह विरहिणी-जीवन किस प्रकार दूसरों की भलाई में आ सकता है। हे पतझड़ के पीले पत्ते! तुम मेरे पास आओ, ताकि मैं तुम्हें प्रेमपूर्वक ग्रहण कर सकूं।

भाव यह है कि पत्ता नीरस होते हुए भी इतना उपकार कर जाता है। ऊर्मिला चाहती है कि वह भी अपने विरही जीवन से किसी का उपकार करे, क्योंकि परोपकार में ही जीवन का महत्त्व निहित है।

SriGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

विशेष—१. इन पंक्तियों में ऊर्मिला की परोपकारिणी भावना का वर्णन है।
२. 'वीर' शब्द का प्रयोग आत्मीयता का सूचक है।

अलंकार—प्रकारांतर से अभीष्टार्थ की अभिव्यक्ति होने से पर्यायोक्ति अलंकार।

जो प्राप्ति हो·········निगोड़ी।

शब्दार्थ—मधूक—महुआ। दलों की—पत्तों की। निगोड़ी—तुच्छ, नगण्य।

अर्थ—फूल और फल आने पर महुए के वृक्ष के सारे पत्ते झड़ जाते है। इसी को लक्ष्य करके विरहिणी ऊर्मिला महुए को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे महुए। यदि तुम्हें फूल और फलों की प्राप्ति होती है तो पत्तों की चिंता करनी व्यर्थ है, क्योंकि वास्तविक प्राप्तव्य तो फल ही होते हैं, पत्ते नहीं। पत्ते तो फलों को प्राप्त करने के साधनमात्र हैं। अगर पूरा लाभ होता है, और यदि उसे प्राप्त करने के लिए थोड़ी हानि भी हो तो उस हानि की चिंता न करके उसे नगण्य ही समझना चाहिए। इसीलिए यदि तुम्हें फलों की प्राप्ति के लिए पत्तों से वंचित होना पड़ता है, तो यह कोई हानि नहीं है।

विशेष—महुए के वृक्ष के माध्यम मे ऊर्मिला अपने मन को समझा रही है कि विरह-व्यथा से प्रेम परिपुष्ट होता है। अतः प्रेम की परिपुष्टि के लिए यदि विरह-व्यथा सहन करनी पड़े तो सहर्ष कर लेनी चाहिए।

अलंकार—'हो लाभ पूरा, पर हानि थोड़ी' में विनिमय होने से परिवृत्ति अलंकार।

श्लाघनीय है············शिशिर का अंत।

शब्दार्थ—श्लाघनीय—प्रशंसा के योग्य। दोनों ही—शिशिर का अन्त और बसंत का प्रारम्भ।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! शिशिर का अन्त और बसन्त का प्रारम्भ दोनों ही प्रशंसा के योग्य हैं, क्योंकि यदि शिशिर का अन्त न हो तो बसंत का प्रारम्भ ही नहीं हो सकता और बसंत प्रकृति की सर्वोत्तम ऋतु है। भाव यह है कि दुख ही सुख का कारण होता है। यदि जीवन में दुख न आये तो सुख भी कदापि नहीं आ सकता, क्योंकि दुख का अन्त ही सुख है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

विशेष—यही भाव अंग्रेजी के एक कवि ने इस पंक्ति में व्यक्त किया है—'If winter comes, can spring be far behind ?'

ज्वलित जीवन········दिखा रहा !

शब्दार्थ—ज्वलित—विरह-व्यथा से दुखी। धूम—धुआँ। धूप—अगरबत्ती से निकलने वाली सुगंधि का धुआँ। अनुरूप—अनुसार। हँसित कुंद—खिलती हुई कुंद-कली। कहा—कथन। दाँत दिखा रहा—दीनता प्रकट कर रहा।

अर्थ—व्यक्ति इस संसार को और इसके पदार्थों को अपनी भावना के अनुसार ही देखता है, इसका वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! विरह-व्यथा से दुखी जीवन धुएँ की भाँति केवल निराशा का गहरा अन्धकार उत्पन्न करने वाला है, या अगरबत्ती से निकलने वाली सुगंधि के धुएँ की भाँति प्रेरणा देने वाला है, इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। व्यक्ति की जैसी मनोदशा होती है, उसी के अनुरूप वह संसार और उसके पदार्थों तथा भावों को ग्रहण करता है। स्वस्थ दृष्टिकोण वाला व्यक्ति विरह से प्रेरणा लेता है और निराशा से ग्रस्त व्यक्ति विरह को जीवन की बाधा बना बैठता है वास्तविकता तो यह है कि यह संसार मन के अनुरूप होता है। यदि मन में निराशा के भाव हैं तो संसार दुख से परिपूर्ण दिखाई देगा, और यदि मन में उल्लास है तो संसार उल्लास से भरे भावों से युक्त दिखाई देगा। यही कारण है कि कवि खिली हुई कुंद-कली को नारी की हँसी से उपमित करते हैं, पर मुझे तो वह ऐसा प्रतीत होता है जैसे मेरी ही भाँति दीन अवस्था को प्राप्त करके अपना दैन्य भाव प्रकट करने के लिए दाँत दिखा रहा हो।

विशेष—मनोवैज्ञानिक सत्य यह है कि मन ही सब भावों का जनक होता है। वही देखता है, वही सुनता है—'It is mind that sees through the eyes, hears through the ears.' कवि ने इन पंक्तियों में इसी सत्य का सरस शैली में वर्णन किया है। ऐसा ही भाव अंग्रेजी के परम विख्यात कवि एवं नाटककार शेक्सपीयर ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

'There is nothing neither bad nor good,
but thinking makes it so.'

अलंकार—१. 'ज्वलित जीवन धूम कि धूप है' में संदेह अलंकार।

iGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

२. कुंद-कली के खिलने को दाँत दिखाना मानना, अर्थात् एक वस्तु के लिए दूसरी वस्तु की सम्भावना होने से वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार।

हाय, अर्थ की.........आप।

शब्दार्थ—अर्थ—धन। उष्णता—गर्मी। ताप—गर्मी का प्रभाव। धनद दिशा—कुबेर की दिशा अर्थात् उत्तर दिशा। आतप-पति—सूर्य।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! धन की गर्मी अपने ताप से किसे प्रभावित नहीं करती? जब सूर्य कुबेर की दिशा में प्रवेश करता है, अर्थात् दक्षिणायन से उत्तरायण होता है, तो वह स्वयं भी तप उठता है।

भाव यह है कि अपने धन की (वैभव की) शक्ति का प्रभाव सब पर होता है। कोई इससे बच नहीं पाता। जैसे दक्षिणायन में जब सूर्य होता है तो वह बहुत शीतल होता है, उसकी धूप तेज़ नहीं होती। परन्तु वही सूर्य जब कुबेर की दिशा में प्रवेश करता है—उत्तरायण होता है—तो इतना तेज हो जाता है कि वह दूसरों को ही नहीं जलाता, वरन् स्वयं भी जलने लगता है।

विशेष—१. इन पंक्तियों में कवि ने उस समय का वर्णन किया है जो शिशिर और बसंत ऋतु के मध्य होता है। शिशिर में सूर्य का ताप सुहावना होता है, पर बसंत ऋतु में वही तीक्ष्ण हो जाता है। कवि की कल्पना यह है कि जिस प्रकार धन की प्राप्ति होने पर व्यक्ति का स्वभाव मद के कारण उग्र हो जाता है, उसी प्रकार धनद-दिशा में पहुँचने से सूर्य के ताप का भी प्रभाव बढ़ जाता है।

२. गुप्तजी की शब्द-योजना प्रायः भावपूर्ण होती है। इन पंक्तियों में प्रयुक्त 'धनद' और 'आतप-पति' इसके उदाहरण हैं।

अलंकार—१. 'देवी किसे न ताप' में काकु-ध्वनि से अर्थ में परिवर्तन होने से काकुवक्रोक्ति अलंकार।

२. 'धनद' और 'आतप-पति' विशेष्यों का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार।

३. सामान्य कथन का विशेष कथन से समर्थन होने के कारण अर्थांतरन्यास अलंकार।

अपना सुमन............जो ले?

शब्दार्थ—सुमन—(१) फूल, (२) सुन्दर मन। आलि—हे सखि। बनमाली—(१) माली, (२) बनवासी लक्ष्मण।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अर्थ—वसंत-ऋतु में खिले हुए फूल को देखकर ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! लता पर खिला हुआ फूल ऐसा दिखाई देता है जैसे उसने चुपचाप अपना हृदय निकालकर रख दिया हो। पर इसके गुणों का पारखी वह माली नहीं है जो झड़ने से पूर्व इसकी ओर एक सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि डाल ले।

भाव यह है कि इस विरह-व्यथा के कारण मैं इतनी व्यथित हूँ कि मेरा हृदय ही निकला जा रहा है और वह समय दूर नहीं है जब मेरे प्राणों का अन्त हो जायेगा। पर मेरे पास मेरा प्रियतम भी तो नहीं है जो मेरे प्राणांत से पूर्व मुझे सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से देख भी सके।

विशेष—प्रकृति में ऊर्मिला अपने ही मन का प्रतिबिम्ब देखती है, अतः प्रकृति का बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव से चित्रण है।

अलंकार—'सुमन' और 'बनमाली' शब्दों के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलकार।

काली काली............होली !

शब्दार्थ—लाल होंठों पर—नवीन लाल होंठों जैसे पत्तों पर। पीली-पीली—सरसों के पीले-पीले रंगों से युक्त।

अर्थ—बसंत-ऋतु की शोभा को देखकर और उसमें बोलती हुई कोयल को सुनकर विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! काली कोयल बोल रही है जो मानो यह संदेश सुना रही है कि अब होली आ गई है और यह प्रियतम से मिलने का उपयुक्त अवसर है, क्योंकि प्रकृति-रूपी युवती भी अपने यौवन तथा अल्हड़पन को लेकर अपने प्रियतम से मिलने के लिए तैयार खड़ी है। प्रकृति के जो लाल-लाल नवीन पत्ते खिले हुए हैं वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानों प्रियतम की मिलन आशा से उसके अरुण होंठ प्रसन्नता से खिल उठे हों। वसंत-ऋतु में चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखाई देती है जो हवा के मंद झोंकों से हिल रही है। वह ऐसी प्रतीत होती है मानो प्रकृति-युवती की प्रसन्नता ही हिलडुल रही हो। बसन्त-ऋतु में सर्वत्र फैली हुई सरसों की पीली पंक्तियाँ ऐसी दिखाई देती हैं मानो प्रकृति-रूपी युवती उसकी पीली चोली को फाड़कर फूट पड़ी हो।

विशेष—जिस प्रकार कोई विरहिणी अपने प्रियतम के आगमन से प्रफुल्लित

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

हो उठती है, उसी प्रकार यहाँ पर प्रकृति पर युवती का आरोप करके उसका चित्रण किया गया है। कवि की यह कल्पना अत्यन्त मार्मिक है।

अलंकार—प्रकृति पर युवती का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

अलस कमलिनी············होली !

शब्दार्थ—अलस—आलस्य से भरी हुई। कलरव—मधुर स्वर। उन्मद—नशे से भरी हुई। रोली—कुंकुम।

अर्थ—बसंत-ऋतु की प्रातःकालीन शोभा का वर्णन करती हुई ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! जिस प्रकार कोई आलस्य से भरी हुई अल्हड़ युवती सुमधुर गीतों से अपनी नशीली आँखों को खोलती है, उसी प्रकार अविकसित कमलिनी ने प्रातःकालीन पक्षियों के मधुर स्वरों को सुनकर अपनी आँखें खोल दी हैं, अर्थात् वह खिल उठी है। आकाश में सर्वत्र लालिमा फैली हुई है जो ऐसी प्रतीत होती है जैसे कोई प्रेमिका होली के अवसर पर अपने प्रेमी के मुख पर कुंकुम आदि मल देती है, उसी प्रकार ऊषा ने आकाश के मुख पर रोली मल दी हो।

विशेष—कवि की कल्पना अत्यंत सजीव एवं प्रभावशालिनी है।

अलंकार—१. 'अलस कमलिनी ने कलरव सुन उन्मद अँखियाँ खोलीं' में केवल उपमान (कमलिनी) का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

२. 'मल दी ऊषा ने अम्बर में दिन के मुख पर रोली' में अहेतु में हेतु की कल्पना होने से हेतूत्प्रेक्षा अलंकार।

रागी-फूलों ने············होली !

शब्दार्थ—रागी—(१) रंगीन, (२) अनुरागी। स्फुट-सम्फुट—(१) खुली हुई पंखुड़ियाँ (२) खुली हुई हथेलियाँ।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! जिस प्रकार कोई अनुरागी प्रेमी अपनी प्रेमिका से होली खेलने के लिए गुलाल आदि से अपनी झोली भर लेता है और केसर आदि भिगोकर अपनी खुली हुई हथेलियों में घोल कर रख लेता है, उसी प्रकार रंगीन फूलों ने अपनी पंखुड़ियाँ पराग से भर ली हैं और ओस ने उनकी खुली हुई पंखुड़ियों में केसर के समान पुष्प-रस घोल दिया है। ऐसा लगता है जैसे प्रकृति-रूपी युवती अपने प्रेमी से होली खेलने के लिए तैयार खड़ी है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

विशेष—होली का पर्व विरहिणी के लिए उद्दीपक होता है। इसीलिए विरहिणी ऊर्मिला, बसंत-ऋतु में होली का मनोरम दृश्य देखती है।

अलंकार—केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

ऋतु ने............होली।

शब्दार्थ—तुल्य—समान। सिहर उठी—उद्दीप्त हो उठी। भुवन-भावना—लौकिक सुखों की इच्छा।

अर्थ—बसंत-ऋतु में न तो तेज गर्मी होती है और न तेज़ जाड़ा, इसलिये यह ऋतु अत्यंत सुहावनी एवं उद्दीपक होती है। इसी का वर्णन करती हुई ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! गर्मी और सर्दी की समानता होने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे इस ऋतु ने रवि और शशि के दोनों पलड़ों पर गर्मी और सर्दी को अपनी तराजू पर तोलकर बराबर कर दिया हो। भाव यह है कि जिस प्रकार कोई व्यक्ति तराजू में तोलकर बराबर बना देता है, उसी प्रकार मानों बसन्त-ऋतु ने सूर्य और चन्द्रमा की गर्मी एवं सर्दी को बराबर बना दिया है, इसीलिए इस ऋतु में गर्मी और सर्दी की मात्रा समान ही होती है। इस ऋतु में न जाने क्यों मेरी लौकिक सुखों की इच्छा सहसा उद्दीप्त हो उठी है; अर्थात् प्रियतम से मिलने के लिए मेरी भोली इच्छा बलवती हो गई है।

विशेष—बसन्त-ऋतु में गर्मी-सर्दी का प्रभाव समान होता है। इसका जो कारण कवि ने बताया है, यह उसकी सरस कल्पना का उदाहरण है।

अलंकार—१. रवि-शशि पर पलड़ों का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

२. अहेतु में हेतु की कल्पना होने से हेतूत्प्रेक्षा अलंकार।

गूंज उठी............होली!

शब्दार्थ—अलियों की—भौंरों की। श्वास-सुरभि—साँसों की सुगन्धि। दक्षिण से—दक्षिण दिशा से।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! जिस प्रकार होली में प्रेमियों का समूह प्रेमिकाओं को घेर लेता है और सरस गीत गाता है, उसी प्रकार भौंरों के समूह ने कलियों को घेर लिया है और उनके गिर्द-गिर्द गूंज उठा है। दक्षिण दिशा से मलय पवन की जो सुगंधि आ रही है, वह ऐसी प्रतीत होती है मानो प्रियतम के साँसों की अमूल्य सुगंधि आ रही हो।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

विशेष—होली-पर्व का उद्दीपन रूप में चित्रण है।

अलंकार—१.'गूंज उठी खिलती कलियों पर उड़ अलियों की टोली' में केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

२. 'प्रिय की श्वास-सुरभि दक्षिण से आती है अनमोली' में एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु की सम्भावना होने से वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार।

जा मलयानिल............अपने को आप !

शब्दार्थ—मलयानिल—शीतल मलय पवन।

अर्थ—मलय पवन को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे मलय पवन ! जा, तू यहाँ से लौट जा, क्योंकि यहाँ पर अवधि का शाप होने से मैं विरह में जल रही हूँ। ऐसा न हो कि मेरी जलती हुई साँसों से तेरी शीतलता ही नष्ट हो जाये, और तू लू के समान गरम बनकर अपने-आप को ही न लगने लगे।

भाव यह है कि मेरी साँसें विरह-व्यथा से इतनी गर्म हैं कि वे तुझे भी लू के समान गरम बना देंगी, अतः तेरा यहाँ न आना ही अच्छा है।

विशेष—ऊर्मिला के विरह-ताप का ऊहात्मक वर्णन है। बिहारी ने भी, अनेक दोहों में अपनी विरहिणी के ताप का ऐसा ही ऊहात्मक वर्णन किया है। यथा—

'आड़े दै आले बसन, जाड़े हूँ की राति।
साहस ककै सनेह-बस, सखी सबै ढिग जाति ॥'

अर्थात् उस विरहिणी का ताप इतना अधिक है कि जाड़े की रात में भी जब उसकी सखियाँ स्नेह-वश उससे मिलने जाती हैं तो गीले वस्त्रों की आड़ लगा लेती हैं, ताकि वे उसकी विरह-ताप की लपटों से झुलस न जायें।

अलंकार—ऊहात्मक उक्ति होने से अत्युक्ति अलंकार।

भ्रमर, इधर मत.........................दूर ही दूर।

शब्दार्थ—खट्टे अँगूर—अप्राप्य वस्तु। चम्पक-गंध—चम्पा के पुष्प की सुगंधि।

अर्थ—भ्रमर को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि भ्रमर ! तू इधर मत आना, क्योंकि ये तेरे लिए अप्राप्य वस्तु हैं। यदि तुम्हें चम्पा के पुष्प की सुगंधि लेनी ही है तो दूर से ही ले लेना।

विशेष—भ्रमर चम्पा के पुष्प पर नहीं बैठा करता, यह काव्य-रूढ़ि है

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgac

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

बिहारी ने इस काव्य-रूढ़ि का प्रयोग अत्यंत चमत्कारी रीति से किया है—

'जटित नीलमनि जगमगति, सींक सुहाई नांक।
मनौ अली चम्पक-कली, बसि रस लेत निसांक॥'

अलंकार—लोक-प्रचलित उक्ति का प्रयोग होने से लोकोक्ति अलंकार।

सहज मातृ गुण·········यह त्याग !

शब्दार्थ—सहज—स्वाभाविक। मातृगुण—माता का गुण, पृथ्वी-माता का गुण अर्थात् सुगंधि से पूर्ण। कर्णिकार—कनेर का पुष्प। विगुण—गुणहीन। रूप-दृष्टांत—रूप का उदाहरण। अर्थ—लिए, योग्य।

अर्थ—गुणहीन रूप-सौन्दर्य का कोई महत्त्व नहीं होता, इस बात का समर्थन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! सुगंधि पृथ्वी-माता का सहज गुण था और इस गुण का अन्य पुष्पों की भाँति कनेर के पुष्प में भी आना स्वाभाविक था, लेकिन कनेर ने इस गुण का इस लिए त्याग कर दिया कि कहीं उसका प्रयोग भी गुणहीन रूप के उदाहरण के लिए न होने लगे। अर्थात् जिस प्रकार कवि नारी के रूप की चाहे वह गुणहीन ही क्यों न हो, अन्य पुष्पों से तुलना करते हैं, उसी प्रकार उससे भी न करने लगेंगे, क्योंकि उसकी दृष्टि में गुणहीन रूप का कोई महत्त्व नहीं है।

विशेष—इस दोहे के साकेत के व्याख्याकारों द्वारा भिन्न-भिन्न अर्थ किये गये हैं। कुछ अर्थ प्रस्तुत हैं—

(क)—'कनीर के फूल को पृथिवी माता का गुण अर्थात् गंध (तत्र गंधवती पृथिवी) नहीं मिला। गंध को उसने छोड़ दिया, शायद यह दिखलाने के लिए कि बिना गुण के भी रूप तो हो सकता है; रूप-शील सगुण भी हो, यह ज़रूरी नहीं।'

—डॉ० कन्हैयालाल सहल

(ख)—'कवि-प्रसिद्धि है कि कनेर में गंध नहीं होती। इस पर कल्पना करती हुई ऊर्मिला कहती है (कि) गंधमयी पृथ्वी से उत्पन्न होने के कारण सभी फूलों के समान कनेर के फूल में भी गंध हो, यह बहुत स्वाभाविक है। लेकिन कवियों ने किसी कारण से इसे इस योग्य नहीं समझा कि सौन्दर्य की तुलना करते समय इसका भी उल्लेख करें, कहीं इसीलिए तो इसके गंध वाले गुण को लोगों ने नहीं भुला दिया? कहने का आशय यह है कि कवि लोग रूप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

की तुलना कनेर से नहीं करते। अतः कहीं ऐसा तो नहीं है कि इसे तिरस्कृत पुष्प समझकर लोगों ने यह कहना आरम्भ कर दिया हो कि इसमें गंध नहीं होती।'

—डॉ० विश्वम्भर 'मानव'

(ग)—'मातृ (पृथ्वी का) गुण (गंध) तो कर्णिकार (कनियारी अथवा कनीर के फूल) को सहज (स्वाभाविक रूप से अथवा जन्माधिकार द्वारा) प्राप्य था। कहीं उसने यह सिद्ध करने के उद्देश्य से तो यह (गंध-ग्रहण अधिकार) त्याग नहीं किया कि गुण के बिना भी रूप सम्भव है (रूप तथा गुण का अनिवार्य किंवा अन्योन्याश्रय सम्बन्ध नहीं है।)'

—श्री नगीनचन्द्र सहगल

हमारे मत से उपर्युक्त दोहे का अर्थ यह है—'सुगंधि पृथ्वी-माता का सहज गुण था और इस गुण का अन्य पुष्पों की भाँति कनेर के पुष्प में भी आना स्वाभाविक था, लेकिन कनेर ने इस गुण का इसलिए त्याग कर दिया कि कहीं उसका प्रयोग भी गुणहीन रूप के उदाहरण के लिए न होने लगे।'

इससे स्पष्ट है कि ऊर्मिला रूप के लिए गुणों को अनिवार्य मानती है। नारी का रूप—चाहे शारीरिक दृष्टि से वह ढल गया हो—तभी तक सौन्दर्य-सम्पन्न है, जब तक उसमें पति-प्रेम, प्रेम-निष्ठा आदि गुण विद्यमान हैं। प्रायः विरहिणियों को यह भय रहता है कि विरह-काल में ही उनका रूप ढल जायेगा और इसके पश्चात् यदि प्रियतम से मिलन होगा तो फिर कोई लाभ न होगा। इसीलिए विद्यापति की विरहिणी कहती है कि सूर्य की आग ही यदि अंकुर को जला डाले तो बादल और वर्षा क्या कर सकती है? यदि यह नव-यौवन विरह में ही गंवा दिया तो प्रियतम के घर लौटने से क्या लाभ—

'अंकुर तपन-ताप जदि जारब कि करब बारिद मेह।
ई नव जौवन विरह गमाओब कि करब से पिय गेह॥'

लेकिन ऊर्मिला वासनामयी नहीं, वरन् आदर्श नारी है। वह शरीर को नहीं, मन को और उसके स्वस्थ भावों को स्वीकार करती है। इसीलिए वह उस नारी-सौदर्य का तिरस्कार करती है जो केवल शारीरिक है। यही कारण है कि वह उस कनेर के पुष्प की प्रशंसा करती है जिसने इस भय से सुगंधि ग्रहण नहीं की कि कहीं अन्य पुष्पों की भाँति नारी के गुणहीन रूप की उससे तुलना न होने लगे।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अलंकार—अहेतु में हेतु की कल्पना होने से हेतूत्प्रेक्षा अलंकार।

मुझे फूल मत............सिर पर धारो। V Imp. For B.H.U.B.A. Part I Exam

शब्दार्थ—अबला—शक्तिहीन नारी। बाला—युवती। वियोगिनी—(१) विरहिणी, (२) सांसारिक सुखों से उदासीन। मधु—बसंत-ऋतु। मदन—कामदेव। पटु—बुद्धिमान। कटु—कड़वा, भीषण। गरल—विष। गारो—घोलो। विकलता—व्यथा। विफलता—असफलता। परिहारो—दूर करो। भोगिनी—सांसारिक सुखों को भोगने की इच्छा करने वाली। हरनेत्र—शिव का नेत्र; कहा जाता है कि शिव ने कामदेव को अपने तीसरे नेत्र की अग्नि से भस्म कर दिया था। रूप-दर्प—रूप का घमंड। कंदर्प—कामदेव। रति—कामदेव की स्त्री का नाम।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला कामदेव को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे कामदेव! तुम मुझे अपने फूलों के बाणों से मत मारो, अर्थात् मेरे मन में काम-भावनाएँ जगाकर मुझे पथ-भ्रष्ट करने का प्रयत्न न करो। मैं शक्तिहीन नहीं हूँ, युवती होती हुई भी विरहिणी हूँ, अतः मेरी असहाय दशा देखकर मुझ पर कुछ तो कृपा करो। तुम उस बसंत-ऋतु के मित्र हो जो सबको सुख देता है, तुम स्वयं बुद्धिमान भी हो, इसलिए तुम्हें उचित-अनुचित का ज्ञान है। इसलिए मुझ पर भीषण विष न घोलो; अर्थात् मुझे तुम जो यह भयंकर यातना दे रहे हो, तुम्हारे लिए यह कार्य सभी दृष्टियों से अनुचित है। यदि फिर भी तुम मुझ दुख देते ही हो तो यह जान लो कि तुम मुझे व्यथित करने का जो प्रयत्न करोगे, तुम्हारा वह प्रयत्न असफल ही होगा। अतः अच्छा यही है कि ऐसे प्रयत्न के लिए जो श्रम तुम करो, उसे न करो। मैं कोई सांसारिक सुखों के भोगने की इच्छा करने वाली नारी नहीं हूँ, जो तुम्हें अपना यह जाल फैलाने की आवश्यकता हो। कहने का भाव यह है कि तुम तो उन्हीं नारियों को दुख देते हो, जो वासना के वशीभूत होती हैं। मैं तो वासना से बहुत दूर हूँ, अतः तुम्हें न तो मुझे पीड़ित करने का अधिकार ही है और न तुम मुझे पीड़ित ही कर सकते हो। इस पर भी यदि तुम स्वयं को शक्तिशाली समझते हो तो मेरे माथे पर लगे हुए इस सिंदूर के बिंदु को शिव का तीसरा नेत्र समझो; और समझ लो कि जिस प्रकार शिव के तीसरे नेत्र ने तुम्हें भस्म कर दिया था, उसी प्रकार यह मेरा सिंदूर का बिंदु भी तुम्हें भस्म कर देगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

हे कामदेव ! यदि तुम्हें अपने रूप का घमण्ड है तो उसे मेरे पति के रूप पर न्यौछावर कर दो, अर्थात् मेरे पति तुमसे बहुत ही अधिक सुन्दर हैं। अतः मेरे चरणों की यह धूल लेकर उस रति के सिर पर डाल दो जो तुम्हारे भस्म होने पर भी जीवित रही और अपने रूप का गर्व करती रही। भाव यह है कि तुम्हारी पत्नी रति भी मेरे सामने बहुत ही तुच्छ है, क्योंकि तुम्हारे भस्म होने की भी उसने तनिक चिंता नहीं की, बल्कि वह अपने रूप-यौवन पर इठलाती रही। उसने स्त्री-धर्म को कलंकित किया, जबकि मैं स्त्री-धर्म की रक्षा के लिए पल-पल जल और गल रही हूँ।

विशेष—१. यह माना जाता है कि कामदेव अपने पाँच बाणों से ही, जो फूलों के होते हैं, युवक और युवतियों को पीड़ित किया करता है, इसलिये कामदेव के पुष्पशर, पुष्पधन्वा, पंचशर आदि नाम भी हैं।

२. 'वियोगिनी' का एक अर्थ है—सांसारिक सुखों से उदासीन। इस अर्थ के आधार पर इसका यह अर्थ होगा—हे कामदेव ! तुम्हें तो उन्हीं नारियों को पीड़ित करने का अधिकार है जो भोगिनी (सांसारिक सुखों के प्रति आसक्त) होती हैं। मैं तो वियोगिनी हूं, सांसारिक सुखों से उदासीन हूं, अतः तुम्हें मुझको पीड़ित करने का कोई अधिकार नहीं है।

३. अपने तथा अपने पति के प्रति ऊर्मिला का आत्मगौरव एवं आत्मविश्वास इस छंद में स्पष्ट रूप से मुखरित है।

अलंकार—१. 'मैं अबला बाला वियोगिनी' में अबला, बाला और वियोगिनी विशेष्यों का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार।

२. 'पटु-कटु' में समान स्वरों एवं व्यंजनों की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास अलंकार।

३. 'रूप-दर्प कंदर्प' में 'दर्प' शब्द की सार्थक-निरर्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार।

४. 'उस रति के' में 'उस' विशेषण का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकर अलंकार।

५. प्रसिद्ध उपमान (रति) का तिरस्कार होने से व्यतिरेक अलंकार।

फूल खिलो !..........देख कर रोष।

शब्दार्थ—तोष—संतोष। मनसिज—कामदेव। रोष—क्रोध।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अर्थ—फूल को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे फूल ! तुम आनन्द से खिलते रहो। तुमसे मुझे संतोष है। चूंकि तुम्हारे बाण बना कर कामदेव मेरी विरह-व्यथा को उद्दीप्त करना चाहता है, इसलिए उसके दोष को देख कर ही मुझे उस पर क्रोध आ गया है।

विशेष—इन पंक्तियों में ऊर्मिला की करुण भावना व्यक्त हुई है, वह इतनी सकरुण है कि इस आशंका से कि पुष्प कहीं दुखी न हो जाए भयभीत हो उठी है।

अलंकार—'दोष-रोष' में समान स्वर और व्यंजनों की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास अलंकार।

आई हूँ सशोक............पद-जलजात की।

शब्दार्थ—सशोक—दुखी। अशोक—एक वृक्ष का नाम। भीत—डर। पदाघात—पद-प्रहार; यह माना जाता है कि स्त्रियों के पद-प्रहार से ही अशोक वृक्ष पर फूल खिलते हैं। सुलक्ष कर—लक्षित करके। वक्ष भर—अत्यन्त उमंग में भर कर। ननद—लक्ष्मण की बहन शान्ता। पद जलजात—चरण कमल।

अर्थ—संयोगावस्था की एक मधुर घटना की याद करके विरहिणी ऊर्मिला अशोक वृक्ष को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे अशोक ! आज मैं विरह-दुख से दुखी होकर तेरे नीचे आई हूँ, अर्थात् अपने दुख को दूर करने के लिए तेरी शरण में आई हूं। यह सच है कि आज मैं दुखी हूं, पर हमेशा ही तो दुखी नहीं थी। क्या तुम्हें वह घटना याद आती है जब तुम्हारे नीचे खड़े होकर मेरे प्रियतम ने मुझसे कहा था कि हे प्रिये ! तुम्हारे चरण-प्रहार का इसे डर था, इसलिए यह वृक्ष पहले ही फूलों से लद गया है। तब मैंने अत्यन्त उमंग में भर कर और अकस्मात् तुम्हारे साथ हँस कर तुम्हारी बहन शान्ता को लक्षित करके कहा था कि हे नाथ ! आप भूलते हैं, यदि मेरी ननद (शान्ता) प्रीतिपूर्वक अपने चरण-कमलों से इस पर चोट न करती तो यह कैसे फलता-फूलता।

विशेष—१. इन पंक्तियों में पति-पत्नी का व्यंग्यपूर्ण परिहास अत्यन्त सफलता से चित्रित हुआ है।

२. यह माना जाता है कि गर्भवती स्त्रियों के पाद-प्रहार से ही अशोक वृक्ष फलता-फूलता है। यदि इस मान्यता को सही माना जाए तो कहा जा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सकता है कि लक्ष्मण का व्यंग्य ऊर्मिला को गर्भवती व्यंजित करता है। अतः यह घटना, जिसकी कल्पना कवि ने इन पंक्तियों में की है, ऐतिहासिक दोष से परिपूर्ण है।

अलंकार—१. 'सशोक-अशोक' में समान स्वर और व्यंजनों की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास अलंकार।

२. "पहले ही फूला यह भीति जो थी इसको तुम्हारे पदाघात की" में कारण से पूर्व ही कार्य का कथन होने से अत्यंतातिशयोक्ति अलंकार।

सूखा है............वकुल-समाज।

शब्दार्थ—रूखा—दुखी। सुमन-संकुल—फूलों से भरे हुए। वकुल-समाज—मौलश्री के वृक्षों का समूह।

अर्थ—लक्ष्मण के द्वारा लगाए गए मौलश्री के वृक्षों के प्रति अपना अपनत्व प्रकट करती हुई ऊर्मिला कहती है कि यद्यपि मेरा सुख विरहजन्य दुख के कारण सूख गया है और मेरा मन भी आज दुखी बना हुआ है, किन्तु मेरी कामना है कि प्रियतम के द्वारा लगाए मौलश्री वृक्षों का समूह फूलों से भरा हुआ रहे।

विशेष—प्रिय से सम्बद्ध वस्तुओं के प्रति प्रेम होना मनोवैज्ञानिक सत्य है। इसी सत्य को इन पंक्तियों में वर्णित किया गया है।

अलंकार—'रूखा-सूखा' में छेकानुप्रास अलंकार।

करूँ बड़ाई............यहाँ रसाल!

शब्दार्थ—चिरकाल—निरंतर। यथार्थ में—वास्तव में। रसाल—आम।

अर्थ—आम के वृक्ष को सम्बोधित करती हुई ऊर्मिला कहती है कि हे आम के वृक्ष! मैं तुम्हारे फूल की बड़ाई करूँ या तुम्हारे फल की निरंतर बड़ाई करती रहूँ? यहाँ पर जितने वृक्ष लगे हुए हैं उन सबमें तू ही वास्तव में फूला-फला है, क्योंकि तेरी मंजरी में सुगन्धि भी है और फल में मिठास भी है।

अलंकार—रसाल विशेष्य का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार।

देखूँ मैं.........सुवास।

शब्दार्थ—सविलास—आनन्द से नाचता हुआ। सहस्रदल—कमल। सुवास—सुगन्धि। अतुल—अपार। अम्बुकुल-सा—जल के परिवार के समान।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अमल—निर्मल। अम्बुज—कमल। जन्य—पुत्र। ध्रुव—निश्चित रूप से। साधु—रमणीय। सरोवर-विभव—सरोवर का वैभव।

अर्थ—कमल को सम्बोधित करती हुई ऊर्मिला कहती है कि हे कमल! मेरी यह इच्छा है कि मैं तुझको आनन्द से नाचता हुआ देखूं, इसलिए तू रस तथा सुगन्धि से पूर्ण होकर खिल। तुझे देखकर यह कहा जा सकता है कि कोई भी अपार जल के परिवार के समान निर्मल नहीं है जिसमें तेरा जन्म हुआ है। निश्चय ही यह परिवार धन्य है। हे कमल! तुम रमणीय सरोवर के वैभव का विकास हो, अर्थात् तुम्हारे द्वारा ही सरोवर में रमणीयता एवं वैभवशीलता आती है, इसलिए तुम रस और सुगन्धि से पूर्ण होकर खिलो।

विशेष—कमल के प्रति ऊर्मिला की सहानुभूति उसकी करुण-भावना की द्योतिका है।

अलंकार—१. 'अतुल अम्बुकुल सा अमल भला कौन है अन्य' में काकु-वक्रोक्ति अलंकार।

२. 'अम्बुज' विशेष्य का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार।

३. 'जन्य धन्य' में छेकानुप्रास अलंकार।

४. 'धन्य ध्रुव धन्य' में 'धन्य' शब्द की भावपूर्ण आवृत्ति होने से पुनरुक्ति अलंकार।

कब फूलों·····सरस, सुवास।

शब्दार्थ—मधु—मकरन्द। आवास—निवास स्थान।

अर्थ—कमल के फूल की महत्ता का वर्णन करती हुई ऊर्मिला कहती है कि हे कमल! तुम सब फूलों में विलक्षण हो, क्योंकि अन्य वृक्षों पर फूलों के साथ फल नहीं लगते और फलों के साथ फूल नहीं होते। भाव यह है कि जब फूल होते हैं तो फल नहीं आता और फल आता है तो फूल झड़ जाते हैं किन्तु तुम्हारा ही फूल ऐसा है जो फल के साथ रहता है। हे मकरन्द के सुन्दर आवास! हे कमल! तुम रस और सुगन्धि से पूर्ण होकर खिलो।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि का सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण स्पष्ट है।

एक मात्र·····सरस, सुवास।

शब्दार्थ—उपमान—जिससे तुलना की जाती है। उपमेय—जिसकी तुलना की जाती है। गुरुतम—अत्यधिक श्रेष्ठ। गेय—प्रशंसनीय।

अर्थ—कमल को सम्बोधित करती हुई ऊर्मिला कहती है कि हे कमल!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

तू ही एकमात्र उपमान है और तेरे अनेक उपमेय हैं। तू रूप, रंग, गुण, गंध में सबसे अधिक श्रेष्ठ और प्रशंसनीय है। तू मेरे प्रियतम के अंगों की शोभा का आभास देता है, अतः तुम्हें देखकर मुझे अपने प्रियतम के सुन्दर अंगों की याद आ जाती है। हे कमल ! मेरी कामना है कि तू रस और सुगन्धि से पूर्ण होकर खिल।

विशेष—काव्य-शास्त्र में कमल को अनेक वस्तुओं का उपमान माना गया है। 'एकमात्र उपमान तू है अनेक उपमेय' से कवि का संकेत इसी काव्य-शास्त्रीय परम्परा की ओर है।

अलंकार—समान वस्तु को देखकर लक्ष्मण की स्मृति हो आने से स्मरण अलंकार।

तू सुषमा·········सरस, सुवास।

शब्दार्थ—सुषमा—शोभा। कर—हाथ। रति—कामदेव की स्त्री। मुखाब्ज—मुख-रूपी कमल। उदग्रीव—सुन्दर गर्दन। लीला-लोचन—चंचल नयन। नलिन—कमल। प्रभु-पद—राम के चरण। राजीव—कमल।

अर्थ—कमल को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे कमल ! तेरा प्रयोग अनेक उपमानों में होता है। हाथ की शोभा के लिए, सुन्दर गर्दन वाली रति के मुख की शोभा के लिए, चंचल नेत्रों की शोभा के लिए और राम के चरणों की शोभा के लिए तेरा ही प्रयोग किया जाता है। चाहे तू लहरों को लेकर उसी प्रकार रास-लीला कर, जिस प्रकार कृष्ण गोपियों को लेकर किया करते थे। तू रस और सुगन्धि से परिपूर्ण होकर खिल।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि का शब्द-चयन प्रभावशाली है।

अलंकार—'रच लहरों को लेकर रास' में केवल उपमान का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

सहज सजल······सरस, सुवास।

शब्दार्थ—सजल—रमणीय। पद्म—कमल। सद्म—घर।

अर्थ—कमल को सम्बोधित करती हुई विरह-व्यथिता ऊर्मिला कहती है कि हे कमल ! तू स्त्रियों के स्वाभाविक और रमणीय सौन्दर्य का आधार है; अर्थात् तुझसे ही उपमित होकर रमणियों का सौन्दर्य व्यक्त किया जाता है। आर्य जाति में तुझे ही लक्ष्मी का शुभ निवास-स्थान बताया जाता है। क्या यह विश्वास सही है ? हे कमल ! तू रस और सुगन्धि से परिपूर्ण होकर खिल।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

विशेष—इन पंक्तियों में दूसरी और तीसरी पंक्ति में काव्योचित सरसता का अभाव है।

अलंकार—'सहज सजल सौन्दर्य' में 'स' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार।

रहकर भी............सरस, सुवास।

शब्दार्थ—जल-जल में—जल के घेरे में। अलिप्त—अलग। अरविन्द—कमल। मनोमिलिन्द—मन-रूपी भँवरे।

अर्थ—कमल को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे कमल! तू जल के घेरे में रहकर भी उससे अलग ही रहता है; अर्थात् जल में उत्पन्न होकर भी जल से ऊपर रहता है। यह तेरी महान् विलक्षणता है। इसी विलक्षणता के वशीभूत होकर कवियों के मन-रूपी भँवरे तुझ पर गूँजते रहते हैं, अर्थात् कविजन अनेक प्रकार से तेरी प्रशंसा किया करते हैं। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि दानी के वश में सभी हो जाते हैं। हे कमल! तू रस और सुगंधि से परिपूर्ण होकर खिल।

विशेष—कमल पानी में उत्पन्न होकर भी उससे अलिप्त रहता है। इस भावना का आत्मा और माया का विश्लेषण करते हुए भारतीय दार्शनिकों ने अनेक बार उल्लेख किया है।

अलंकार—'मनोमिलिन्द' में 'मन' पर 'मिलिन्द' का अभेदारोप होने से रूपक अलंकार।

तेरे पट............सरस, सुवास।

शब्दार्थ—पट—पटरूपी पंखुड़ियाँ। दिनकर—सूर्य। मानस—(१) हृदय, (२) मानसरोवर। हास—(१) हँसी (२) उज्ज्वलता।

अर्थ—कमल को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे कमल! स्वयं सूर्य आकर तेरी पट-रूपी पंखुड़ियाँ खोलता है। हे निष्पाप कमल! तू हम सबके दुःखों को दूर करता रहे और जिस प्रकार मेरे हृदय में तुझे देखकर हर्ष-जन्य हँसी उत्पन्न हुई है, उसी प्रकार तू मानसरोवर को अपना ज्योति से निर्मलता देकर उज्ज्वल बनाए रख। हे कमल! तू रस और सुगंधि से परिपूर्ण होकर खिल।

विशेष—'दिनकर आप' शब्दों के प्रयोग से कमल की महत्ता प्रतिपादित की गई है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अलंकार—१. 'तेरे पट है खोलता' में केवल उपमान का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

२. 'ओ मेरे मानस के हास' में श्लिष्ट शब्दों का प्रयोग होने से श्लेष अलंकार।

पैठी है............गतिहीन !

शब्दार्थ—पैठी है—बैठी हुई है। षटपदी—छः पैरों वाली, अर्थात् भ्रमरी। निज—अपने। सरसिज—कमल। सप्तपदी—सात पैरों वाली, अर्थात् विवाह के समय सात फेरे लेने वाली।

अर्थ—कमल-पुष्प पर आनन्दपूर्वक बैठी हुई भ्रमरी को देखकर विरह-व्यथिता ऊर्मिला कहती है कि हे भ्रमरी ! तू छः पैरों वाली होकर भी अपने कमल पर आनन्द-पूर्वक बैठी हुई है और मैं सात पैरों वाली होकर भी—विवाह में अपने प्रियतम के साथ सात फेरे लेकर भी—प्रियतम के अभाव में गतिहीन बनकर ही बैठी हुई हूँ।

विशेष—भाव की सरसता की अपेक्षा इस दोहे में कला का चमत्कार अधिक है।

अलंकार—१. अर्थ में विरोध का आभास होने से विरोधाभास अलंकार।

२. 'षटपदी' और 'सप्तपदी' विशेष्यों का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार।

बिखर कली............यही रोना !

शब्दार्थ—संकुचित होना—मुरझा जाना। संकोच—लज्जा।

अर्थ—खिलकर बिखरने वाली कली को देखकर विरहिणी ऊर्मिला सोचती है कि जब कली एक बार खिल जाती है तो वह फिर मुरझाती नहीं है, भले ही वह बिखर जाये। क्योंकि वह जानती है कि संकुचित होना अच्छा नहीं है। मैंने संकोच किया—लज्जावश अपने प्रियतम के साथ बन न जा सकी—तो इसका परिणाम यह हुआ कि अब मेरे हृदय में यदि कुछ शेष रह गया है तो वह है प्रियतम के विरह में रात-दिन रोते रहना।

विशेष—प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण है।

अलंकार—'कब सीखी किंतु संकुचित होना' में काकु-ध्वनि से अर्थ में परिवर्तन होने से काकुवक्रोक्ति अलंकार।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अरी, गूँजती..............घर लक्खी ।

शब्दार्थ—रस की मटकी—शहद से भरा हुआ छत्ता । संचय—इकट्ठा करना । दैव—कठोर भाग्य । घात—अवसर । व्याध—जंगली-जाति का मनुष्य जो शहद इकट्ठा करता है । घर लक्खी—लाखों छेद वाला घर, बहुमूल्य घर ।

अर्थ—मधुमक्खी को देखकर विरहिणी ऊर्मिला की विरह-व्यथा जागृत हो जाती है और वह उसे सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे मधुमक्खी ! तू आनन्द में भरकर गूँज तो रही है, पर तू यह नहीं जानती कि तेरी यह आनन्द-भरी गूँज कुछ ही क्षणों के लिए है । तू यह तो बता कि रस से भरा हुआ मटका, शहद का छत्ता, तूने किसके लिए सँजोकर रक्खा है ? तेरा यह छत्ता निश्चय ही किसी के भी काम नहीं आयेगा, क्योंकि कठोर भाग्य किसी का भी संचय सहन्न नहीं कर पाता । तेरा यह संचय और इसके द्वारा प्राप्त तेरा आनन्द उसे बुरा लगेगा । काल अवसर की ताक में लगा रहेगा और जब भी उसे अवसर मिलेगा, वह तेरे इस छत्ते को तोड़कर नष्ट कर देगा । तेरे छत्ते को तोड़कर शहद लूटने वाला व्याध तेरे इस लाखों छिद्र वाले छत्ते को उसी प्रकार चुपचाप लूट लेगा, जिस प्रकार डाकू लखपति-घर को लूटकर ले जाते हैं ।

विशेष—अन्य पदार्थों पर अपनी भावनाओं का दुखीजन द्वारा आरोप मनोवैज्ञानिक सत्य है । ऊर्मिला भी मधुमक्खी पर अपनी भावनाओं का आरोप कर रही है । वस्तुतः वह मधुमक्खी के बहाने से अपनी ही करुण कथा कह रही है ।

अलंकार—१. 'रस की मटकी' और 'व्याध बात भी नहीं कहेगा, लूटेगा घर लक्खी' में केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

२. 'किसका संचय दैव सहेगा' में काकुवक्रोक्ति अलंकार ।

इसे त्याग का...........चक्खी !

शब्दार्थ—त्याग का रंग देना—त्याग मान लेना । सुधा-सी—अमृत के समान ।

अर्थ—मधुमक्खी को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे मधुमक्खी ! यदि कोई व्याध तेरा छत्ता लूट लेता है तो उसे तू त्याग मत मान लेना, क्योंकि लूट त्याग नहीं होती । अतः लूटने से पूर्व ही इस मधु-संचय का उपयोग करके अपने श्रम का फल भोग लेना और उस फूल का आभार स्वीकार करना, जिसके रस का तुमने अमृत के समान स्वाद लिया है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भाव यह है कि इस छत्ते का शीघ्र उपभोग कर लेना, न जाने कब व्याध इसके पास आ पहुँचे और इसे तोड़कर ले जाये।

विशेष—प्रकृति पर ऊर्मिला अपने ही भावों का आरोप कर रही है। अतः यह बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव से प्रकृति का चित्रण है।

अलंकार—'सुधा-सी' में उपमा अलंकार।

सखि मैं............छोड़ छली ?

शब्दार्थ—भव-कानन—संसार-रूपी बन। हेम-अली—सुनहला भँवरा। आलि—हे सखि। बयार चली—गति बदली।

अर्थ—ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! मैं संसार-रूपी बन में वह कली बनकर निकली थी, जिसके खिलते ही जिससे प्रेमपूर्वक मिलने के लिए एक सुनहला भौंरा उड़कर आ पहुंचा था। हे सखि ! जब तक मैंने उसको मुस्कराकर अपनाया, तब तक न जाने कैसे गति बदल गई और वह छली भँवरा मुझसे यह कह कर कि पथ देखकर जीवित रहना, न जाने किस ओर उड़ गया।

भौंरे के माध्यम से ऊर्मिला अपनी ही दशा का वर्णन कर रही है। उसके कहने का अभिप्राय यह है कि जैसे ही उसने यौवन में पदार्पण किया, उसे पति-रूप में सुन्दर लक्ष्मण प्राप्त हुए। वह अपने प्रियतम से मन भरकर प्रेम भी न कर पाई थी कि उन्हें बनवास मिल गया। और अब वह उनकी प्रतीक्षा करती हुई जीवित है।

विशेष—१. प्रकारान्तर से अपनी स्थिति का वर्णन करने के कारण ऊर्मिला की यह उक्ति अत्यन्त हृदयग्राही है।

२. 'उड़ आ पहुंचा हिल हेम-अली' में 'हेम' शब्द लक्ष्मण के शारीरिक सौन्दर्य का संकेत देता है।

३. लौ और बयार ब्रजभाषा के प्रचलित शब्द हैं।

४. छली शब्द का प्रयोग आत्मीयता का सूचक है।

अलंकार—१. 'भव-कानन' में 'भव' पर 'कानन' का अभेदारोप होने से रूपक अलंकार।

२. 'उड़ आ पहुंच हिम हेम-अली' में केवल उपमान का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

३. प्रस्तुत से अप्रस्तुत अर्थ का बोध होने के कारण अन्योक्ति अलंकार।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

छोड़, छोड़..............जाये हैं ।

शब्दार्थ—विनोद—प्रसन्नता । लाल आँसुओं-से—उन ओस बिन्दुओं की भाँति जो सूर्य की नवीन किरणों से प्रतिबिम्बित होकर लाल दिखाई देते हैं । जाये—उत्पन्न किए ।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला ने अपने उपवन के कुछ अधखिले फूलों का स्पर्श किया । संकेत से यह जानकर कि वह उन फूलों को तोड़ना चाहती है, उसकी सखी उन फूलों को तोड़ने के लिए तैयार हुई, उसे देखकर ऊर्मिला कहती है कि हे सखि ! छोड़ दे, इन फूलों को मत तोड़, देख तो सही ये इतने कोमल हैं कि मेरे हाथ लगते ही कुम्हला गए हैं, मैंने अपनी प्रसन्नता के लिए इन्हें छू लिया था । अब मुझे पता लगा कि हमारे क्षणिक विनोद में दूसरों का कितना विनाश छिपा हुआ है, मानो इसी दुख से दुखी होकर सूर्य की किरणों से प्रतिविम्बित होकर लाल-लाल दिखाई देने वाले ओस-बिन्दु रूपी आँसू दुखिनी लताओं की आँखों में भर आए हों । भाव यह है कि लताओं पर ओस की बूंदें पड़ी हुई हैं जो प्रात:कालीन सूर्य की लाल किरणों से प्रतिबिम्वित होकर लाल दिखाई दे रही हैं । ऊर्मिला कहती है कि ये ओस की बूंदें नहीं हैं, वरन् फूलों के टूटने के दुःख से दुखी होकर ये लताएँ खून के आँसू बहा रही हैं । लेकिन नहीं, इन सब फूलों को सहर्ष चुन ले जो खिले हुए हैं और जिनके रूप, गुण, गन्ध तेरे मन को अच्छे लगते हैं । क्योंकि बेल ने अपने इन फूल-रूपी पुत्रों को झड़ने के लिए नहीं उत्पन्न किया, वरन् गौरव के साथ देवताओं के सिर पर चढ़ने के लिए उत्पन्न किया है ।

विशेष—इन पंक्तियों में ऊर्मिला की करुण-भावना का मार्मिक चित्रण है । 'कितना विनाश निज क्षणिक विनोद में है ।' इस वाक्य से उसकी अपार करुण-भावना ही साकार हो उठी है ।

अलंकार—१. 'छोड़, छोड़, फूल मत तोड़' में 'छोड़' शब्द की आवृत्ति करुण भावना के आवेश को व्यक्त करती है, अत: वीप्सा अलंकार ।

२. 'हाथ लगते ही यह कैसे कुम्हलाये हैं' में कार्य और कारण का एक साथ वर्णन होने से अक्रमातिशयोक्ति अलंकार ।

३. 'दुःखिनी लता के लाल आँसुओं से छाए हैं' में उपमेयलुप्ता उपमा अलंकार ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

४. 'जाये नहीं लाल' में केवल उपमान 'लाल' का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार

कैसी हिलती............मिलने की !

शब्दार्थ—हिलती-डुलती—चंचल। मिलती-जुलती—समान। उच्चाशा—प्रबल इच्छा।

अर्थ—कली को सम्बोधित करती हुई विरह-व्यथिता ऊर्मिला कहती है कि हे कलि ! जैसी चंचल अभिलाषा तुझे खिलने की है, वैसी ही प्रबल इच्छा मुझे अपने प्रियतम से मिलने की है।

विशेष—ये पंक्तियाँ स्पष्टतः चमत्कार प्रधान हैं।

अलंकार—१. दोनों वाक्यों के अर्थ में विम्ब-प्रतिविम्व भाव से समानता होने के कारण दृष्टांत अलंकार।

२. अनेक शब्दों का उसी क्रम से प्रयोग होने के कारण चित्रालंकार।

मान छोड़ दे............धूलि भरी !

शब्दार्थ—मान—रूठना। वेला—समय। कहाँ धरी—नहीं आएगी। सहृदयता—प्रेम-भावना। धूलि—दोष।

अर्थ—कली को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे कलि ! तू मेरा कहना मान और अपने प्रियतम भँवरे से रूठना छोड़ दे। भौंरा तुझसे मिलने के लिए आया है, अतः तू हँसकर उसे अपने बाहुपाश में बाँध, क्योंकि मिलन का यह अवसर बीत जाने पर फिर नहीं आएगा। (कली हवा के झोंके से हिलती है जो ऐसी प्रतीत होती है मानो वह सिर हिलाकर अपनी अस्वीकृति दे रही हो। इस भाव को ग्रहण करके ऊर्मिला कहती है कि) हे कली ! झोंकों के बहकाए में आकर प्रियतम से मिलने की अस्वीकृति सिर हिलाकर न दे। अच्छा यही है कि तू अपनी प्रेम-भावना को सदा हरी-भरी बनाए रख और प्रेमपूर्वक अपने प्रियतम से मिलती रह। यदि तेरे अन्दर कोई दोष है तो उसको भी न छिपा, अर्थात् अपना हृदय खोलकर प्रियतम के सामने रख दे ताकि वह तेरे हृदय में भरी हुई पराग-रूपी धूलि को भी देख सके।

विशेष—कली के माध्यम से ऊर्मिला ने अपने प्रियतम के प्रति अपनी अगाध निष्ठा व्यक्त की है।

अलंकार—१. 'मान छोड़ दे मान अरी' में 'मान' शब्द का भिन्नार्थक प्रयोग होने से यमक अलंकार।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

२. 'कली, अली, आया, हंसकर ले' में केवल उपमान का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

भिन्न भी..............सदा !

शब्दार्थ—भिन्न—पृथक्, अप्रिय। भाव-भंगी—व्यवहार। रूप-सम्पदा—सुन्दर वस्तु। आमोदप्रद—प्रसन्नता देने वाला।

अर्थ—खिले हुए फूल की शोभा पर मुग्ध होकर विरह-व्यथिता ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! सुन्दर वस्तु अप्रिय व्यवहार वाली होने पर भी सुन्दर ही लगती है, जैसे पराग रूपी धूल उड़ाकर भी फूल सदैव प्रसन्नता देने वाला होता है।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने सार्वभौमिक सत्य की अभिव्यक्ति की है।

अलंकार—सामान्य कथन का विशेष कथन से समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार।

फूल, रूप-गुण..............आसन छोड़।

शब्दार्थ—जोड़—समता। आसन—स्थान।

अर्थ—फूलों को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे फूल! यद्यपि तू अपने रूप और गुण में अद्वितीय है, तेरी कोई समता नहीं कर सकता, तथापि फल के लिए तुझे अपना स्थान छोड़ ही देना चाहिये।

भाव यह है कि एक के विनाश में दूसरे का विकास छिपा होता है। इसीलिए दूसरे के विकास के लिए स्वयं को नष्ट करना परम पुरुषार्थ है।

विशेष—यही भाव अंग्रेजी के कवि टेनीसन ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

'Old order changeth yielding place to new.'

सखि..............रंग-स्थलियाँ।

शब्दार्थ—झुका-मुकी में—अनजाने में। पचें—मिट कर समाना। रंग-स्थलियाँ—आनन्द-क्रीड़ा करने के स्थान।

अर्थ—बिखरी कलियों को देखकर विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! देखो, ये कलियाँ विरह-व्यथा के कारण बिखर कर झड़ गई हैं। न जाने इनका प्रियतम (पवन) इनसे रंगरलियाँ करके और इन्हें छोड़कर न जाने ही कहाँ चला गया है। भाव यह है कि जिस पवन ने इनके साथ आनन्द-क्रीड़ाएँ की थीं, वह निष्ठुर इन्हें धोखा देकर चला गया है। अब इन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

गलियों में वह पवन फिर कभी नहीं आएगा। ये कलियाँ उन्हीं स्थानों में, जहाँ इन्होंने अपने प्रियतम के साथ आनन्द-क्रीड़ाएँ की थीं; बिखर कर समा रही हैं। यही इनके लिए बहुत है, क्योंकि इससे अधिक ये कर भी कुछ नहीं सकती हैं।

विशेष—इन पंक्तियों में ऊर्मिला ने प्रियतम की निष्ठुरता की ओर संकेत किया है। यह संकेत उसके क्षणिक आवेश के कारण ही है। इसे उसका सिद्धांत नहीं समझ लेना चाहिये, क्योंकि ऊर्मिला आदर्श पत्नी है।

अलंकार—'भुला सकेगी पुनः पवन को इनकी गलियाँ' में काकु-ध्वनि के कारण अर्थ-परिवर्तन होने से काकुवक्रोक्ति अलंकार।

कह कथा...............त्राण से।

शब्दार्थ—घ्राण—(१) नासिका, (२) फूल का मध्य भाग। मधु-सौरभ—पराग और सुगंधि। प्राण-से—प्राणों की भाँति। त्राण—रक्षा।

अर्थ—ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि जिस प्रकार किसी व्यक्ति के प्राण जीवन की नश्वरता की कथा कह कर नासिका के द्वारा निकल जाते हैं उसी-प्रकार पुष्प का पराग और उसकी सुगंधि पुष्प के मध्य भाग से उसकी नश्वरता बताकर समाप्त हो जाते हैं। यद्यपि पुष्प समाप्त हो जाते हैं, तथापि वे अपना बीज छोड़ जाते हैं जिनसे हमको तुमको अर्थात् सभी को फल मिलते हैं। अतः यदि हम निरन्तर फल प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें बीजों की रक्षा करनी चाहिए।

भाव यह है कि जीवन नश्वर है, किन्तु इसके द्वारा अर्जित कर्मों की शृङ्खला शाश्वत है। व्यक्ति को जीवन के सुख का उपभोग करने के लिए सदैव अच्छे कर्म ही करने चाहिएँ और अच्छे कर्मों की ही रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि सत्कर्मों से ही सत्कर्मों की उत्पत्ति होती है।

विशेष—सरलतम शब्दों में दर्शन के गूढ़ सिद्धांत की अभिव्यक्ति इन पंक्तियों की प्रमुखतम विशेषता है।

अलंकार—'उड़ गए मधु-सौरभ-प्राण से' में उपमा अलंकार।

उठती है.....................कौन कूक ?

शब्दार्थ—हूक—दर्द। दारुण—मर्मान्तक। गभीर—गंभीर। सनीर—आँसुओं से पूर्ण। लूक—आग की लपट।

अर्थ—कोयल को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

कोयल ! यह तुम्हारी कूक कैसी है जिसको सुनकर हृदय में हूक उठ ती है, प्रियतम की याद आने के कारण मन में असह्य वेदना जाग जाती है। म्हारी कूक अत्यंत करुणा से भरी हुई, मर्मान्तक और गम्भीर है जो ऐसी तीत होती है मानो आकाश के हृदय को चीर कर निकली हो। तुम्हारी कूक सुनकर मेरे दोनों नेत्र विरहजन्य वेदना के सजग हो जाने के कारण आँसुओं भर गए हैं। क्योंकि तुम्हारे गीत की मधुर लय आग की लपट के समान दायी लगती है। हे कोयल ! तुम्हारी यह कूक भी कितनी दर्द भरी है।

विशेष—कोयल की कूक को उद्दीपन विभाव माना गया है और विरह न के अन्तर्गत इसका वर्णन काव्य-शास्त्र की परम्परा है। इस गीत में कवि इसी परम्परा का पालन किया है।

अलंकार—१. 'निकली है नभ का चित्त चीर' में एक वस्तु के स्थान पर री वस्तु की सम्भावना होने से वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

२. 'लय की लूक' विरोधाभास अलंकार।

तेरे क्रन्दन............कूक ?

शब्दार्थ—क्रन्दन—व्यथा से रोना। कुटिल—दुष्ट। चतुर—यहाँ पर क्षणा शब्द शक्ति से इसका अर्थ है, मूर्ख।

अर्थ—कोयल को सम्बोधित करती हुई विरहिणी उर्मिला कहती है कि कोयल ! अपनी व्यथा से व्यथित होकर तू रोती है और संसार के लोग को मधुर गीत समझकर उसमें आनन्द लेते हैं। भला संसार के चतुर मनुष्य में महान् रस लेने से क्यों चूक जाएँ ?

भाव यह है कि संसार में ऐसे निष्ठुर और मूर्ख लोग रहते हैं जो दूसरे वेदना को कम ही समझ पाते हैं, वरन् उससे मनोविनोद करते हैं।

विशेष—१. 'जग के कुटिल कान' में लक्षणा शब्द-शक्ति है।

२. ऐसा ही भाव रहीम कवि के इस दोहे का भी है—

'रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।
सुनि इठलैहैं लोग सब, बाँट सकै नहीं कोय॥'

अलंकार—१. 'लेने में ऐसा रस महान, हम चतुर करें किस भाँति चूक' कारान्तर से अभीष्टार्थ की अभिव्यक्ति होने से पर्यायोक्ति अलंकार।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

री, आवेगा..........कौन कूक ?

शब्दार्थ—दुर्दिन—बुरे दिन। मूक—चुप।

अर्थ—ऊर्मिला कोयल को समझाती हुई कहती है कि हे कोयल ! तुम्हारी वेदना से जग के लोग सहानुभूति न करके विनोद करते हैं, इसलिए तुम्हें अपनी वेदना को अपने हृदय में ही दबाकर रखना चाहिए और आशा करनी चाहिए कि जैसे मेरे प्रेमी प्रियतम एक-न-एक दिन आएँगे उसी प्रकार तुम्हारा प्रिय वसन्त भी लौट कर आ जाएगा, क्योंकि दुखों का एक-न-एक दिन अन्त होना अवश्यम्भावी है। इसलिए बुरे समय में अपनी व्यथा को अपने ही हृदय में छिपाकर चुप हो जाना चाहिए। तुम्हारी यह कूक तुम्हारा कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं करती।

विशेष—१. इन पंक्तियों में एक सार्वभौमिक सत्य की अभिव्यक्ति कि संसार में दुःख भी नश्वर है, अत्यन्त सरस शैली में हुई है।

२. 'हो रहिए दुर्दिन देख मूक' में रहीम के निम्नलिखित दोहे का प्रभाव परिलक्षित होता है—

'रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देख दिननि को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहैं बेर॥'

अरे एक मन..........दो दिया !

शब्दार्थ—भरम—भ्रम, भेद।

अर्थ—अपने मन को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे मन ! तू तो एक था इसलिए तुझे रोक थाम लिया और इस प्रकार अपने मन का भेद प्रकट होने नहीं दिया। लेकिन इन दोनों नेत्रों ने रोकर तो मेरे शोक का कारण और मेरे मन का भेद सभी कुछ खोल दिया है।

भाव यह है कि मन पर पूरी तरह से संयम करने के बावजूद भी आँखों से आँसू न रुक सके। इससे विरह-वेदना का आधिक्य व्यंजित होता है।

विशेष—रहीम के निम्नलिखित दोहे में भी इसी भाव की अभिव्यक्ति हुई है—

'रहिमन अंसुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेय।
जाहि निकारौ गेह ते, कस न भेद कहि देय॥'

हे मानस..........तुम्हें पहचाने ?

शब्दार्थ—मानस—(१) मानसरोवर, (२) हृदय। मोती—(१) मोती

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

(२) आँसू। गहन—वन।

अर्थ—अपने आँसुओं को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि जिस प्रकार मानसरोवर के मोती उसके वैभव को प्रकट करने वाले होते हैं, उसी प्रकार तुम मेरे पति-प्रेम को प्रकट करने वाले हो। लेकिन यह तो बताओ कि तुम बिना कुछ जाने ढलक कर कहाँ जा रहे हो, यदि तुम प्रियतम के पास जाना चाहते हो तो वे तो दूर किसी वन में होंगे। जहाँ तक तुम्हारी पहुंच नहीं है। यदि तुम मार्ग के बीच में किसी से सहायता लेना भी चाहोगे तो तुम्हें कोई सहायता भी नहीं देगा, क्योंकि तुम सबके लिए अपरिचित हो, कोई तुम्हें नहीं जानता। इसलिए तुम्हारा आँखों से छलकना बेकार है।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि की कल्पना अत्यंत सरस एवं प्रभावशाली है।

अलंकार—'मानस के मोती' में 'मानस' और 'मोती' शब्दों के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

न जा........दुकूल में।

शब्दार्थ—अधीर—आकुल। दृगम्बु—आँसू। दुकूल—अँचल। मूल—(१) हृदय, (२) जड़।

अर्थ—अपने आँसुओं को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे व्याकुल आँसू! तुम धूल में मत मिलो, बल्कि मेरे अंचल में आ जाओ। भाव यह है कि तुम अपने को महत्त्वहीन मत समझो। यह सच है कि तुम्हारे विविध रूप विविध भावों के द्योतक होते हैं। मेरे और लता के मूल में यद्यपि एक ही पानी है, फिर भी दोनों की स्थितियाँ और परिणाम भिन्न-भिन्न हैं। जो पानी मेरी आँखों में आकर मेरे विरह-दुख को व्यक्त करने के कारण दुखात्मक है, वही पानी लता की जड़ में पहुंच कर फूलों को जन्म देता है। इस-लिए हे आंसू! तुम तिरस्कार योग्य नहीं हो, वरन् आदरणीय हो। इसीलिए मेरे अंचल में आ जाओ।

विशेष—कवि की कल्पना अत्यंत भावप्रवणा है।

अलंकार—वक्तव्य का सकारण वर्णन होने से काव्यलिंग अलंकार।

फूल और आँसू........दुकूल में।

शब्दार्थ—हूल—कसक, पीड़ा। सूत्र—डोरा। सूची—सुई। अनी—नोक। शूल—काँटा, पीड़ा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अर्थ—आँसुओं के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपने आँसुओं को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे आँसू ! तुम में और फूल में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि दोनों ही हृदय की पीड़ा से उत्पन्न होते हैं (कवि की कल्पना यह है कि फूल मानो लता की हृदयस्थ-वेदना का परिणाम है) । जिस प्रकार सुई डोरे से फूलों को गूँथ कर माला बनाती है, उसी प्रकार विरह-वेदना की नोक से मिलन-आशाओं की माला गूँथी जाती है । इस दृष्टि से तुम में और फूल में कोई अन्तर नहीं है । अतः हे दृगम्बु ! तुम अधीर होकर धूल में न मिलो, वरन् मेरे अंचल में आ जाओ ।

विशेष—इन पंक्तियों में विरह की महत्ता का वर्णन किया गया है ।

अलंकार—वक्तव्य का सकारण वर्णन होने से काव्यलिंग अलंकार ।

मधु हँसने में..............दुकूल में ।

शब्दार्थ—मधु—मधुरता । लवण—दुख । मौज—लहर । किंवा—अथवा । कूल—किनारा ।

अर्थ—जीवन के मध्यम मार्ग को ग्राह्य बताती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपने आँसुओं को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे आँसू ! हंसने में मधुरता होती है और रोने में दुःख होता है । किन्तु यह निश्चित बात है कि न केवल हँसना ही और न केवल रोना ही जीवन के सुख-दुख के कारण हैं, वरन् इन दोनों की मध्य स्थिति ही जीवन की वास्तविकता है और यही वास्तविकता सुख का कारण होती है । लहर मँझधार में होती है अथवा किनारे में ? यह प्रश्न इस प्रसंग में आ जाना स्वाभाविक ही है । जैसे लहर की महत्ता एवं सार्थकता मँझधार के बीच में उसी प्रकार जीवन की शक्ति सुख और दुख दोनों के मध्य में है इसलिए हे आँसू ! तुम मेरे अंचल में आ जाओ ।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने जीवन में मध्यमार्ग को ही सुख का मूल कारण बताया है । निम्नलिखित पंक्तियों में प्रसाद जी ने भी यही भाव व्यक्त किया है—

'छोड़ कर जीवन के अतिवाद,
मध्यपथ से लो सुगति सुधार ।'

अलंकार—'मौज किन्तु मंझधार के बीच है किंवा है वह कूल में ?' में संदेह अलंकार ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

नयनों को······बिन्दु ढोती है ?

शब्दार्थ—संकीर्ण—सीमित, अनुदार । पैठे हैं—छिपे हुए हैं । अधर-दसन—होठ और दाँत (ऊर्मिला के निरन्तर रोने के कारण उसकी आँखें लाल हो गई हैं जिन्हें कवि ने अधर माना है और आँख के भरे हुए आँसुओं की बूंदों को दाँत) ।

अर्थ—अपने मन को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे मन ! अपनी संकीर्णता के कारण नेत्र तो प्रियतम को नहीं देख पा रहे हैं। इसलिए ये रोते हैं और इनका रोना उचित भी है, क्योंकि अपनी संकीर्णता के कारण ये मेरे हृदय में बसे हुए प्रियतम को नहीं देख पाते । तुम इनकी तरह संकीर्ण मत बनो, क्योंकि तुम तो जानते हो कि प्रियतम मेरे हृदय में बैठे हुए हैं। वे भले ही आँखों से ओझल हो गए हैं, फिर भी स्मृति के रूप में वे निरन्तर मन में ही बसे रहते हैं ।

फिर आँख को सम्बोधित करती हुई ऊर्मिला कहती है कि हे आँख ! तू भी यह सच-सच बता कि तू हंसती है या सचमुच रोती है, क्योंकि तेरी लाल कोर-रूपी अधर में आँसू की बूंद-रूपी चमकते हुए दाँत तेरी हँसी को ही व्यक्त करते हैं। और अगर तू केवल इन आँसुओं की बूंदों का ही भार ढोती है तो तू वास्तव में रोती है, जो तेरे लिए उचित नहीं है ।

विशेष—प्रथम दो पंक्तियों में कवि की कल्पना सजग एवं सरस है, किन्तु अन्तिम दो पंक्तियों की कल्पना क्लिष्ट होते हुए भी प्रभावहीन है ।

अलंकार—आँखों की लालिमा और अश्रु-बिन्दुओं पर अधर तथा दशनों का अभेदारोप होने से रूपक अलंकार ।

बने रहो······क्रीड़ा-मीन ।

शब्दार्थ—मानसजल—(१) हृदयजल अर्थात् आँसू (२) मानसरोवर का जल । क्रीड़ा-मीन—आनन्द देने वाली मछली ।

अर्थ—अपने नेत्रों को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे मेरे नेत्र ! तुम मेरे आँसुओं में ही सदा डूबे रहो, क्योंकि जिस प्रकार अन्य लोग मानसरोवर के जल में क्रीड़ा करती हुई मछलियों को देखकर आनन्द लेते हैं, उसी प्रकार मेरे नेत्रों में मिलन के हर्ष-अश्रु देखकर प्रियतम प्रसन्न हुआ करते थे ।

विशेष—कवि की कल्पना सरस है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अलंकार—१. 'मानस जल' में 'मानस' के दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार। २. नेत्रों पर मीन का अभेदारोप होने से रूपक अलंकार।

सखे, जाओ........मोती !

शब्दार्थ—हँसकर—आनन्दपूर्वक, पूर्ण उपेक्षा करके। सुध—याद। साध्य—जिसकी प्राप्ति की जाये। अर्हनिशि—दिन-रात। आराध्य—देवता, जिसकी पूजा की जाये। साधिका—पुजारिन। अबाध्य—बाधा-रहित।

अर्थ—अपने प्रेम की दृढ़ता का वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपने प्रवासी प्रियतम को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे प्रिय ! चाहे तुम मेरी पूर्ण उपेक्षा करके भूल जाओ और आनन्दपूर्वक हँसते रहो, पर मैं तो तुम्हारी याद करके रोती ही रहूँगी। यदि तुम्हारे हँसने से फूल झरते हैं, स्वयं तथा दूसरों को आनन्द मिलता है तो मेरे रोने से जो आँसू निकलते हैं, वे भी मोतियों के समान वहुमूल्य हैं।

मैं यह मानती हूँ कि तुम मेरे साध्य हो, एकमात्र वह व्यक्ति हो जिसको मैं प्राप्त करना चाहती हूं, तुम ही मेरे लिए एकमात्र वह देवता हो जिसकी मैं दिन-रात पूजा करती हूं। मैं तुम्हारी पुजारिन तो हूँ, पर मेरी साधना अटल है। मैं चाहे जागती रहूँ या सोती रहूँ, किन्तु मेरी साधना हर स्थिति में ही बाधा-रहित बनी रहती है, अर्थात् किसी भी प्रकार की बाधा मुझे मेरी साधना से विचलित नहीं कर पाती। इसीलिए मैं तुझसे कम नहीं हूं। यदि तुम्हारे हँसने से फूल झरते हैं तो मेरे रोने से मोती बरसते हैं।

विशेष—इन पंक्तियों में ऊर्मिला का अचल प्रेम तथा अपनी साधना के प्रति अटल निष्ठा स्पष्ट है।

सफल हो...........मोती।

शब्दार्थ—निष्फल—फलहीन, व्यर्थ। अनुराग—प्रेम। साधना-भाग—साधना से परिपूर्ण जीवन। क्षुधा—भूख।

अर्थ—अपने प्रवासी प्रियतम को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे प्रियतम ! मेरी यह कामना है कि तुम्हारा वास्तविक त्याग सफल हो, मेरा प्रेम उसमें किसी भी प्रकार की बाधा न पहुंचाये, पर साथ यह भी इच्छा है कि मेरा प्रेम फलहीन न बन जाये, क्योंकि तुम्हारे त्याग का और मेरे प्रेम का सिद्धि और साधना का सम्बन्ध है। परन्तु मेरे लिए तो यह

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

साधनापूर्ण जीवन ही सिद्धि बन गया है, अर्थात् तुम्हारे विरह में मेरे लिए जीवित रहना ही कठिन हो गया है। जीवन का संघर्ष ही जीवन की गति है, क्योंकि यदि तुम्हारे हंसने में फूल झरते हैं तो मेरे रोने में आँसू बरसते हैं।

विशेष—ऊर्मिला की दृढ़ प्रेम-भावना और स्वाभिमान की भावना इन पंक्तियों में व्यक्त हुई है।

काल की रुके............मोती !

शब्दार्थ—काल—समय। लय—लीन होना, आत्मकेन्द्रित होना। प्रलय—भावनाओं का उद्वेलन। दर्शनार्थ—दर्शन करने के लिए।

अर्थ—मिलन की अपेक्षा विरह को अधिक महत्त्व देती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि भले ही समय की गति न रुके, अर्थात् मेरा यौवनपूर्ण जीवन निरन्तर ढलता हुआ चला जाये और भले ही तुम्हारा-मेरा मिलन न हो सके, पर इतना निश्चित रूप से स्वीकार किया जा सकता है कि संयोग की अपेक्षा वियोग का अधिक महत्त्व होता है, क्योंकि संयोगावस्था में मन प्रिय में लीन होने के कारण संकुचित और आत्मकेन्द्रित बना रहता है और वियोगावस्था में भावनाओं का उद्वेलन होने के कारण वह व्यापक बन जाता है। मैं विरह-व्यथा से व्यथित होकर रोती नहीं हूँ, वरन् तुम्हारे दर्शनों के लिए अपनी दृष्टि को धोकर उज्ज्वल बना रही हूँ। तुम हंसते रहो और मैं निरन्तर रोती रहूं, क्योंकि तुम्हारे हँसने में फूल झरते हैं और मेरे रोने में मोती झरते रहते हैं।

विशेष—आदिकाल से ही संयोग की अपेक्षा वियोग का अधिक महत्त्व माना जाता रहा है। यथा—

संगमविरहविकल्पे वरमिह विरहो न संगमस्तस्याः।
संगे सैव तथैका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे॥'

एक अंग्रेज कवि के अनुसार आँसुओं से भीगा हुआ प्रेम ही सुन्दरतम होता है—

'And love is the lovliest when emblamed in tears.

आदर्श विरहिणी ऊर्मिला द्वारा वियोग को अधिक महत्त्व देना स्वाभाविक ही है।

अलंकार—'दृष्टि मैं दर्शनार्थ धोती' में सत्य को छिपाकर उसके स्थान पर असत्य का आरोपन होने से-अपह्नुति अलंकार।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अर्थ, तुझे भी............निर्वाह ?

शब्दार्थ—अर्थ—(१) वाणी, (२) राज्य-वैभव । पद-प्राप्ति—(१) अभिव्यक्ति, (२) चरणों की प्राप्ति । जलते हृदय में—विरह-वेदना से दग्ध हृदय में ।

प्रथम अर्थ—विरहिणी की एक विवशता यह भी होती है कि वह अपनी विरह-वेदना को दबा नहीं पाती । इसी विवशता की ओर संकेत करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी वाणी को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे वाणी ! क्या तुझे भी अभिव्यक्ति की इच्छा हो रही है ? अर्थात् तू भी मेरा साथ नहीं देती, वरन् तू भी फूटकर मेरे रहस्य को प्रकट कर देना चाहती है । क्या विरह-वेदना से जलते हुए मेरे हृदय में अब तेरा और अधिक निर्वाह नहीं हो सकता ?

भाव यह है कि वह अपनी वेदना को छिपाकर भी तो नहीं रख पाती । वह भी अधिकता के कारण बरबस ही फूट निकलने का प्रयास करती है । इस कथन से ऊर्मिला की वेदना का आधिक्य व्यंजित होता है ।

द्वितीय अर्थ—हे अयोध्या के राज्य-वैभव ! क्या तुझे भी मेरे प्रियतम की भाँति राम के चरणों की प्राप्ति की इच्छा हो रही है ? अर्थात् तू भी मेरे प्रियतम की भाँति स्वयं को राम-चरणों में अर्पित करना चाहता है । क्या तेरे इस दुखी हृदय को और कहीं आश्रय नहीं मिल सकता ? कहने का भाव यह है कि राम के चरण ही वह आश्रय-स्थल है, जहाँ तुझे शांति मिल सकती है ।

विशेष—इस छन्द में प्रयुक्त 'भी' शब्द के आधार पर डॉ० कन्हैयालाल सहल ने इसका विश्लेषण इन शब्दों में किया है—

'अर्थ को तो शब्द का अर्थ लेना ही पड़ता है, किन्तु हे मेरे अर्थ ! (मेरे हृदय के मनोरथ !) यह कैसी बात है कि तू भी पद-प्राप्ति (शब्द द्वारा अभिव्यक्ति अथवा प्रिय-चरण सामीप्य) की चाह करने लगा । हे मेरे मन के अभिलाष ! तू तो मन में ही निहित रहता तो अच्छा था । किन्तु जान पड़ता है, हृदय की बात को प्रकट किये विना गुज़ारा नहीं ।'

अलंकार—'अर्थ' और 'पद-प्राप्ति' शब्दों के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार ।

२. काकु-ध्वनि से अर्थ में परिवर्तन होने से काकुवक्रोक्ति अलंकार ।

स्वजनि, रोता है......मेरा गान ।

शब्दार्थ—स्वजनि—हे सखि । झिलना—सहन करना । जंजाल—दुख,

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant

वेदना। आलाप-विलाप—गाना और रोना।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! मेरी व्यथा इतनी अधिक है कि मेरे गीत में भी मेरा रुदन ही व्यक्त होता है और मेरे प्रियतम तक उस गीत की कोई तान भी नहीं पहुँच पाती। भाव यह है कि मैं इतनी हतभागिनी हूँ कि एक तो मेरा गीत ही मेरी वेदना से भरा हुआ है और फिर उसकी तान प्रियतम तक भी नहीं पहुँच पाती, जिसके कारण वे मुझे भूले ही बैठे हैं। ऐसा लगता है कि हृदय की वेदना से युक्त स्वरों को पवन सहन नहीं कर पाता, इसीलिए मेरे सभी स्वर और सभी ताल शून्य में बिखर कर ही नष्ट हो जाते हैं। और मेरे गीतों की तान मेरे प्रियतम तक नहीं पहुँच पाती, फलतः मेरे गीत भी विफल ही रह जाते हैं तथा रोदन भी विफल ही रह जाता है।

भाव यह है कि मेरी स्थिति ऐसी द्विविधामयी है कि आनंद मे भरकर न तो मैं गा ही सकती हूँ और विरह-व्यथा के कारण न रो ही सकती हूँ। हे सखि! मेरे गीत में वेदना के स्वर मिले रहते हैं।

विशेष—१. वेदना और गीत का अटूट सम्बन्ध है, क्योंकि वेदना से ही गीत की उत्पत्ति होती हैं। इसी भाव की अभिव्यक्ति पंतजी ने इस प्रकार की है—

'वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान;
निकल कर नयनों से चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान।'

मैथिलीशरण गुप्त ने भी इस सर्ग के प्रारम्भ में ऊर्मिला की विरह-व्यथा की महत्ता का वर्णन करके इसी भाव के प्रति अपनी मान्यता प्रकट की है—

'उस रुदंती विरहिणी के रुदन-रस के लेप से,
और पाकर ताप उसके प्रिय-विरह-विक्षेप से;
वर्ण-वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के,
क्यों न बनते कविजनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के ?'

१. 'झिलता नहीं समीर पर' में 'झिलता' शब्द ग्रामीण प्रयोग है।

अलंकार—१. 'झिलता नहीं............स्वर-ताल' में अहेतु में हेतु की कल्पना होने से हेतूत्प्रेक्षा अलंकार।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

२. 'आलाप-विलाप' में स्वरों और व्यजनों की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास अलंकार।

उड़ने को है·········मेरा गान।

शब्दार्थ—उड़ने को—बरबस फूट पड़ने को। भावानन्द—भावों का आनन्द, भावों का आनन्दजन्य आवेग। पुचकार कर—बहका कर। फुसलाते हैं—बंधन में बाँधते हैं। छंद—(१) वश्यता, मर्यादा आदि की अधीनता, (२) छंद। पद-गौरव—(१) सामाजिक महत्त्व, (२) वाक्य का महत्त्व।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! मेरे भावों का आनन्दजन्य आवेग बरबस फूट पड़ने के लिए छटपटाता है, पर मेरी मर्यादा आदि की अधीनता उन्हें बहका कर और मुझे सामाजिक पद के गौरव की याद दिलाकर बंधन में बाँधकर उसी प्रकार व्यर्थ बना देती है जिस प्रकार बरबस मुक्त छंद में फूट पड़ने वाले भावों को छंद वाक्य का गौरव याद दिलाकर अपने बंधन में बाँध लेते हैं, उन्हें व्यक्त नहीं होने देते।

भाव यह है कि जैसे कवि के हृदयस्थ भाव जब आवेश में आकर बरबस फूटना चाहते हैं, तब छंद के बंधन उन्हें व्यक्त नहीं होने देते, उनकी सहज अभिव्यक्ति में बाधक बन जाते हैं, उसी प्रकार जब मैं अपने भावों को व्यक्त करने के लिए आतुर हो उठती हूँ तो यह सोचकर कि मैं एक उच्च राजकुल की वधू हूँ, मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए, अपने भावों को बलात् दबा लेती हूँ।

भाव यह है कि मेरी स्थिति इतनी दयनीय है कि मैं अपने भावों को भी तो व्यक्त नहीं कर सकती।

विशेष—मुक्तछंद कविता छायावादी तथा प्रयोगवादी काव्यधाराओं की प्रमुख विशेषता मानी जाती है। कविवर पंत ने छंदों को कविता के 'रजत-पाश' कहा है जिनसे मुक्त होकर ही वाणी अनायास रूप में बहती है—

'खुल गये छंद के बंध प्रास के रजत-पाश।'

'निराला' ने मुक्तक छंद के विषय में अपना मंतव्य इन शब्दों में व्यक्त किया है—

'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह भी दूसरे के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

लिए होते हैं, फिर भी स्वतन्त्र; इसी तरह कविता का भी हाल है। मुक्त काव्य कभी भी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता, किन्तु उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण की मूल होती है।'

गुप्त जी ने भी उपर्युक्त पंक्तियों में इसी प्रकार मुक्त छंद का समर्थन किया है। इनसे इनकी काव्य-शास्त्रीय दो मान्याताएँ स्पष्ट हैं—

(क) भावावेश में भावों की सहज अभिव्यक्ति काव्य है।

(ख) छंद सहजाभिव्यक्ति में बाधक होते हैं।

अलंकार—'छंद' और 'पद-गौरव' के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

अपना पानी·········मेरा गान।

शब्दार्थ—पानी—आँसू। जना देते हैं—बता देते हैं, प्रकट कर देते हैं।

अर्थ— विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! विपत्ति में अपने भी पराए हो जाते हैं। अपना आँसू भी अपनी मर्यादा की रक्षा नहीं कर पाता, अर्थात् मेरे हृदय के भावों को ढलक कर सब पर प्रकट कर रहा है। और अपनी ही आँखें उन आँसुओं को रात-दिन बहा कर मेरे प्रेम-रहस्य को प्रकट कर रही हैं। सभी अपरिचित लोगों को ये मेरा रहस्य बता देते हैं। हे सखि ! मेरे गीत में मेरी करुण भावना छिपी हुई है।

विशेष—कवि की कल्पना अत्यन्त भाव-प्रवणा है।

अलंकार—'जना देते हैं सभी अजान' में अर्थ में विरोध का आभास होने से विरोधाभास अलंकार।

दुख भी·········मेरा गान।

शब्दार्थ—विमुख हो—रूठ कर। प्रयाण—चले जाना।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! मुझे भय है कि कहीं दुख भी मुझ से रूठ कर न चला जाए और फिर मैं जीवित भी न रह सकूं। क्योंकि आज मेरे थोड़े से प्राण दुख में ही अटके हुए हैं, अर्थात् प्रियतम के लिये दुःखों को सहन करके जीवित रहना मैं प्रेम का आदर्श मानती हूँ और इसी आदर्श की रक्षा के लिए मैं जीवित हूँ, अतः दुखों को सम्बोधित करती हुई वह कहती है कि हे दुःख ! मेरे विरह में तू निरन्तर बना रह ताकि मैं जीवित रह कर आदर्श प्रेम की रक्षा कर सकूं। हे सखि ! मेरे गीत में मेरी करुणा छिपी हुई है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

विशेष—इन पंक्तियों में कवि की उत्कृष्ट कल्पना परिलक्षित होती है। ऐसी ही कल्पना बिहारी के निम्नलिखित दोहे में भी मिलती है—

'अपनी गरजनु बोलियतु, कहा निहोरी तोंहि।
तू प्यारौ मो जीय को, मो जिय प्यारौ मोंहि॥'

अर्थात् मैं तुमसे अपने ही स्वार्थ के कारण बोलती हूं, इसमें मैं तुम पर कोई एहसान नहीं करती; क्योंकि तुम मेरे प्राणों के प्यारे हो और मुझे अपने प्राण प्यारे लगते हैं।

यही आता है........मन में।

शब्दार्थ—धाम-धन—राजमहल। समाधान—हल।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! मेरे इस व्यथित मन में यही आता है कि मैं भी राजमहल को छोड़ कर उसी वन में चली आऊँ जहाँ मेरे प्रियतम रह रहे हैं। वहाँ जाकर मैं प्रिय के व्रत में विघ्न न डालूँ, बल्कि उनके निकट रह कर भी उनसे दूर बनी रहूँ। मेरी व्यथा बनी रहे, किन्तु कभी-कभी छिप कर उनके दर्शन करके अपनी व्यथा का पूर्ण समाधान कर लिया करूँ। मेरा हर्ष मेरे रुदन में डूबा हुआ हो, अर्थात् प्रियतम के समीप रहने का अर्थ और उनसे दूर रहने का दुख दोनों बने रहें। मेरे मन में यही बात आती है।

विशेष—१. अपने प्रियतम के प्रति ऊर्मिला का आदर्श प्रेम स्पष्ट है।

अलंकार—'इस मन में', 'उसी वन में' में 'इस' और 'उसी' विशेष्यों का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार।

२. 'रहूँ निकट भी दूर' में अर्थ में विरोध का आभास होने से विरोधाभास अलंकार।

बीच बीच में.........इस मन में।

शब्दार्थ—रत—तल्लीन। साधन—साधना।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! वन में जाकर मैं प्रियतम के पास रहूँ, लेकिन झुरमुट की ओट ले करके बीच-बीच में उन्हें देखती रहूँ, और जब वे उस मार्ग से निकल जायें तो मैं उनकी धूल में प्रसन्नता से लोट-पोट हो जाऊँ। स्पष्ट रूप से उनसे इसलिए नहीं मिलना चाहती कि कहीं उनकी साधना में बाधा न पड़ जाए। क्योंकि मैं चाहती हूँ कि उनकी साधना निर्बाध रूप से चलती रहे। मेरे मन में यही बात आती है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

विशेष—अपने प्रियतम के प्रति ऊर्मिला के आदर्श प्रेम की अभिव्यक्ति है।

अलंकार—'लेटूँ उसी धूल में लोट' में पुनरुक्तवदाभास अलंकार।

जाती-जाती........इस मन में।

शब्दार्थ—उत्पात—अनुचित कार्य।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! मैं इस संसार से जाती हुई और प्रसन्नता से गाती हुई सब लोगों से यह बात कह जाऊँगी कि कोई भी आदमी धन के लिए इस संसार में ऐसा अनुचित कार्य न करे, जैसा कैकेयी ने किया है और जीवन में निश्चित रूप से प्रेम की ही जीत होती है। मेरे मन में यही बात आती है।

अलंकार—'जाती-जाती गाती-गाती' में पुनरुक्ति अलंकार।

अब जो प्रियतम........हाहा खाऊँ ?

शब्दार्थ—रज—धूल। ऊषा-सी—ऊषा के समान नवीन कांति एवं स्फूर्ति से पूर्ण संध्या-सी—सायंकाल के समान उदास और निराश। श्रांत—थका हुआ। सुरभि—सुगंधि। अनल—आग। वाष्प—भाप। घट—हृदय। हाहा खाऊँ—हाहा खाना, याचना करना।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! यदि अब मेरी अपने प्रियतम से भेंट हो जाये तो मेरी यही इच्छा है कि मैं स्वयं ही उनके चरणों की धूल में समा जाऊँ।

यह सत्य है कि वे चौदह वर्षों के पश्चात् ही बन से यहाँ पर लौट सकेंगे, पर यदि मैं किसी प्रकार से यह अवधि बन जाऊँ तो उन्हें यहाँ लौटा लाने के लिए शीघ्र ही स्वयं को मिटा दूँ। इस प्रकार उनकी अवधि की सत्ता भी समाप्त हो जायेगी और वे जल्दी ही बन से लौट आयेंगे।

हे सखि! इस संसार में जिस प्रकार ऊषा नवीन कांति और स्फूर्ति को लेकर आती है, उसी प्रकार मैं भी इस राजमहल में अनेक सुनहली आशाओं को लेकर आई थी। अब यह उचित भी तो नहीं कि संध्याकाल की भाँति दुखमयी निराशा तथा उदासी को सँजोकर मैं यहाँ से जाऊँ, अपना प्राणांत करूँ।

मेरी इच्छा है कि यदि मेरे प्रियतम पवन के समान थके हुए आयें तो मैं उसी प्रकार उनमें नवीन जीवन भरूँ, जिस प्रकार पवन में पुष्प-सुगंधि भर देती है। मेरा रोदन मचल कर मुझसे यह आग्रह कर रहा है कि मैं कुछ गाऊँ। भाव यह है कि प्रियतम के विरह के कारण और उनके मिलन की सुनहली

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

आशा के कारण मेरी दशा द्विविधामयी बनी हुई है। विरहजन्य दुख से मैं रोना चाहती हूँ और मिलन-आशा से हर्ष में कुछ गाना चाहती हूँ पर मैं न तो रो पा रही हूं और न गा पा रही हूँ, क्योंकि मेरा गीत कहता है कि यदि रोदन आवे तो मैं भी आऊँ।

मेरे एक ओर आँसुओं का जल है और दूसरी ओर विरह की आग। समझ में नहीं आता कि किधर जाऊँ—आँसुओं में ही डूबी रहूँ या विरह की आग में ही जलती रहूं। मुझे भय है कि जिस प्रकार जल और आग के मिलन से बनी हुई भाप घड़े को फोड़ देती है, उसी प्रकार कहीं आँसू और विरह-दुख के कारण मेरा हृदय ही न फट जाये। हे सखि! तुम्हीं बताओ कि ऐसी विषम स्थिति में मैं किसके सामने अपने जीवन की याचना करूँ, क्योंकि अब तो यहाँ मेरा वह प्रियतम भी नहीं है जो मेरे जीवन का आधार है और जिससे मैं अपने जीवन की भीख माँग सकती हूँ।

विशेष—१. इस पद में ऊर्मिला का विरहजन्य दुख तथा उसका आदर्श प्रेम, इन दोनों भावों की अत्यंत सरस एवं प्रभावशाली रीति से अभिव्यक्ति हुई है।

२. अपने इन्दौर वाले भाषण में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'आप अवधि बन सकूं कहीं तो क्या कुछ देर लगाऊं, मैं अपने को आप मिटाकर जाकर उनको लाऊं' का उदाहरण देते हुए काव्यत्व का अधिवास अभिधा शब्द-शक्ति में माना था। डा० नगेन्द्र ने आचार्य शुक्ल के मन्तव्यों का खंडन करते हुए इन वाक्यों का विश्लेषण इन शब्दों में किया है—

ऊर्मिला और लक्ष्मण के बीच अवधि का व्यवधान है। मिलने के लिए इस व्यवधान अर्थात् अवधि को मिटाना आवश्यक है। अवधि साधारणतः तो अपने समय पर ही मिटेगी, तुरन्त मिटना उसका सम्भव नहीं। ऊर्मिला उसके एक उपाय की कल्पना करती है—वह स्वयं यदि अवधि बन जाए तो उसका अन्त करना उसके अपने अधिकार की बात हो जाए। अपने को वह तुरन्त मिटा ही सकती है और जब अवधि उसका अपना रूप ही बन जाएगी, तो उसके अन्त के साथ अवधि का अन्त भी हो जाएगा। इस तरह व्यवधान मिट जाएगा और लक्ष्मण से मिलन हो जाएगा। परन्तु जब ऊर्मिला ही मिट जाएगी तो फिर मिलन-सुख का भोक्ता कौन-कौन होगा; अतएव अपने को मिटाने का अर्थ यहाँ अपने जीवन का अन्त कर लेना न होकर लक्ष्मण की सहायता से 'बड़े से बड़ा कष्ट भोगना या बड़े से बड़ा बलिदान करना' आदि ही हो सकता

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

है। परन्तु यह लक्ष्यार्थ देने पर तो इस उक्ति में कोई चमत्कार नहीं रह जाता। चमत्कार तो अर्थ की बाह्य अनुपपन्नता परन्तु आन्तरिक उपपन्नता के विरोधाभास में है। किन्तु क्या इस उक्ति की रमणीयता इसी चमत्कार तक सीमित है? वास्तव में बात इतनी नहीं है, जैसा कि शुक्ल जी ने स्वयं लिखा है, इससे ऊर्मिला का 'अत्यन्त औत्सुक्य' व्यंजित होता है। इस 'अत्यन्त औत्सुक्य' की व्यंजना ही उक्ति की रमणीयता का कारण है— यही पाठक के मन का इस 'अत्यन्त औत्सुक्य' के साथ तादात्म्य कर उसमें मधुर अनुभूति जताती है। यही उक्ति की रमणीयता है जो सहृदय को आनन्द देती है। शुक्ल जी का यह तर्क बड़ा विचित्र लगता है कि सारी रमणीयता इसी व्याहत और बुद्धि को अग्राह्य वाच्यार्थ में है, इस योग्य और बुद्धि-ग्राह्य व्यंग्यार्थ में नहीं कि उर्मिला को अत्यन्त औत्सुक्य है। इनमें दो त्रुटियाँ हैं; एक तो 'ऊर्मिला को अत्यन्त औत्सुक्य है' यह व्यंग्यार्थ नहीं रहा—वाच्यार्थ हो गया। औत्सुक्य की व्यंजना ही चित्त की चमत्कृति का कारण है; उसका कथन नहीं। दूसरे, जिस अनुपपन्नता पर वे इतना बल दे रहे हैं वह रमणीयता का कारण नहीं है, उसका एक साधन मात्र है। उसका यहाँ वही योग है जो उसकी प्रतीति में अलङ्कार का। उपर्युक्त विवेचन से ऐसा प्रतीत होता है मानो विरोध करते-करते अनायास ही किसी दुर्बल क्षण में शुक्ल जी पर क्रोचे का जादू चल गया हो? क्रोचे का यह मत अवश्य है कि उक्ति ही काव्य है; और इसके प्रतिपादन में उनकी युक्ति यह है कि व्यंग्यार्थ और वाच्यार्थ दोनों का पार्थक्य असम्भव है—एक प्रतिक्रिया की केवल एक ही अभिव्यक्ति सम्भव है। क्रोचे के अनुसार 'आप अवधि बन सकूँ' आदि उक्ति और 'ऊर्मिला को अत्यन्त औत्सुक्य है' यह उक्ति सर्वथा पृथक् है—ये दो सर्वथा भिन्न प्रतिक्रियाओं की अभिव्यंजनाएँ हैं। अतएव 'आप अवधि बन सकूँ' आदि का सौन्दर्य (काव्यत्व) उनका अपना है जो केवल उसी के द्वारा अभिव्यक्त हो सकता है, 'ऊर्मिला को अत्यन्त औत्सुक्य है' यह एक दूसरी ही बात है।'

३. मेरा रोदन मचल रहा है, कहता है, कुछ गाऊँ, उधर गान कहता है रोना आवे तो मैं आऊँ' इन वाक्यों का मूल्यांकन डॉ० कन्हैयालाल सहल ने इस प्रकार किया है—

'हार्दिक दुःख शब्दों द्वारा व्यक्त होना चाहता है, किंतु इधर शब्द कहते हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

कि जब तक दु:ख पूर्णत: प्रकट नहीं होगा ; हम नहीं निकलेंगे । कहने का तात्पर्य यह है कि हृदय के द्रवीभूत होने पर ही सच्ची कविता फूटती है।

'मचल रहा है' लाक्षणिक प्रयोग है। बच्चा जैसे चीज़ के लिए मचल उठता है, उसी तरह यहाँ भी दुख का आवेग अभिव्यक्ति के लिए तड़प रहा है 'रोदन' का यहाँ पर मानवीकरण हुआ है; ऐसा लगता है जैसे रोदन ऊर्मिला का कोई हठी शिशु हो जो किसी वस्तु के लिए मचल उठा है। रोदन हठ करता है कि मुझे गान चाहिए ; उधर गान भी कितना सहेतुक उत्तर देता है 'रोदन आवे तो मैं आऊँ; (नहीं तो आवे मेरी बला) । यहाँ पर गान का भी मानवीकरण ही समझिये। उक्त पंक्तियों में दो बच्चों के शिशु-सुलभ व्यवहार की प्रतीति सी भी हो रही है। बच्चे भी तो इसी प्रकार हठ किया करते हैं "वह जब नहीं आता तो मैं ही क्यों आऊँ ? मुझे ही क्या पड़ी है ?" शिशुओं की इस सामान्य तर्क पद्धति से कौन ऐसा विज्ञ पाठक है जो अपरिचित है ? तो फिर 'रोदन' और 'गान' क्या ऊर्मिला के दो सफल हठी शिशु हैं ?'

अलंकार—१. ऊषा सी............सुरभि समान समाऊँ' में मालोपमा अलंकार।

२. 'इधर अनल......हा हा खाऊँ' में 'हृदय' पर 'घट' का अभेदारोप होने से रूपक अलंकार।

उठ अवार................भवार्णव की नई !

शब्दार्थ—अवार—इस पार। ऊर्मि—लहर। भवार्णव—संसार-रूपी सागर। जीवन—(१) जल, (२) जीवन। कर्षण—आकर्षण। कूल—किनारा। वायु-विकार—वायु का चलना।

अर्थ—ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! मैं इस संसार रूपी सागर की वह नई लहर हूँ जो इस पार से उठी तो सही, लेकिन दूसरे किनारे तक न पहुँच सकी। जैसे लहर पानी के विशेष प्रवाह में भटक कर इधर-उधर चलती तो है, किन्तु वह मँझधार में ही रह जाती है। किनारे पर उगे हुए कुंज और कछारों के प्रति उसमें सहज आकर्षण है और वह उन किनारों को छू लेना चाहती है, किन्तु वायु की विषम गति उसे ऐसा नहीं करने देती। इसके अतिरिक्त भी उसके लिए अनेक ऐसे चक्कर होते हैं जो उसे मन चाहे किनारों तक नहीं पहुंचने देते। इसी प्रकार मैंने अनेक प्रकार की सुनहली आशाओं को सँजोकर जो स्वप्न-जाल बुना था वह पूर्ण न हो सका। मैं इस संसार

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

विघ्नों से विवश होकर भटकती ही रह गई। प्रेम का आदर्श रूप अपनाने के कारण मैं अपनी सीमा से बाहर नहीं निकल पाई। यद्यपि मेरे मन में संयोग शृंगार के प्रति विविध आकर्षण हैं, पर परिस्थितियों के कारण मैं उन्हें प्राप्त नहीं कर पाई। इसके अतिरिक्त मेरे मिलन में और सुख-भोग में और भी अनेक बाधाएँ हैं। मैं इस संसार-सागर की नई लहर हूँ।

विशेष—नवीन लहर के साथ अवशा ऊर्मिला की तुलना अत्यन्त सटीक एवं प्रभावपूर्ण है।

अलंकार—१. ऊर्मिला पर लहर का अभेदारोप होने से रूपक अलंकार।

२. प्रस्तुत अर्थ के द्वारा अप्रस्तुत अर्थ का भी बोध होने से अन्योक्ति अलंकार।

पर विलीन............भवार्णव की नई।

शब्दार्थ—विलीन होना—छिपना। दैन्य—दुख। अवश—असहाय। दई—भाग्य।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! यद्यपि मेरी स्थिति सागर में उमड़ने वाली उस नई लहर के समान है जो अपने मन चाहे किनारों को नहीं छू पाती, फिर भी मैं मनोवांछित पदार्थ न मिलने पर लहर की भाँति न तो निराशा के गहन जल में छिपूँगी ही और न गतिहीन ही बनूँगी। मैं दुखी होकर भी दुख से कभी नहीं दबूँगी, अर्थात् विचलित नहीं होऊँगी। यह सच है कि मैं असहाय हूँ, किन्तु मेरी परवशता केवल मेरी आत्मा के द्वारा ही है। अन्य किसी की भी अधीनता मैं स्वीकार नहीं करती। प्रिय चाहे मुझसे कितनी ही दूर रह रहे हों, फिर भी मैं उनके मिलन से पूर्व ही उनमें लीन हूँ। भाग्य मेरे साथ जो कुछ कर सकता था, उसने कर लिया। इससे अधिक वह भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मैं इस संसार-सागर की नई लहर हूँ।

विशेष—इन पंक्तियों में ऊर्मिला का दृढ़ संकल्प और आत्म-गौरव स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ है।

अलंकार—१. 'दैन्य से न दबूँ कभी, वह दीन मैं' में विरोधाभास अलंकार।

२. 'अति अवश हूँ किन्तु आत्म-अधीन मैं' में विशेषोक्ति अलंकार।

३. 'मिलन से पूर्व ही प्रिय लीन मैं' में अतिशयोक्ति अलंकार।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

आए एक बार............मुसकान में !

शब्दार्थ—गोपनीय—छिपाने योग्य। विधान—नियम। कर्णमूल—कपोल। सगद्गद् होना—अत्यन्त प्रसन्न होना। छद-दान—क्षतदान, चुम्बन। कृती—वीर। खीझना—लज्जित होना। रीझना—प्रसन्न होना।

अर्थ—ऊर्मिला अपनी सखी को संयोगावस्था की एक सुखद घटना को सुनाती हुई कह रही है कि हे सखि ! एक बार मेरे प्रियतम मेरे पास आए और मुझसे कहने लगे कि मैं तुम से एक बात कहना चाहता हूं और क्योंकि वह बात छिपाने योग्य है इसलिए कान में सुनो। मैंने कहा कि यहाँ हम दोनों के अतिरिक्त और है ही कौन जो कान में बात कहने की आवश्यकता हो। इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि दीवारों पर जो चित्र लगे हुए हैं, राजनीति के नियमानुसार ये भी गोपनीय बातों को सुन लेते हैं। इस पर मैंने कान उनकी ओर कर दिया और उन्होंने अपने होंठों से मेरे कपोलों को चूम कर लाल कर दिया। हे सखि ! छल के द्वारा लिए गए उस चुम्बन से मुझे जो अपार आनन्द की अनुभूति हुई उसका मैं वर्णन नहीं कर सकती। जब मैंने उनकी ओर तनिक क्रोध करके देखा तो वे मुस्करा कर कहने लगे कि वीर पुरुष किसी कार्य को कर डालते हैं, उसके विषय में कहते नहीं। हे सखि ! उनके इस व्यवहार पर लज्जित होकर भी मैं रीझ गई।

विशेष—१. नारी का एक साथ रीझना-खीझना उसके अपार प्रेम के बोधक भाव हैं। विहारी ने भी निम्नलिखित दोहे में नायिका के एक साथ रीझने और खीझने का वर्णन किया है—

'बालमु बारैं सौति कैं, सुनि परनारि-विहार।
भो रसु अनरसु, रिस रली, रीझ खीझ इक बार॥'

२. इस प्रकार के बहानों से चुम्बन आदि लेने का वर्णन अनेक कवियों ने किया है। अमरुकशतककार की नायिका भी इसी प्रकार की स्थिति का वर्णन अपनी सखी से इन शब्दों में कर रही है—

'शून्यं वासगृहं विलोक्य शयनादुत्थाय किंचिच्छनै-
निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम्।
विश्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थलीं,
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरं चुम्बिता।'

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अर्थात् जब प्रिया ने देखा कि घर सूना-है तो वह धीरे से अपनी शैया से उठकर बहुत देर तक नींद का बहाना करके सोते हुए अपने प्रियतम का मुख देखती रही। फिर उसने निःशंक होकर ज्यों ही उसके मुख का चुम्बन किया तो उसने प्रिय के कपोलों को रोमांचित देखा। प्रिय का जागना जानकर उसने लज्जित होकर मुख नीचा कर लिया। तब हँसता हुआ प्रिय बहुत देर तक उस बाला का चुम्बन करता रहा।

इसी प्रकार, बिहारी ने भी ऐसा ही वर्णन किया है—

'मैं मिसहा सोयौ समुझि, मुँहु चूम्यौ ढिग आइ।
हँसौ, खिसानी, गल गह्यौ, रही गरें लपटाइ॥'

अलंकार—'खीझ के भी रीझ' में 'खीझ' और 'रीझ' में समान स्वरों और व्यंजनों की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास अलंकार।

मेरे चपल············तू ही लाल !

शब्दार्थ—चपल—चंचल। यौवन-वाल—यौवन-रूपी बालक। साल—दुख देना। रात—(१) रात, (२) दुख का समय। सुप्रभात—(१) आनंद-दायी प्रातःकाल, (२) सुख का समय। मणि-माल—मणियों की माला। सुरम्य रसाल—सुन्दर आम। लाल—(१) मणि, (२) पुत्र।

अर्थ—अपने यौवन को सम्बोधित करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि हे मेरे चंचल यौवन-रूपी बालक ! तू मचलकर मुझको दुख मत दे, बल्कि मेरे अंचल में सुखपूर्वक छिपकर सो जा। तू इस रात-रूपी दुख के समय को बीतने दे, क्योंकि इसके पश्चात् प्रातःकाल-रूपी सुख का समय आयेगा। फिर तू मणियों की माला पहनकर उसी खेल को आनंद से खेलना, जिसको तेरा मन चाहे। तेरे भाग्य-फल के रूप में सुन्दर आम पक रहे हैं; अर्थात् जिस प्रकार आम के फल गर्मी को सहन करके धीरे-धीरे पकते हैं और अन्त में बहुत ही मीठे बन जाते हैं, उसी प्रकार तेरे सुखों के दिन धीरे-धीरे तेरी ओर आ रहे हैं, तुझे शीघ्र ही सुख मिलेगा। तेरे दुख का समय बीत रहा है, इसलिए तू न तो अवसर को खो और न किसी प्रकार का भय ही कर। हे लाल ! तेरा मन पुजारी है, शरीर ही मुझ दुखिनी का थाल है और प्रियतम को भेंट में देने के लिये तू ही उस थाल में रक्खी हुई प्रिय वस्तु है।

विशेष—१. इन पंक्तियों में यौवन की चंचल बालक से तुलना करना अत्यंत भावपूर्ण है। जिस प्रकार चंचल बालक को कठिनाई से वश में किया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जा सकता है, उसी प्रकार यौवन के उद्दाम प्रवाह को भी नियंत्रित कर लेना दुष्कर कार्य है। विरहिणी युवती के यौवन को वश में करना तो और भी कठिन काम है और जिस प्रकार चंचल बालक प्रातःकाल होने पर स्वयं ही अपनी मचल छोड़कर अपने खेल में डूब जाता है, उसी प्रकार संयोगावस्था के शुभ दिन आने पर यौवन स्वयमेव नियंत्रित होकर अपने ही रस में निमग्न हो जाता है।

२. ऊर्मिला का आशावादी दृष्टिकोण इन पंक्तियों में स्पष्ट है। 'पक रहे हैं भाग्य-फल तेरे सुरम्य रसाल' से तो यह दृष्टिकोण नितांत स्पष्ट हो जाता है।

३. अपने प्रियतम के प्रति पूर्ण समर्पण ऊर्मिला के चरित्र की प्रमुखतम विशेपता है। 'मन पुजारी और तन इस दुःखिनी का थाल, भेंट प्रिय के हेतु उसमें एक तू की लाल' में यह सम्पूर्ण समर्पण की भावना मुखरित है।

अलंकार—१. यौवन पर बाल का, मन पर पुजारी का और तन पर थाल का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

२. 'अचल अंचल' में यमक अलंकार।

३. 'एक तू ही लाल' में 'लाल' शब्द के दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

यही वाटिका...............महामोद में।

शब्दार्थ—मही—पृथ्वी। बल्लकी—वीणा। महामोद—भारी हर्ष।

अर्थ—अपनी संयोगावस्था की एक सुखद घटना का वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! यही वाटिका थी और यही पृथ्वी थी। ऐसा ही चाँद चमक रहा था और इसी प्रकार की मनोहारिणी चाँदनी छिटकी हुई थी। इसी वीणा को अपनी गोद में लेकर मैं भारी हर्ष में भर कर इसे बजा रही थी।

कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार आज पृथ्वी मनोहारिणी बनी हुई है और मैं गोद में वीणा लेकर बजा रही हूँ, इसी प्रकार उस दिन भी प्रकृति का ऐसा मनोहर रूप था और इसी प्रकार भावोन्माद में भर कर मैं वीणा बजा रही थी कि अकस्मात् मेरे प्रियतम मेरे पास आ गये थे।

विशेष—१. संयोगावस्था की सुखद वस्तुएँ वियोगावस्था में दुखद बन जाती हैं, इसी मनोवैज्ञानिक सत्य का उल्लेख इन पंक्तियों में हुआ है।

२. प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अलंकार—१. समान वस्तुओं से पूर्व घटित घटना का स्मरण आ जाने से स्मरण अलंकार।

२. 'यही' विशेष्य का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार।

यही कण्ठ था............ओर से।

शब्दार्थ—मानिनी-मान—मानवती ऊर्मिला का मान। तन्मयी—आनन्द-विभोर। कांत—प्रियतम।

अर्थ—अपनी संयोगावस्था की एक सुखद घटना का वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! जिस प्रकार आज मैं इसी कण्ठ से मधुर गीत गा रही थी, उस दिन भी इसी कण्ठ से ऐसा ही मधुर गीत निकला था। लेकिन वह कौन-सा गीत था? हाँ, हाँ, याद आया। उस गीत की टेक थी—'न था दुर्ग तू, मानिनी-मान था' अर्थात् तू मानिनी प्रियतम का मान था, जिस पर मैं विजय न पा सका, यदि तू कोई सुदृढ़ दुर्ग भी होता तो उस पर विजय पाना मेरे लिए कठिन न था। उस गीत की यही एक टेक थी जिसे आनन्द-विभोर होकर मैं अपने प्रियतम की ओर से बार-बार दोहरा रही थी।

विशेष—विरहिणी की स्वाभाविक एवं मार्मिक अनुभूतियों का सजीव चित्रण है।

अलंकार—'न था दुर्ग तू, मानिनी-मान था' में प्रसिद्ध उपमान का अनादर होने से व्यतिरेक अलंकार।

अकस्मात्............अच्छे फँसे।

शब्दार्थ—निःशब्द—चुपचाप। जयी—प्रियतम। मनोवृत्ति—ध्यान। मन्मयी—मेरी ओर।

अर्थ—अपनी संयोगावस्था की एक सुखद घटना का वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! जब मैंने अपना वह गीत प्रारम्भ किया, जिसकी टेक थी—'न था दुर्ग तू, मानिनी-मान था' तो सहसा चुपचाप मेरे प्रियतम आ गये। उस समय उनका ध्यान मेरी ओर लगा हुआ था। उनका आगमन जानकर मैं चुप हो गई तो वे आप-ही-आप हँसे और कहने लगे कि मैं तो स्वयं को बड़ा वीर समझता था, पर आज यहाँ आकर बुरी तरह फँस गया हूँ।

विशेष—'मनोवृत्ति थी नाथ की मन्मयी' यह प्रयोग हिन्दी-भाषा की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्रकृति के अनुकूल नहीं और न 'मन्मयी' शब्द ही हिन्दी में प्रचलित है।

अलंकार—अकस्मात् मनोवांछित पदार्थ के मिल जाने का वर्णन होने से समाधि अलंकार।

हँसी में........गीत।

शब्दार्थ—मानिनी तो गई—मुझ मानवती का मान भंग हो गया है।

अर्थ—अपनी संयोगावस्था की एक सुखद घटना का वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! जब अचानक मेरे प्रियतम आकर हँसने लगे तो उनकी हँसी देखकर मैं भी हँस पड़ी और कहने लगी कि अब तो मुझ मानवती का मान भी नष्ट हो गया है। अतः आपकी इस विजय के लिए आपको बधाई देती हूँ। यह सुनकर उन्होंने कहा कि हे प्रिय! प्रेम में हार में ही जीत हुआ करती है। लेकिन यह तो बताओ कि तुम जो यह नया गीत गा रही थी, उसे तुमने बीच में ही क्यों रोक दिया है?

विशेष—'मानिनी तो गई' लाक्षणिक प्रयोग है। लक्षणा ने वक्तव्य को बहुत भावपूर्ण बना दिया है।

अलंकार—'हार में ही यहाँ जीत है' में विरोधाभास अलंकार।

जहाँ आ गई........हो रही।

शब्दार्थ—चाप—धनुष। टंकार—घोष। झंकार—मधुर ध्वनि। मग्न होना—समाहित होना, डूबना।

अर्थ—अपनी संयोगावस्था की एक सुखद घटना का वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! एक दिन जब मैं भावविभोर होकर एक गीत गा रही थी तो वहाँ अकस्मात् मेरे प्रियतम आ गये। मैंने उन्हें देखकर अपना गीत रोक दिया। उन्होंने पूछा कि मैंने गीत को क्यों बन्द कर दिया तो मैंने उत्तर दिया कि जहाँ धनुष का घोष आ गया हो, वहाँ झंकार स्वयं ही व्यर्थ हो जाती है। भाव यह है कि आप पौरुष के प्रतीक हैं, अतः आपके सामने कोमल स्वर-लहरियाँ टिक ही नहीं सकतीं। यह सुनकर प्रियतम ने कहा कि हे प्रिये! धनुष की टंकार तो सो रही है, वरन् वह स्वयं ही झंकार में डूबी हुई है।

भाव यह है कि भले ही मैं पुरुष हूँ, पर तुम्हारे प्रेम के वशीभूत होकर तुममें ही तन्मय हो गया हूँ।

विशेष—संवादात्मक शैली के कारण वक्तव्य में भाव-प्रवणता आ गई है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अलंकार—प्रकारान्तर से अभीष्टार्थ की अभिव्यक्ति होने से पर्यायोक्ति अलंकार।

भला········झंकार का।

शब्दार्थ—भला—ऐसा ही सही। धाम—महल। हेतु—कारण।

अर्थ—अपनी संयोगावस्था की एक सुखद घटना का वर्णन करती हुई ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि एक दिन जब मैं आनन्द-विभोर होकर एक गीत गा रही थी तो उसी समय मेरे प्रियतम आ गये और कहने लगे कि यद्यपि वे टंकार-रूप हैं, पर उनका वह रूप मेरे झंकार-रूप ही में छिप गया है। यह सुनकर मैंने कहा कि ऐसा ही सही, पर संसार में एक प्रश्न यह है कि झंकार और टंकार में कौन-सी वस्तु अच्छी लगती है ? मेरे इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि अपने-अपने स्थान पर दोनों वस्तुएँ ही अच्छी हैं। महल में झंकार अच्छी है और संग्राम में टंकार। टंकार का जन्म इसी कारण हुआ है कि वह झंकार की रक्षा करती रहे और उसका कोई भी तार टूटने न पाये। भाव यह है कि वीर पुरुषों का धर्म सामाजिक व्यवस्था को कायम करके उसमें हर्ष और आनन्द के भावों को बढ़ाकर उनकी रक्षा करना है।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि की सामाजिक भावना मुखरित है। समाज के पूर्ण विकास के लिए शान्ति और युद्ध दोनों अनिवार्य हैं, क्योंकि युद्ध से ही शांति की रक्षा हो सकती है। आज के सामाजिक परिवेश में यह कथन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

अलंकार—'झंकार टंकार' में समान स्वरों तथा व्यंजनों की एक बार समता होने से छेकानुप्रास अलंकार।

यही ठीक········झिला।

शब्दार्थ—टंकार—युद्ध के घोष। झंकार—शान्ति की झंकार। क्षोभ—दुख। झिला—सहन किया गया।

अर्थ—संयोगावस्था की एक सुखद घटना का वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! उन्होंने बताया था कि झंकार और टंकार दोनों ही सामाजिक विकास के लिए आवश्यक हैं, क्योंकि टंकार (संग्राम) ही झंकार (शांति) की रक्षा करती है। इसके बाद उन्होंने कहा था कि ठीक यही है कि टंकार सोती रहे, अर्थात् युद्ध बन्द रहें और सभी ओर झंकार होती रहे, अर्थात् शान्ति फैली रहे। फिर उन्होंने कहा था कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

संसार में लोभ फैला हुआ है इसी कारण संसार दुखी है। हमें शान्ति का जो भार मिला है इसी धनुष की कोटियों ने वह सहन किया हुआ है। अर्थात् संसार में शान्ति की स्थापना केवल युद्ध से ही हो सकती है।

विशेष—१. इन पंक्तियों में लक्ष्मण का वीर-भाव स्पष्ट है।

२. आधुनिकता के परिवेश में ये पंक्तियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

हुआ............कान थे।

शब्दार्थ—कोदंड विद्या—धनुर्विद्या। विवादी—विरोधी।

अर्थ—अपनी संयोगावस्था की एक सुखद घटना का वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! एक दिन मेरे प्रियतम ने जब युद्ध की अनिवार्यता का समर्थन किया तो मैंने कहा कि हो सकता है कि युद्ध से ही शान्ति स्थापित होती हो, लेकिन धनुर्विद्या और कला मेरे लिए व्यर्थ हैं, फिर इनके सीखने से मुझको लाभ भी नहीं। मुझ ऊर्मिला के लिए तो ये झंकार-भरे गीत ही अच्छे हैं जिनमें विरोधी स्वर नहीं होते और कान विरोधी स्वरों के कटु कोलाहल से बचे रहते हैं। ऊर्मिला के कहने का भाव यह है कि युद्ध में भीषण नर-संहार होता है, भाँति-भाँति के विरोधी स्वर कानों को फाड़ डालते हैं इसीलिए वह हेय है। संगीत में विरोधी स्वर नहीं होते, इसीलिए उसके स्वर श्रुति-मधुर होते हैं।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने युद्ध का बहिष्कार और शान्ति का समर्थन किया है; किन्तु यह समर्थन अधिक प्रभावशाली ढंग से व्यक्त नहीं हो पाया है क्योंकि कवि "विवादी स्वर' के श्लिष्ट अर्थ के मोह में फँस गया है।

अलंकार—विवादी स्वरों के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

करूं शिष्यता............स्वरालाप से!

शब्दार्थ—तांत्रिकी—वाद्य यंत्र की, संगीत की। धारणा—पकड़ना। स्वरालाप—संगीत-स्वर।

अर्थ—अपनी संयोगावस्था की एक सुखद घटना का वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि मैंने धनुर्विद्या की अपेक्षा संगीत-विद्या को महत्त्व देते हुए उनसे कहा कि मैं तुम्हारी शिष्या नहीं बन सकती, हाँ, यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हारी संगीत-शिक्षिका अवश्य बन सकती हूँ, क्योंकि धनुष की अपेक्षा संगीत में अधिक शक्ति है। तुम अपने धनुष के बल से हरिणों

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Gran

को अपने पास नहीं बुला सकते और यदि तुम कहो तो मैं अपने मधुर स्वरों से उन्हें अपने पास खींच लूँ।

विशेष—१. हरिण की संगीत-प्रियता प्रसिद्ध है। साहित्यकारों ने इसका अनेक प्रकार से वर्णन किया है।

२. इन पंक्तियों में युद्ध का तिरस्कार और संगीत का महत्त्व स्वीकार किया गया है, किन्तु वक्तव्य शैली में शक्ति नहीं है।

अभी खींच............मेरा रहे।

शब्दार्थ—कूल—किनारा। चाप—धनुष।

अर्थ—अपनी संयोगावस्था की एक सुखद घटना का वर्णन करती हुई ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! संगीत की महत्ता का प्रतिपादन करते हुई जब मैंने प्रियतम से यह कहा कि तुम अपने धनुष की शक्ति से हिरणी को अपने पास नहीं बुला सकते और मैं अपने स्वरालाप से तुरन्त ही उन्हें पास खींच सकती हूँ तो उन्होंने परिहास करते हुए कहा कि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि तुम अपने मधुर स्वर से हिरणों को अपने पास खींच सकती हो, क्योंकि तुमने अभी-अभी मुझ हरिण को अपने पास खींच लिया है। इस गुण के कारण तुम शिष्य से शिक्षिका बन गई हो और तुम्हारा यह पद पा जाना उचित ही है। मेरी इच्छा यही है कि तुम्हारी मधुर स्वरों की धारा निरन्तर बहती रहे और उस धारा के किनारे पर मेरा धनुष पड़ा रहे, अर्थात् हम दोनों का सम्मिलन वीरता और शान्ति का सम्मिलन है जो उचित है और संसार के लिए हितकारी है।

विशेष—दाम्पत्य जीवन के सुखी जीवन की झाँकी इन सम्वादों से व्यक्त होती है।

अलंकार—'स्वरालाप-धारा' में 'स्वारालाप' पर 'धारा' का अभेदारोप होने से रूपक अलंकार।

इसी भाँति............रीतता।

शब्दार्थ—आलाप-संलाप—संगीत आदि की चर्चा। ताप—दुख। रीतता—खाली होता था।

अर्थ—अपनी संयोगावस्था के सुखों का वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि इसी प्रकार संगीत आदि की चर्चा में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

यहाँ पर हमारा समय व्यतीत हो रहा था। तब ऐसा भयंकर शाप और दुख हमारे जीवन में न था, जैसा अब आ गया है। वरन् सारा जीवन अपार संतोष से भरा हुआ था और संतोष का भंडार कभी खाली नहीं होता था।

विशेष—'रीतता' शब्द हिन्दी मे प्रचलित नहीं है। यह गुप्तजी का स्वयं ही गढ़ा हुआ शब्द है।

अलंकार—'आलाप-संलाप' में समान स्वरों और व्यंजनों की एक बार समता होने से छेकानुप्रास अलंकार।

हरे हाय ....शिला !

शब्दार्थ—मंथरा—कैकेयी की दासी, जिसने कैकेयी को बहकाकर राम को वनवास दिलाया था। हिया-पींजरा—हृदय-रूपी पिंजड़ा। शून्य—सूना। माँ—कौशल्या। सिद्ध—योगी।

अर्थ—अपने संयोग-सुखों के सहसा समाप्त हो जाने पर विरहिणी ऊर्मिला अपना अपार दुख प्रकट करती हुई अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! सहसा एक ऐसी घटना घटी जिसकी किसी को भी आशा नहीं थी। दासी मंथरा ने राम-रूपी तोते को पिंजड़े से उड़ा दिया और फिर कौशल्या माँ का हृदय-रूपी पिंजड़ा सूना बनकर रह गया। भाव यह है कि मंथरा ने कैकयी को बहकाकर राम को बनवास दिला दिया, जिससे कौशल्या को अपने पुत्र से अलग होकर अपार दुख सहन करना पड़ा। राम के साथ मेरा प्रियतम भी बन को चला गया और तब मैं उस सूनी शिला की भाँति रह गई जिस पर तप-साधना करने वाला योगी उसे छोड़कर चला जाता है।

विशेष—१. इन पंक्तियों में प्रयुक्त 'सुआ' और 'माँ' के अर्थ 'लक्ष्मण' और 'सुमित्रा' भी हो सकते हैं।

२. इन पंक्तियों का मूल्यांकन करते हुए डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है—

'किसी-किसी सीधी-सादी उक्ति में एक अद्भुत वक्रता आ जाती है जिसके आधार का पता लगाना सहज सम्भव नहीं होता। ऐसी उक्तियाँ काव्य की विभूति होती हैं, उनमें अपूर्व मर्मस्पर्शिता मिलती है—'उड़ा ही दिया मंथरा ने, सुआ' में यही गुण है। ऊर्मिला यह नहीं कहती कि मंथरा ने सभी सुख-स्वप्नों पर पानी फेर दिया। उसका तो कहना है—'उड़ा ही दिया मंथरा ने सुआ' जिससे कथन में जादू का प्रभाव आ गया है। यह उक्ति सर्वथा स्वच्छ

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

है, अलंकार का आवरण इस पर नहीं है। इसमें मुहावरा मानकर लक्षणा का आधार माना जा सकता है, परन्तु सहृदय विचारें कि क्या इस उक्ति का सौन्दर्य मुहावरे की संकीर्ण परिधि में ही सीमित किया जा सकता है ? निस्सं-देह, इसमें मुहावरे से अधिक कुछ और भी है जो अनिर्वचनीय रहेगा।'

३. 'गया सिद्ध मेरा, रही मैं शिला' का विश्लेषण डॉ० कन्हैयालाल सहल ने इस प्रकार किया है—

'यह पंक्ति बड़ी मार्मिक है। सिद्ध शिला से तात्पर्य उस शिला से है जिस पर योगी सिद्धि प्राप्त करता है। जब तक योगी रहता है तब तक तो वह सिद्ध-शिला है, जब योगी चला जाता है तब वह कोरी शिला रह जाती है। अपने प्रियतम के बिना ऊर्मिला उस शिला की तरह हो गई है जिसे उसका योगी (सिद्ध) छोड़कर चला गया है।'

अलंकार—१. 'उड़ा ही दिया मंथरा ने सुआ' में केवल उपमान (सुआ) का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

२. 'हिया-पींजरा' में हृदय पर पिंजड़े का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

स्वप्न था............कहाँ अभी ?

शब्दार्थ—प्रत्यक्ष—प्रस्तुत दुखी जीवन। परित्राण—छुटकारा।

अर्थ—अपनी संयोगावस्था के बीते मधुर दिनों की स्मृति करती हुई तथा अपनी वेदना प्रकट करती हुई विरहिणी ऊर्मिल अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! संयोगावस्था का सुख तो एक स्वप्न था जो बीत गया। क्या मैं उस स्वप्न को फिर कभी देखूंगी ? भाव यह है कि जिस प्रकार स्वप्न क्षण भर के लिए अपना रूप दिखाकर छिप जाता है, उसी प्रकार मेरा संयोग-सुख भी छिप गया है। न जाने अब फिर प्रियतम से संयोग होकर वह सुख मिलेगा या नहीं। लगता ऐसा है कि मैं अब जो दुख भोग रही हूँ, इस दुख से अभी मुझे छुटकारा नहीं मिल सकता।

विशेष—विरहिणी की आकुल भावना का सजीव चित्रण है।

अलंकार—संयोग-सुख पर स्वप्न का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

कूड़े से भी............फिरते।

शब्दार्थ—अदृष्ट—भाग्य। घूरे के—कूड़े के।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी दयनीय दशा का वर्णन करती हुई अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! मेरा भाग्य तो गिरता-गिरता कूड़े से भी अधिक नीचे गिर गया है, क्योंकि यह सुना जाता है कि बारह वर्षों में तो कूड़े के भी दिन फिरते हैं, अर्थात् उसके भी अच्छे दिन आते हैं। परन्तु मेरे प्रियतम के आने की अवधि तो चौदह वर्षों की है। अगर वे इस अवधि में आ भी गए तो मेरे भाग्य को सुधरने में चौदह वर्ष लगेंगे।

विशेष—'बारह वर्षों में घूरे के भी दिन आते हैं' इस लोकोक्ति के आधार पर कवि की इन पंक्तियों में व्यक्त कल्पना अत्यंत सजीव एवं मार्मिक है।

अलंकार—लोकोक्ति का प्रयोग होने से लोकोक्ति अलंकार।

रस पिया............विहंगिनी !

शब्दार्थ—रस पिया—आनंद का भोग किया। अलभ्य—अप्राप्य, जो प्राप्त न हो सके। विहंगिनी—पक्षिणी।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! जिस राजमहल में रहकर प्रियतम के साथ नित्य नये आनंद का मैंने भोग किया था, उसी राजमहल में अब विष मिलना भी मुझे दुर्लभ हो गया है। भाव यह है कि जो राजमहल कभी मेरे लिए सुख का भंडार था, वही अब भीषण दुख का आगार बन गया है। मैंने अपने प्रियतम के साथ मरण और जीवन में सदैव साथ रहने का संकल्प लिया था, पर मैं इतनी हतभागिनी हूँ कि उस संकल्प का भी निर्वाह नहीं कर सकी, अपने प्रियतम के साथ वनों में भी न जा सकी, और मुझे इस प्रकार का सौभाग्य भी न मिल सका कि मैं अपने प्रियतम के साथ वनों में इस भाँति रह सकूँ जिस भाँति पक्षिणी अपने प्रिय पक्षी के साथ रहती है।

विशेष—विरहिणी की मार्मिक व्यथा का सजीव चित्रण है।

अलंकार—स्वयं पर (ऊर्मिला पर) विहंगिनी का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

सखि, यहाँ सब.....................उदास हैं।

शब्दार्थ—निहार—देख। अतीत—भूतकाल। विहार—आनन्द। उदित-से—उदय हुए-से। हास-विलास—सुख और भोग। रुदित-से—रोये हुए-से।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! यहाँ सब ओर देख और फिर हमारे बीते हुए आनंदों पर विचार कर। कहीं भूत

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

का भाव यह है कि यह तू भी अच्छी तरह जानती है कि इस राजभवन में रह कर हमने कितने सुख भोगे हैं, कितने आनंद-विहार किये हैं। वे बीते हुए सभी सुख और भोग मेरी आँखों के सामने प्रत्यक्ष से बनकर नाच रहे हैं, किंतु अब उनमें संयोगावस्था के समय का-सा उल्लास नहीं है, वरन् वे सब रोते हुए-से और उदास बने हुए-से दिखाई देते हैं। भाव यह है कि संयोगकालीन सुखद वस्तुएँ यद्यपि आज भी वैसी की वैसी ही उपलब्ध हैं, पर प्रियतम के वियोग के कारण अब ये सुखद न रह कर दुखद बन गई हैं।

विशेष—ऊर्मिला की विरह-व्यथा की मार्मिक अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में हुई है।

अलंकार—'उदित रुदित' में समान स्वरों तथा व्यंजनों की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास अलंकार।

स्वजनि, पागल..................लीजियो।

शब्दार्थ—स्वजनि—सखी। उपचार—इलाज। अवधि—प्रियतम की बन लौटने की अवधि।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! यदि पागल हो जाऊँ तो इसी में मेरी और तुम्हारी सब की ही कुशलता है, क्योंकि पागल होने से मैं अपने आपको भूल जाऊँगी और इस प्रकार इस विषम ... से छुटकारा पा लूँगी। तुम्हें मैं सौगंध दिलाती हूँ कि यदि मैं पागल हो जाऊं तो मेरा इलाज न करना, पर प्रियतम की बन से लौटने की अवधि का ध्यान अवश्य रखना।

विशेष—विरहिणी जब विरह-दुख से अत्यधिक दुखी हो जाती है तो वह पागल-सी बनकर प्रलाप करने लगती है। इन पंक्तियों में कवि ने ऊर्मिला की ... दशा का वर्णन किया है।

अलंकार—दोष को गुण मानने से लेश अलंकार।

बस इसी ....पसीजियो।

शब्दार्थ—प्रिय-कानन-कुंज—प्यारा लगने वाला बन का कुंज। भाषण—प्रलाप। स्मृति-पुंज—स्मृतियों का समूह। अभय—भयहीन। पसीजना—प्रभावित होना, प्रभाव में आना।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! इसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

प्यारे लगने वाले बन के कुंज में, जहाँ मैं अपने प्रियतम से मिलन और प्रेमालाप के स्मृतियों के समूह में डूब सकूँ, अर्थात् जहाँ मैं एकांत में बैठकर अपने प्रवासी प्रियतम की स्मृति में खोकर उसके साथ, कल्पना के द्वारा, मिलन और प्रेमालाप का अपार सुख प्राप्त कर सकूँ, भयहीन होकर मुझे छोड़ दो। प्रियतम की स्मृतियों में डूब कर यदि मैं कभी हँस पड़ूँ और कभी रो पड़ूँ तो मेरी इस दशा पर द्रवीभूत न होना, मेरे प्रति अपने मन में करुणा के भाव जागृत न करना।

विशेष—विरहिणी ऊर्मिला की विरह-व्यथा की मार्मिक अभिव्यक्ति है।

सखि, न मृत्यु············**तो किला !**

शब्दार्थ—आधि—मानसिक दुख। व्याधि—शारीरिक दुख। स्वप्न-समाधि—स्वप्न में मिलन। विरह-सर्प—विरह-रूपी सर्प। किला—मंत्र से वशीभूत हो गया।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! यदि मेरी मृत्यु हो जाये, या मुझे कोई मानसिक या शारीरिक दुख हो जाये तो तुम उन्हें यही समझना कि मैं स्वप्न में डूबकर अपने प्रियतम से मिल रही हूं। यदि मैं विरह-व्यथा से पागल हो जाऊँ तो अच्छा ही है, क्योंकि इससे विरह दुख उसी प्रकार वश में हो जायेगा, जिस प्रकार मंत्रों से सर्प वश में हो जाता है। भाव यह है कि पागल हो जाने पर विरह-व्यथा स्वयं ही दूर हो जायेगी।

विशेष—१. विरहिणी ऊर्मिला की विरह-वेदना की कारुणिक अभिव्यक्ति है।

२. 'पागल हो यदि ऊर्मिला' में 'ऊर्मिला' शब्द का प्रयोग भाव-व्यंजक है।

अलंकार—'विरह-सर्प' में विरह पर 'सर्प' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

प्रिय यहाँ············**दिखलायेंगे।**

शब्दार्थ—विकार—कष्ट। प्रकटता—सत्य।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! जब मेरे प्रियतम बन से लौटकर यहाँ पर आयेंगे, तो उनसे मिलकर मेरे सभी प्रकार के कष्ट स्वयं ही मिट जायेंगे। तब स्वप्न स्वप्न नहीं रह पायेंगे, वरन् वे सत्य होकर प्रकट हो जायेंगे। भाव यह है कि प्रियतम से मिलने पर सभी प्रकार के दुख नष्ट हो जायेंगे और सभी प्रकार के सुख मिलेंगे।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

विशेष—अपने प्रियतम के प्रति ऊर्मिला ने गहन आस्था प्रकट की है।

अलंकार—'न सपने सपने रह पायेंगे' में 'सपने' शब्द का भिन्नार्थक प्रयोग होने से यमक अलंकार।

अब भी समक्ष............भोग सखी ?

शब्दार्थ—समक्ष—सामने। रिक्त—खाली। योग—मिलन। भोग—फल।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! मुझे ...गता है कि अब भी प्रियतम मेरे सामने ही खड़े हुए हैं, पर जब मैं उन्हें बाहु-...श में बाँधने का प्रयत्न करती हूँ तो मेरे हाथ आगे तो बढ़ते हैं, किन्तु खाली ...रह जाते हैं। मेरी यह स्थिति न तो वियोग की है और न भोग की, क्योंकि ... प्रियतम में इतनी रम गई हूँ कि वे सदैव मुझे अपने पास ही दिखाई देते हैं, ...सीलिए तो उनसे वियोग नहीं माना जा सकता, परन्तु वास्तविकता यह है कि मेरे पास ही नहीं हैं, अतः यह संयोग तथा भोग की अवस्था भी नहीं है। सखि ! तुम्हीं बताओ, मैं अपने किस दुर्भाग्य का फल भोग रही हूँ।

विशेष—१. अपने प्रिय के वियोग में विरहिणी इतनी व्याकुल हो जाती ...कि उसे सत्य और असत्य का ही ज्ञान नहीं रहता। इन पंक्तियों में ऊर्मिला ...इसी दशा का चित्रण है।

२. 'न वियोग है न यह योग सखी' से ऊर्मिला की द्विविधामयी स्थिति ...कार हो उठी है। प्रेम जब निष्ठा एवं आस्था से पूर्ण होता है तब उसकी ...दशा होती है। उसमें वियोग में भी संयोग और संयोग में भी वियोग ...रहता है।

विचारती हूँ............दीख जाते !

शब्दार्थ—अरण्य—वन।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! ...कभी मुझे ऐसा लगता है कि मेरे प्रियतम बन से लौट आये हैं और ...छिपकर सभी को देख रहे हैं और कभी-कभी स्वयं भी थोड़े बहुत दीख ...हैं।

आते यहाँ.........पी रहे !

शब्दार्थ—निहारने—देखने के लिए। तारने—दुखों से छुड़ाने के लिए। ...पी—आँसू पी-पीकर, भारी कष्ट सहकर।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि मेरे प्रियतम बन से लौटकर यहाँ आ गये हैं, तो मैं यह सोचती हूँ कि वे हमें केवल देखने के लिए ही यहाँ आते हैं या, हमारा उद्धार करने के लिए और हमें कष्टों से छुड़ाने के लिए। या वे यह देखने के लिए आते हैं कि हम उनके विरह में किस प्रकार जीवित रह रहे हैं ? यदि यही बात है तो वे जान लें कि हम उनके वियोग के कारण भारी कष्ट सहकर और अपार वेदना से पीड़ित होकर जीवित रह रहे हैं।

सखि विचार............नये नये !

शब्दार्थ—अवधि—बनवास की अवधि। सकुचा रही है—संकोच कर रही है।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! कभी-कभी मेरे मन में यह विचार आता है कि प्रियतम की वनवास की अवधि पूर्ण हो गई है और वे लौट कर वापिस आ गये हैं। फिर भी मैं उनसे मिलने में संकोच कर रही हूँ, क्योंकि मैं तो वही की वही हूँ, मुझमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, पर वे तो बिल्कुल ही बदल गये हैं और मुझे नये-नये दिखाई दे रहे हैं।

निरखती सखी............बहे।

शब्दार्थ—निरखती—देखती। दयित-दीप्ति—प्रियतम की ज्योति। भ्रांत—पागल। बहे—बह जाए, नष्ट हो जाए।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! आ मैं जिस ओर भी देखती हूँ, वहीं मुझे अपने प्रियतम की ज्योति दिखाई दे है। यह सुनकर उसकी सखी कहती है कि हे ऊर्मिला ! तुम तो पागल गई हो। ऊर्मिला उत्तर देती है कि यदि यह बात असत्य है कि मुझे प्रियत की ज्योति दिखाई देती है तो मैं उस सत्य को भी स्वीकार नहीं करती मुझे अपने प्रियतम की ज्योति दिखाई नहीं देती।

विशेष—'यह असत्य तो सत्य भी बहे' से ऊर्मिला का उसके प्रियतम प्रति अपार एवं प्रगाढ़ प्रेम-भाव व्यंजित होता है।

ज्वलित प्राण............प्रेम-पुंज से।

शब्दार्थ—ज्वलित—जलते हुए। सुभग—सुन्दर। कांत—प्रियतम। कौ कंज—मयूर-कंज। प्रेम-पुंज—प्रम-समूह।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! विरह-वेदना से जलते हुए मेरे प्राणों को जीवन मिल गया है, क्योंकि मेरे सुन्दर और मनोहर प्रियतम बन से लौटकर वापिस आ गए हैं। देख तो सही, वे हंस के समान मस्त गति से चलते हुए मयूर-कुंज से निकलकर प्रेम-पुंज की भाँति खड़े हुए हैं।

विशेष—ऊर्मिला की विरह-दशा का मर्मांतक वर्णन है।

अलंकार—'हंस-से' और 'प्रेम-पुंज से' में साधारणधर्मलुप्तोपमा अलंकार।

रुचिर चन्द्र की............दिगंत में।

शब्दार्थ—रुचिर—सुन्दर। चन्द्रिका—चांदनी। माधवी—एक लता का नाम जो अशोक वृक्ष सें लिपटती है। दिगन्त—चारों दिशाएँ।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! सुन्दर चाँद की चाँदनी चारों ओर खिली हुई है। माधवी नामक लता अपने प्रिय अशोक वृक्ष से लिपटी हुई है। यह चारों ओर बिखरी हुई चाँदनी ऐसी प्रतीत होती है मानो प्रियतम के बनवास की अवधि अन्त में पूर्ण हो गई हो और घर लौट आये हों तथा चारों दिशाओं में उनका ही उज्ज्वल सुयश छा रहा हो।

विशेष—प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण हुआ है।

अलंकार—एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु की सम्भावना होने से उत्प्रेक्षा अलंकार।

स्वजनि धन्य है............पखार लूँ।

शब्दार्थ—स्वजनि—सखी। खिन्न-सी—दुखी-सी। त्वरित—शीघ्र। —चरण। दृगम्बु—आँसू। पखार लूँ—धो लूँ।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! आज ...नी वनवास की अवधि समाप्त करके मेरे प्रियतम घर लौटे हैं, अतः आज घड़ी धन्य है, लेकिन न जाने फिर भी तू क्यों यहाँ पर दुखी-सी खड़ी हुई ...। जल्दी आरती ला, ताकि मैं अपने प्रियतम का यथायोग्य सत्कार कर लूँ ... उनके चरणों को अपने आँसुओं से धो लूँ।

विशेष—अपने प्रियतम के प्रति ऊर्मिला की अपार निष्ठा का सजीव ...की है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Gran

चरण हैं.........तना।

शब्दार्थ—विरह-सिन्धु—विरह-रूपी सागर। कूल—किनारा। जटाजूट—जटाओं का समूह। भृकुटि युग्म—दोनों भौंहें। चाप—धनुष।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! देख, अपने वनवास की अवधि समाप्त करके मेरे प्रियतम वापिस लौट आये हैं। उनके चरण धूल से भरे हुए हैं, पर मुझे विरह-रूपी सागर में किनारे की तरह प्राप्त हुए हैं, अर्थात् जिस प्रकार सागर में डूबते प्राणी को किनारा सहारा देकर उसके प्राण बचा लेता है, उसी प्रकार उन्होंने विरह-वेदना से दम तोड़ती हुई मुझको अपने दर्शन देकर बचा लिया है। ठीक तरह से न सँभालने के कारण उनकी जटाओं का समूह उलझकर भयानक दिखाई दे रहा है। उनकी दोनों भौंहें तने हुए धनुष की भाँति सुशोभित हो रही हैं।

विशेष—'विरहिणी जब विरह-वेदना से उन्मत्त हो जाती है तो वह प्रलाप करने लगती है। इन पंक्तियों में ऊर्मिला की इसी दशा का वर्णन है।

अलंकार—१. 'विरह-सिंधु' में 'विरह' पर 'सिन्धु' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

२. 'कूल-से' और 'चाप-सा' में उपमा अलंकार।

वदन है भरा.........अम्बु-सा।

शब्दार्थ—वदन—मुख। गलित—गला हुआ, फीका। श्री-विलास—शोभा की कांति। ललित—सुन्दर। कंधरा—कंधे। कम्बु-सा—शंख के समान। पद्म-से—कमल के समान। ओज—शारीरिक कांति। अम्बु-सा—जल के समान।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! अपने वनवास की अवधि समाप्त करके मेरे प्रियतम लौटकर मेरे पास आ गये हैं और मेरे सामने खड़े हुए हैं। उनका मुख मन्द-मन्द हँसी से भरा हुआ है अर्थात् वे मन्द-मन्द मुस्करा रहे हैं। उनकी शोभा की कांति के सामने चन्द्रमा की कांति भी फीकी बन गई है। उनके कन्धे सुन्दर हैं, उनका कंठ शंख के समान है, उनके नेत्र कमल के समान सुन्दर हैं और उनकी शारीरिक कांति जल के समान उज्ज्वल एवं निर्मल है।

विशेष—१. विरहिणी की उन्माद-दशा का मार्मिक चित्रण है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

२. केवल परम्परागत उपमानों के कारण वर्णन में इतिवृत्तात्मकता आ गई है।

अलंकार—१. 'गलित चन्द्र भी श्री-विलास से' में प्रसिद्ध उपमान का अनादर होने से व्यतिरेक अलंकार।

२. 'कण्ठ कम्बु-सा', 'नयन पद्म-से' और 'ओज अम्बु-सा' में धर्मलुप्तोपमा अलंकार।

तनु तपा हुआ············अन्य है!

शब्दार्थ—हेम—सोना। योग—संयोग। क्षेम—मंगल, कल्याण। कृती—पुण्यवान।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! अपने वनवास की अवधि को समाप्त करके मेरे प्रियतम लौट कर आ गये हैं और अब ये मेरे सामने खड़े हुए हैं। तपस्या की आग से तपकर इनका शरीर शुद्ध सोने की तरह कांति वाला बना हुआ है। इस समय मुझ विरहिणी ऊर्मिला का भाग्य धन्य है, क्योंकि अब मुझे संयोग भी सुलभ हो गया है जो मुझे कल्याण प्रदान करने वाला है। अतः अब इस संसार में मुझ जैसा पुण्यवान प्राणी कोई दूसरा नहीं है।

विशेष—विरहिणी ऊर्मिला की उन्माद-दशा का मार्मिक चित्रण है।

अलंकार—'तनु तपा हुआ शुद्ध हेम है' में वाचकधर्मलुप्तोपमा अलंकार।

विजय नाथ·················युक्त है।

शब्दार्थ—मुक्त—खुला हुआ। युक्त—उचित।

अर्थ—ऊर्मिला यह अनुभव करती है कि वनवास की अपनी अवधि समाप्त करके उसके प्रियतम लौटकर आ गये हैं और उसके भवन के द्वार पर खड़े हुए हैं। अतः वह अपने प्रियतम को सम्बोधित करके कहती है कि हे प्रियतम! तुम्हारी सर्वत्र विजय हो, पर यह तो बताओ कि शत्रुओं के भारी से भारी दुर्गों को भेदने की शक्ति रखते हुए भी तुम मेरे द्वार में क्यों नहीं घुसे? तुम द्वार के बाहर ही क्यों खड़े रह गये? हे प्रिय! मेरा द्वार तो खुला हुआ है, अतः इसमें प्रविष्ट होकर अन्दर आ जाइये। इसमें संकोच की कोई बात नहीं है, क्योंकि पति और पत्नी का मिलन तो हर समय ही उचित होता है।

विशेष—ऊर्मिला की उन्माद-दशा का सजीव वर्णन है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant

तुम महान······················व्यक्ति को।

शब्दार्थ—अंघ्रिलीन—चरणों में लिपटी हुई। दयित—प्रिय।

अर्थ—ऊर्मिला उन्माद-दशा को प्राप्त करके यह अनुभव करती है कि उसके प्रियतम बन से लौट आये हैं और उसके द्वार पर ही खड़े हैं। अतः अपने प्रियतम को सम्बोधित करती हुई वह कहती है कि हे प्रिय! यह सत्य है कि तुम महान् हो और तुम्हारी तुलना में मैं बहुत ही हीन हूँ, लेकिन फिर भी मैं धूल की तरह तुम्हारे चरणों से लिपटी हुई हूँ, अर्थात् मन, वचन और कर्म से तुम्हारी दासी हूँ। इसलिए तुम मेरी हीनता का ध्यान न करके मुझे अपनाओ, क्योंकि हे नाथ! देवता व्यक्ति की भक्ति-भावना को ही देखते हैं, उसके गुण-दोषों को नहीं।

विशेष—ऊर्मिला की उन्माद-दशा तथा अपने प्रियतम के प्रति अपार श्रद्धा का मार्मिक वर्णन है।

अलंकार—'धूल-सी अंघ्रिलीन' में उपमा अलंकार।

तुम बड़े···············मिला सभी।

शब्दार्थ—ऊर्मिला-भाग में पड़े—ऊर्मिला के ही हो। दीन—असहाय।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला उन्माद दशा को प्राप्त होकर यह सोचती है कि उसका प्रियतम बनवास की अवधि समाप्त करके घर लौट आया है और उसके द्वार पर ही रुक कर उसके प्रति उपेक्षा-भाव दिखला रहा है। अतः वह उसे सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे प्रियतम! यह सत्य है कि तुम प्रारम्भ से ही महान् थे और वन में तपस्या करके और भी अधिक महान् बन गये हो। चाहे तुम कितने ही महान् बन गये हो, फिर भी तुम मेरे ही हो। पहले मैं कभी जैसी असहाय थी, अब वैसी असहाय नहीं रह गई हूँ, क्योंकि तुम्हें पाकर मैंने सभी-कुछ पा लिया है।

विशेष—प्रेम में उपालम्भ प्रेम की पूर्णता एवं परिपक्वता का द्योतक होता है। इन पंक्तियों में व्यक्त ऊर्मिला का उपालम्भ भी इसी भाव को सूचित करता है।

प्रभु कहाँ························गिरे, गिरे।

शब्दार्थ—प्रभु—राम। अग्रजा—सीता। हम गिरे—हमारा पतन हुआ।

अर्थ—उन्माद-दशा को प्राप्त करके विरहिणी ऊर्मिला यह सोचती है कि उसका प्रियतम बन से लौट कर आ गया है और उसके द्वार पर खड़ा हुआ

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

है। अतः वह उसे सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे प्रियतम ! राम कहाँ हैं ? सीता कहाँ है ? जिनकी सेवा में रहने के लिए तुमने मेरा त्याग कर दिया था, अर्थात् मुझे विरह-दुख में डुबा कर इनके साथ ही वन को चले गये थे। क्या वे नहीं आये ? क्या तुम ही अकेले लौटकर आ गये हो ? यदि यह सत्य है तो हमारा भारी पतन हुआ है। भाव यह है कि तुम्हारे इस प्रकार लौटने से तुम्हें जो कलंक लगा है, तुम्हारी सहधर्मिणी होने से मैं भी उस कलंक से कलंकित हो गई हूँ।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि पर राष्ट्रीय जागरणकाल का गम्भीर प्रभाव स्पष्ट है, जब बहुजनहिताय व्यक्तिगत हित का त्याग करना परम धर्म बन गया था। 'प्रियप्रवास' की विरहिणी राधा भी निम्नलिखित पंक्ति में यही भाव प्रकट करती है—

'प्रिय जीवें, जग-हित करें, गेह चाहे न आवें।'

अलंकार—'गिरे' शब्द की आवेशात्मक आवृत्ति होने से वीप्सा अलंकार।

दयित, क्या मुझे·········ताप ही।

शब्दार्थ—दयित—प्रिय। आर्त्त—दुखी। अधिप—राजा अर्थात् राम। अनुक्रोश—दया। ताप—दुख।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला उन्माद दशा को प्राप्त होकर यह सोचती है कि उसका प्रियतम वन से लौट कर उसके द्वार पर खड़ा है। अतः वह उसे सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे प्रिय ! क्या मुझे दुखी जान कर राजा राम ने मुझ पर दया करके मेरे विरह-दुख को नष्ट करने के लिए अपने आप ही तुम्हें वापिस घर भेज दिया है ? यदि ऐसा ही हुआ है तो इससे मेरा दुख कम नहीं हुआ, वरन् और अधिक बढ़ा है।

विशेष—विरहिणी ऊर्मिला अपयश को सर्वाधिक दुखदायी समझती है। उसके चरित्र का यह पक्ष इन पंक्तियों से स्पष्ट है।

अलंकार—कारण के विरुद्ध कार्य का वर्णन होने से विभावना अलंकार।

प्रिय, फिरो·········नष्टपर्विणी।

शब्दार्थ—फिरो—वापिस लौटो। घूम—चक्कर। नष्टपर्विणी—नष्ट यश वाली।

अर्थ—उन्माद-दशा को प्राप्त होने पर विरहिणी ऊर्मिला को यह अनुभव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

होता है कि उसका प्रियतम वन से लौट कर आ गया है और उसके द्वार पर खड़ा है। अतः वह उसे सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे प्रिय ! चाहे राम ने मुझ पर दया करके तुम्हें वापिस भेज दिया है और चाहे तुम मेरे मोह में पड़ कर वापिस चले आये हो, पर तुम्हारा अकेले लौटना उचित नहीं है। अतः तुम शीघ्र ही वापिस चले जाओ और मेरे मोह के चक्कर में न पड़ो। यह सत्य है कि मैं यहाँ पर तुम्हारे विरह में बहुत दुखी हूँ, पर तुम्हारे त्याग-भाव पर और तुम्हारी साधना पर मुझे गर्व भी है। तुम इस प्रकार यहाँ लौट कर मुझे नष्ट यशवाली न बनाओ, क्योंकि सारा समाज यही कहेगा कि मैं उस पति की पत्नी हूँ जो पत्नी के मोह में पड कर अपने कर्त्तव्य के विमुख हो गया था। इससे मुझे अपयश मिलेगा।

विशेष—ऊर्मिला आत्म-गौरव को सबसे उत्तम धन मानती है। उसके चरित्र का यही पक्ष इन पंक्तियों में मुखरित है।

अलंकार—'फिरो' शब्द की आवेशात्मक आवृत्ति होने से वीप्सा अलंकार।

घर फिरे…………ऊर्मिला-व्यथा।

शब्दार्थ—फिरे—लौटे। च्युत—भ्रष्ट।

अर्थ—उन्माद-दशा को प्राप्त होकर ऊर्मिला यह अनुभव करती है कि उसका प्रियतम वन से लौट आया है और उसके द्वार पर खड़ा हुआ है। अतः अपने प्रियतम को सम्बोधित करती हुई वह कहती है कि हे प्रियतम ! यदि तुम मोह-पाश में पड़ कर वन से घर वापिस आ गये हो तो तुम निश्चित ही अपने तप से भ्रष्ट हो गये होते। हे नाथ ! यदि तुम इस प्रकार अपने तप से भ्रष्ट हो गए हो तो तुम्हें धिक्कार है और मेरी व्यथा भी व्यर्थ सिद्ध हो गई है। भाव यह है कि मैं इस अपार विरह-व्यथा को इसलिए सहन कर रही थी कि तुम्हारी तपस्या भंग न हो और हम दोनों को किसी प्रकार का कलंक न लग जाये, पर तुमने यहाँ आकर स्वयं को ही नहीं, मुझे भी कलंकित कर दिया है।

विशेष—ऊर्मिला अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए अत्यधिक जागरूक रहती है, यह बात इन पंक्तियों से स्पष्ट है।

अलंकार—'तब हुए तपोभ्रष्ट क्या नहीं' में काकु-ध्वनि से अर्थ में परिवर्तन होने से काकुवक्रोक्ति अलंकार।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

समय है अभी········हिलो।

शब्दार्थ—यशःस्वर्ग—यश रूपी-स्वर्ग।

अर्थ—उन्मादी ऊर्मिला यह अनुभव करती है कि उसका प्रियतम वन से लौट आया है और उसके द्वार पर खड़ा हो गया है। अतः वह अपने प्रियतम को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे प्रियतम ! अभी भी समय है कि तुम वापिस बन को लौट जाओ और यहाँ बिना अवधि पूर्ण हुए ही लौट आने के कलंक से बच नहीं सकोगे। यहाँ आकर तुम यश-रूपी स्वर्ग से गिरो; अर्थात् जिस प्रकार राजा नहुष काम-भावना के वशीभूत होकर स्वर्ग से पतित और अपयश का भागी बना, उसी प्रकार तुम भी मोह के वशीभूत होकर लौटने से अपयश के भागी न बनो। राम दयालु हैं, वे निश्चित ही तुम्हारे अपराध को क्षमा करके तुम्हें अपनी शरण में ले लेंगे, अतः तुम शीघ्र ही लौटकर उनसे मिलो और वे तुम्हें अपनाने में आनाकानी करें तो उनकी कुटी के द्वार पर जमकर बैठ जाओ, वहाँ से हिलने का नाम न लो।

विशेष—अपनी बात को मनाने का गाँधी जी ने जो तरीका निकाला था, वह था सत्याग्रह या धरना देना। 'न उनके कुटी-द्वार से हिलो' में गाँधी जी के इन्हीं तरीकों का प्रभाव है। इसी तरीके का उल्लेख कवि ने 'साकेत' के अष्टम सर्ग में भी किया है—

> 'तो इस काया पर नहीं मुझे कुछ माया।
> सड़ जाय पड़ी यह इसी उटज के आगे,
> मिल जायें तुम्हीं में प्राण आर्त्त अनुरागे।'

अलंकार—'तुम न यों यशःस्वर्ग से गिरो' में 'यश' पर 'स्वर्ग' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

निरखती अभी············जानती।

शब्दार्थ—निरखती—देखती। एकमात्र मैं—केवल मैं ही। अभिन्न—मिली हुई। अर्द्ध गात्र—अर्द्धांगिनी। मत्त—पगली।

अर्थ—उन्मत्त दशा को प्राप्त हुई विरहिणी ऊर्मिला यह अनुभव करती है कि उसका प्रियतम वन से लौट आया है और उसके द्वार पर खड़ा है। यह सोच कर कि उसके इस कार्य से उसे भी कलंक लगेगा, वह अपने प्रियतम से वापिस लौट जाने की प्रार्थना करती हुई कहती है कि हे प्रियतम ! अभी तक तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust Funding IKS-MoE-Gran

तुम्हें केवल मैंने ही देखा है और मैं तुमसे अभिन्न तथा तुम्हारी अर्द्धांगिनी हूं, इसलिए तुम्हें इसकी चिंता नहीं करनी चाहिए। यदि यह समझो कि मेरी सखी ने मेरी सारी बातें सुन ली हैं तो भी चिंता करने की बात नहीं है, क्योंकि मेरी यह सखी तो मुझे पगली समझती है। अतः मैंने जो कुछ कहा है, उसे यह सत्य न मानकर मेरा प्रलाप ही मानती है। इसलिए आज मैं इसी बात में कुशलता जानती हूँ कि तुम तुरंत ही वापिस लौट जाओ, क्योंकि अभी तक तुम्हारे आने का पता किसी को भी नहीं चला है। यदि तुमने लौटने में देरी की और दूसरे लोगों को भी इसका पता चल गया तो फिर अपयश से किसी भी प्रकार से छुटकारा न मिल सकेगा।

विशेष—इन पंक्तियों में विरहिणी ऊर्मिला का वही रूप व्यक्त है जो उन वीर-बालाओं का हुआ करता था जो रण से भागकर आये हुए अपने पतियों को घर में घुसने नहीं दिया करती थीं; वरन् उन्हें देखकर अपने भवन के द्वार बंद करवा लिया सकती थीं।

अवश रो रहे········सती रहूँ।

शब्दार्थ—अवश—विवश, असहाय। धँसे—अत्यधिक दुखी हुए। व्रती—व्रत का पालन करने वाले। सती—नारी-धर्म का पालन करने वाली स्त्री।

अर्थ—उन्माद-दशा को प्राप्त करके विरहिणी ऊर्मिला यह अनुभव करती है कि उसका प्रियतम मोह में पड़कर वन से लौट आया है और उसके द्वार पर खड़ा हुआ है। वह यह भी सोचती है कि उसके इस कार्य से उसकी बड़ी निंदा होगी, अतः वह उसे सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे प्रियतम! यद्यपि मेरे प्राण विरह-वेदना के कारण विवश होकर अत्यधिक दुखी बने हुए हैं, तथापि मुझ पर कोई नहीं हँस सकता! अर्थात् मेरी कोई निंदा नहीं कर सकता, क्योंकि मैं सफलतापूर्वक अपनी मर्यादा का निर्वाह कर रही हूँ। तुम्हारे इस प्रकार यहाँ पर लौट आने से निंदा का भय है, अतः मैं तो इस विषय में केवल इतना ही कह सकती हूँ कि तुम तुरन्त वापिस लौट जाओ ताकि अब हमारी हँसी न हो जाये, जिस निंदा से बचने के लिए मैं इतने कष्ट झेल रही हूँ, वही निंदा सहनी न पड़ जाये। इसलिए तुम वन में जाकर अपने व्रत का पालन करो और मैं यहाँ पर अपने नारी-धर्म का पालन करती रहूँ।

विशेष—विरहिणी ऊर्मिला के वीर-भाव का वर्णन है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

धिक ! तथापि·········हेरती !

शब्दार्थ—धिक—धिक्कार। अलज्ज-से—लज्जाहीन मनुष्य की भाँति। दीठ—दृष्टि। ढीठ—धृष्ट। हेरती—देखती हूँ।

अर्थ—उन्माद-दशा को प्राप्त हुई ऊर्मिला जब यह अनुभव करती है कि बहुत-कुछ समझाने पर भी उसका प्रियतम द्वार पर ही खड़ा है, वापिस वन को नहीं लौट रहा है तो वह उसकी भर्त्सना करती हुई कहती है कि तुम्हें धिक्कार है जो अभी भी मेरे ही सामने खड़े हो। न जाने लज्जाहीन मनुष्य की भाँति तुम यहाँ पर क्यों अड़े हुए हो। हे धृष्ट ! पीठ देकर मैं जिस ओर दृष्टि फेरती हूँ, उधर ही तुम्हें देखती हूँ। भाव यह है कि मैं घृणा करके तुमसे मुख मोड़ती हूँ, लेकिन तुम मेरी आँखों के आगे से जाते ही नहीं।

विशेष—ऊर्मिला के चरित्र को महत्तम बनाने का कवि का इतना प्रबल आग्रह है कि वह लक्ष्मण के चरित्र की ओर ध्यान नहीं दे पाता। यही कारण है कि इन पंक्तियों में लक्ष्मण के चरित्र को तो ठेस लगी ही है, ऊर्मिला का चरित्र भी दूषित हो गया है, क्योंकि उसकी भर्त्सना में शालीनता का नितांत अभाव है।

अलंकार—'जिधर पीठ दे दीठ हेरती' में 'पीठ' और 'दीठ' में समान स्वरों तथा व्यंजनों की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास अलंकार।

तुम मिलो······मुझे।

शब्दार्थ—मुण्ड फोड़के—सिर फोड़कर, भारी ग्लानि से भरकर। धर—पकड़।

अर्थ—उन्माद-दशा को प्राप्त होकर विरहिणी ऊर्मिला यह अनुभव करती है कि उसका प्रियतम अपना धर्म छोड़कर और उसके मोह में पड़कर वन से चला आया है और उसके द्वार पर खड़ा है। अतः वह उसकी भर्त्सना करती हुई कहती है कि यदि तुम इस प्रकार अपना धर्म छोड़कर मुझसे मिलने आये हो तो यह मेरे लिए गहरी लज्जा की बात है और भारी ग्लानि से भरकर मर जाने के अतिरिक्त मेरे लिए और कोई दूसरा मार्ग नहीं है। जिस शरीर के सौन्दर्य से बँधकर तुम अपना धर्म छोड़कर यहाँ आ गये हो, इस शरीर को सँभालो, क्योंकि अब मैं मर रही हूँ। हे सखि ! मुझे अब तू भी न पकड़, मुझे छोड़ दे और अपनी मर्यादा के लिए मुझे अपने प्राणों का त्याग करने दे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

विशेष—इन पंक्तियों में भी लक्ष्मण का चरित्र दूषित हो गया है, क्योंकि यह शरीर लों' से उसका अतिशय कामुक रूप व्यक्त होता है।

अलंकार—'फिर मरूँ न क्यों मुंड फोड़के' में 'काकु-ध्वनि से अर्थ में परिवर्तन होने से काकुवक्रोक्ति अलंकार।

स्वजनि क्या रहा········शान्ति है।

शब्दार्थ—स्वजनि—सखि !_ उन्माद—पागलपन। भ्रान्ति—धोखा। क्षोभ—दुख।

अर्थ—ऊर्मिला की उन्माद-भरी बातों को सुनकर उसकी सखी उसे समझाती हैं कि प्रियतम वहाँ नहीं हैं तो ऊर्मिला उत्तर देती है कि हे सखि ! क्या कहा ? मेरे प्रियतम यहाँ नहीं हैं। फिर भी वे मुझे जहाँ-तहाँ क्यों दिखाई देते हैं ? यदि यह वास्तव में मेरा पागलपन और धोखा है तो मेरा क्रोधजन्य दुख मिट गया है और अब मुझे शान्ति का अनुभव हो रहा है।

विशेष—विरहिणी की उन्माद-दशा का सजीव चित्रण है।

धिक ! प्रतीति भी·····कहीं पता !

शब्दार्थ—प्रतीति—विश्वास। प्रतिविधान—प्रायश्चित्त।

अर्थ—जब ऊर्मिला को यह बोध होता है कि उसने अपने प्रिय के विषय में व्यर्थ ही अनुचित बातें कह दी हैं तो वह इस पर दुख प्रकट करती हुई अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! मुझे धिक्कार है जो मैं अपने प्रियतम पर भी विश्वास न कर सकी। पर यह तो मेरे वश की बात न थी, क्योंकि उन्माद ने मेरे समूचे ज्ञान को नष्ट कर दिया था। अब तू ही बता कि इस भीषण पाप का मैं क्या प्रायश्चित्त करूँ, क्योंकि मैंने जो अनर्थ किया है, वह अपार है, इसका प्रायश्चित्त करना भी असम्भव है।

विशेष—ऊर्मिला की आत्म-ग्लानि का मार्मिक चित्रण है।

अधम ऊर्मिले········पात्र तू ?

शब्दार्थ—अधम—नीच। सदाशया—उत्तम चरित्र वाली। अपात्र—पापी !

अर्थ—प्रमाद दशा में अपने प्रियतम को अनुचित शब्द कहने के कारण ऊर्मिला को अत्यधिक आत्म-ग्लानि हुई। वह अपनी ग्लानि को प्रकट करती हुई कहती है कि हे नीच ऊर्मिले ! तू अत्यन्त दयाहीन है। तू समझती है कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

तेरा प्रियतम तो पतित है और केवल तू ही उत्तम चरित्र वाली है। केवल तू ही नियमों का पालन करने वाली है, बाकी सब लोग नियमों को तोड़ते हैं। शेष सब लोग पापी और गुणहीन हैं, एक तू ही धर्मात्मा और गुणवती है।

विशेष—ऊर्मिला की आत्म-ग्लानि की भावना अत्यन्त सशक्त शब्दों में व्यक्त हुई है।

अलंकार—प्रकारांतर से अभीष्टार्थ की अभिव्यक्ति होने से पर्यायोक्ति अलंकार।

मुँह दिखाएगी..............जायगी भला ?

शब्दार्थ—ससंशया—संदेह से भरी हुई। सदय—दयालु। चंचला—चंचल मन वाली।

अर्थ—उन्माद-दशा में अपने प्रियतम को अनुचित शब्द कहने के कारण ऊर्मिला का मन भारी आत्म-ग्लानि से भर गया है। वह अपनी आत्म-ग्लानि को प्रकट करती हुई कह रही है कि हे ऊर्मिले ! तूने अपने प्रियतम को इतने अनुचित शब्द कहे हैं कि अब तू उन्हें मुँह दिखाने योग्य भी नहीं रही है। तेरा हृदय संदेह से भरा हुआ है, इसीलिए तूने अपने प्रिय के प्रति संदेह करके भारी अपराध किया है। तुझे इस अपराध के कारण मर जाना चाहिए। मेरे प्रियतम दयालु हैं और तू चंचल मन वाली है। निश्चय है कि वे मेरे इस अपराध को क्षमा कर देंगे, पर तू उनकी इस क्षमा को सहन नहीं कर पायेगी। भाव यह है कि तू इतनी अधिक अपराधिनी बन गई है कि तुझे तो क्षमा किया जाना भी उचित नहीं है।

विशेष—ऊर्मिला की आत्म-ग्लानि का सजीव एवं मार्मिक चित्रण है।

बिसरता नहीं.........आप में।

शब्दार्थ—बिसरता नहीं—छोड़ता नहीं। अधीन—धैर्यहीन। ताप—विरह-दुख।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला को अनुभव होता है जैसे उसके प्रियतम उसके कटु शब्दों को सुनकर कह रहे हैं कि न्याय भी दया को नहीं छोड़ा करता, पर तुमने तो निष्ठुर बनकर मेरे साथ भारी अन्याय किया है। हे प्रिये ! और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हारी सभी बातों को अच्छी तरह समझ गया हूँ। तुम विरह के तुच्छ दुःख में पड़कर धैर्यहीन बन गई हो, इसलिए तुम्हें अपनी कोई सुध-बुध नहीं रह गई है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

विशेष—१. 'तुम अधीर हो तुच्छ ताप में' से ऊर्मिला के चरित्र की न्यूनता व्यक्त होती है।

२. 'बिसरता नहीं न्याय भी दया' यह वाक्य अत्यन्त भावपूर्ण है।

अलंकार—'रह सकी नहीं आप आप में' में अर्थ में विरोध का आभास होने से विरोधाभास अलंकार।

न उस धूप······चुआ।

शब्दार्थ—राजगेह—राज-भवन। रुधिर—खून। स्वेद—पसीना।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला को अनुभव होता है कि उसके कटु शब्दों को सुनकर उसके प्रियतम उसकी भर्त्सना करते हुए कहते हैं कि जिस धूप और वर्षा में मैं रह रहा हूं, तुमने उसके कष्ट नहीं देखे हैं, क्योंकि तुम तो अयोध्या के राज-भवन में रह रही हो। हे देवि ! तुम्हें क्या मालूम कि मैंने बन में आकर किस-किस प्रकार के कष्ट भोगे हैं। यहाँ तो खून पसीना बनकर बहा है।

विशेष—ऊर्मिला पर मार्मिक प्रहार है।

विपिन में······ऊर्मिले।

शब्दार्थ—विपिन—बन।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला को अनुभव होता है कि उसके कटु शब्दों को सुनकर उसका प्रियतम उसकी भर्त्सना करता हुआ कह रहा है कि मैं बन में कभी सो भी नहीं सका हूँ। अधिक क्या कहूं, अपनी व्यथा को हल्की करने के लिए कभी रो भी नहीं सका हूं। अपनी और तुम्हारी मर्यादा की रक्षा के लिए, और अपने गौरव के लिए, मैंने जो भीषण कष्ट सहन किये हैं, हे ऊर्मिले तुमने उनका यह पुरस्कार मुझे दिया है।

गिन सको·········सत्व की।

शब्दार्थ—शूल—काँटे। समालोचना—नुक्ताचीनी करना। तत्व—सार। सत्व—प्राण।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला को यह अनुभव होता है कि उसने अपने प्रियतम के लिए जो कटु शब्द कहे हैं, उन्हीं को सुनकर मानो वह भर्त्सना करता हुआ कह रहा है कि बन के कँटीले मार्गों पर नंगे पैरों चलने के कारण मेरे पैर में जितने काँटे चुभे हैं, उन्हें तुम गिन भी नहीं सकती। हे शुभे ! दूसरों के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

बारे में नुक्ताचीनी करना बहुत आसान है, पर जब स्वयं को वह साधना करनी पड़ती है तो यथार्थ का पता चल जाता है। किसी पदार्थ का सार प्राप्त करना बहुत कठिन है, उसे प्राप्त करने के लिए पहले प्राणों की सिद्धि करनी पड़ती है, अपने प्राणों को आग में तपाना पड़ता है।

कठिन कर्म का……रो लिया।

शब्दार्थ—दैव—भाग्य। नेक—थोड़ा-सा।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला को यह अनुभव होता है कि उसने अपनें प्रियतम के लिए जो कटु शब्द कहे हैं वे उसने सुन लिए हैं और इसी कारण वह उसकी भर्त्सना करता हुआ कह रहा है कि वन में कर्म का क्षेत्र कठिन था। वहाँ पग-पग पर भीषण बाधाओं को सहन करना पड़ता है, पर अयोध्या में तो सर्वत्र सुख ही सुख है। वन में यदि मैं विघ्न-बाधाओं से बहुत अधिक विचलित हुआ तो अपने भाग्य को उलाहना देकर संतोष कर लिया, या अधिक से अधिक थोड़ा-बहुत रोकर अपना दुख हल्का कर लिया।

सतत पुण्य………तुम्हें ?

शब्दार्थ—सतत—सदैव। आत्म-अंगनि—प्रिया। इष्ट—प्रिय। मिष्ठ—मधुर।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला ने अपने प्रियतम को जो कटु शब्द कहे, उसे अनुभव हुआ कि वे शब्द उसने सुन लिए हैं और वह इसी प्रकार उसकी भर्त्सना करता हुआ कह रहा है कि हे प्रिये! मैं तुम्हें अपने पुण्यों में या पापों में सदा अपनी संगिनी समझता रहा, अर्थात् मैं यह जानता रहा कि तुम सुख और दुख दोनों में ही मेरा साथ निभाती रहोगी, पर यह मेरा भ्रम ही सिद्ध हुआ। अब मैं जान पाया हूँ कि तुम्हें अपने पति का पुण्य ही प्रिय था, अर्थात् केवल सुख के दिनों में ही तुम उसकी बनी हुई थी। जीवन में जो कटु है, उसे मैं स्वयं भोगता रहूँ और जो मधुर है उसे ही तुम चाहती थी।

विशेष—इससे अधिक कठोर प्रहार एक नारी पर और क्या हो सकता है ?

प्रियतमे………पुण्य-भागिनी।

शब्दार्थ—तपोभ्रष्ट—तप से भ्रष्ट हुआ। विरागिनी—वैराग्य भावना वाली। पुण्य-भागिनी—पुण्यों वाली, सुखी जीवन बिताने वाली।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला को यह अनुभव होता है कि उसने अपने प्रियतम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

के लिए जो कटु शब्द कहे हैं, वे उसने सुन लिए हैं और वह उसकी भर्त्सना करता हुआ कह रहा है कि हे प्रियतमे ! यदि तुम मुझे इतने असीम और भयंकर कष्ट सहने के पश्चात् भी तप से भ्रष्ट हुआ मानती हो तो ठीक है। मैं तपोभ्रष्ट ही भला हूँ। तुम मुझे मत छुओ। लो, मैं वापिस लौट कर वन जा रहा हूँ। हे वैराग्य भावना वाली ! तुम सुखी रहो। हे पुण्य-भागिनी ! अब तुम मुझे विदा दो।

हट सुलक्षणे·········क्या कहा ?

शब्दार्थ—सुलक्षणा—ऊर्मिला की अंतरंगिनी सखी। पतित—पापी। आलि—हे सखि !

अर्थ—ऊर्मिला यह अनुभव करती है कि उसका प्रियतम उसकी भर्त्सना करके और रूठ कर वापिस वन जा रहा है। वह उसे पकड़ने के लिए दौड़ती है तो उसकी अंतरंगिनी सखी सुलक्षणा उसे पकड़ लेती है। तब ऊर्मिला कहती है कि हे सुलक्षणे ! मेरे सामने से हट जा। मुझे मत रोक। मैं पापी हूँ, मुझे तू इस प्रकार न टोक। बेचारे लक्···(ऊर्मिला लक्ष्मण कहना चाहती थी, पर उसकी सखी ने उसे बीच में ही रोक दिया, क्योंकि अपने पति का नाम लेना शास्त्रों के विरुद्ध है। अतः वह 'लक्' कह करके ही रह गई) हे ऊर्मिले ! यह क्या करती हो; तुम्हें अपने पति का नाम नहीं लेना चाहिए और फिर तुम्हारा पति यहाँ है भी कहाँ ? तुम्हें तो व्यर्थ ही यह भ्रम हो गया है।

विशेष—गुप्त जी भारतीय संस्कृति के आख्याता हैं। भारतीय नारी अपने पति का नाम नहीं ले सकती, यह भारतीय शास्त्रों की आज्ञा है।

फिर हुई·········ऊर्मिला रहे।

शब्दार्थ—मत्त—पागल। प्रियत्व—प्रिय का रूप।

अर्थ—ऊर्मिला थोड़ी चेतना आने के पश्चात् फिर पागल हो गई और अपनी सखी से कहने लगी कि हे सखि ! क्या मुझे प्रिय का ही रूप मिल गया था जो सर्वत्र वे ही दिखाई पड़ते थे। मेरी इस दशा को चाहे वियोग कह लें, चाहे रोग, पर मेरी तो यही इच्छा है कि मैं सदैव प्रियमयी ही बनी रहूँ, प्रिय के रूप में मिल कर तदाकार हो जाऊँ।

विशेष—विरह की चरम सीमा पर विरहिणी अपने प्रियतम से तदाकारता प्राप्त कर लेती है, उसी का रूप बन जाती है। विद्यापति की विरहिणी राधा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

भी विरह की चरम सीमा पर पहुँच कर कृष्णमयी हो गई है—

'अनुखन माधब माधब सुमरइते सुन्दरि भेलि मधाई।
ओ निज भाव सुभावहि बिसरल अपनेहि गुन लुबुधाई।'

भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र की विरहिणी राधा की भी यही दशा होती है। उसके प्राण कृष्णमय हो जाते हैं—

'मोह मोह मोहनमयी री मन मेरो भयो,
हरीचंद भेद न परत कछु जान है।
प्रान भए कान्हमय, कान्ह भए प्रानमय,
हिय में जान्यौ परै, कान्ह है कि प्रान है।'

उन्मादिनी········कब है ?

शब्दार्थ—उन्मादिनी—पगली। विवेकिनी—बुद्धिमती। सोऽहं—वही मैं हूँ अर्थात् द्वैत की भावना क्योंकि 'वह' और 'मैं' कहने से दो की सत्ता का बोध होता है। स्वयं—अहं की भावना, अपनापन।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! जब मैं और अपने प्रिय को दो मानती थी, वस्तुतः पगली तो मैं तब थी, क्योंकि तब सत्य को न जानकर असत्य में भटक रही थी। और अब मैं सचमुच बुद्धिमती हो गई हूँ। बुद्धि द्वैत की भावना को बनाये रखती है, इसलिए इससे तो वह अज्ञान (पागलपन) ही अच्छा है जिसमें द्वैत की भावना ही नष्ट नहीं होती, वरन् प्राणी अहं की भावना से भी मुक्ति पा जाता है, अपनापन त्याग देता है।

ऊर्मिला के कहने का भाव यह है कि विरहजन्य पागलपन सुखजन्य चेतना से बहुत अच्छा है, क्योंकि पागलपन की स्थिति में 'तू' और 'मैं' की भावना नष्ट हो जाती है और चेतना की स्थिति में यह बनी रहती है। अतः जब लोग मुझे विवेकिनी समझते थे, तब तो मैं सचमुच उन्मादिनी थी, क्योंकि मेरे मन में द्वैत की भावना बनी हुई थी और अब मैं विवेकिनी हूँ, जबकि लोग मुझे पगली समझ रहे हैं, क्योंकि अब मेरे मन की द्वैत की भावना नष्ट हो गई है और मैं प्रिय से तादात्म्य स्थापित करके प्रियमयी बन गई हूँ।

विशेष—१. इन पंक्तियों में दर्शन की झलक है जो काव्यमयी शैली में अत्यन्त रमणीयता से व्यक्त हुई है।

२. 'साकेत' के व्याख्याताओं ने इन पंक्तियों के भिन्न-भिन्न प्रकार से अर्थ किये हैं। यथा—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

(क) 'साधना के द्वारा ज्ञानी जब आत्मा और परमात्मा में अभेद स्थापित कर लेता है तब वह 'सोऽहं, की स्थिति को प्राप्त करता है। अज्ञान की दशा में प्रिय के साथ एकता का अनुभव कैसे हो सकता था ? इतना तो दूर, तब तो अपने अस्तित्व का अनुभव होना भी कठिन था।'

—डा० कन्हैयालाल सहल

(ख) 'हे सखी ! एक समय था जब मैं प्रेम में पागल हो उठी थी, लेकिन अब मेरा विवेक जाग्रत हो उठा है। फिर भी सबसे अच्छा है तन्मय या चेतनाहीन होना। उसमें प्राणी की अहं भावना नष्ट हो जाती हैं, अतः ऐसा गर्व करने का अवसर ही नहीं मिलता कि मैं ही वह ब्रह्म 'मानव' हूँ।

(ग) 'ऊर्मिला कहती है (कि) हे सखि ! ऊर्मिला (मैं) कभी उन्मादिनी (मत्त) थी परन्तु अब तो वह विवेकिनी हो गई है (उसे अपना अथवा भले-बुरे का ज्ञान हो गया है) हे सखी ! तूने मुझे कल्पना-लोक से निकालकर वास्तविकता का भाव करा दिया है, परन्तु इस ज्ञान से तो अज्ञान ही भला जिसमें सोऽहं तो क्या, अहं भी कहाँ होता है ? (अज्ञान की दशा में सोऽहं—अपने को (जीव को) परमात्मा का ही एक अंश मानना अथवा परमात्मा और आत्मा में अभेद स्थापित कर लेने की बात ही क्या 'अहं—अहंकार—अहं ब्रह्मोऽस्मि—तक भी नहीं होता, मनुष्य ज्ञान और अहंभाव दोनों से ही सर्वथा मुक्त होता है)।'

—श्री नगीनचंद सहल

अलंकार—अर्थ में विरोध का आभास होने से विरोधाभास अलंकार।

लाना, लाना............भूली, भूली।

शब्दार्थ—तूली—तूलिका, कूंची। निष्कृति—छुटकारा।

अर्थ—किसी चित्र का अपने मन में अंकन करके और उसे कागज या पटल पर अंकित करने की इच्छा से ऊर्मिला अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! मेरी कूंची जल्दी से जल्दी लाओ, क्योंकि मेरी आँखों में एक चित्र की कल्पना झूली हुई है। कूंची लेकर शीघ्र मेरे पास आ, ताकि उस चित्र को मैं कागज या पटल पर अंकित करके अपनी इस वियोगजन्य चिंता से छुटकारा पा लूं। मुझे डर लग रहा है कि चूंकि आजकल मेरी मानसिक स्थिति अस्त-व्यस्त है, अतः कहीं उस चित्र को भूल न जाऊँ। इसलिए हे सखि ! तू मेरी कूंची शीघ्र ही ले आ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

विशेष—विरहिणी का विरह-वेदना में मुक्ति पाने के लिए चित्र अंकित करना साहित्य-परम्परा है जो मनोविज्ञान पर आधृत है। इस गीत में कवि इसी साहित्य-परम्परा का निर्वाह कर रहा है।

अलंकार—१. 'लाना, लाना, सखि' में 'लाना' शब्द का भावावेशात्मक प्रयोग होने से वीप्सा अलंकार।

२. 'भूला भूली' में समान स्वरों और व्यंजनों की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास अलंकार।

जब जल चुकी............ज्यों शूली।

शब्दार्थ—सती—शिव की पत्नी जो दक्ष की कन्या थी। शूली—शिव।

अर्थ—ऊर्मिला अपनी सखी को बता रही है कि वह किस प्रकार का चित्र अंकित करना चाहती है। वह बताती है कि जब विरहिणी बाला जल चुकी और उसकी चिता की आग भी बुझने लगी तब वह विरही इस प्रकार वहाँ पहुँचा, जिस प्रकार सती के यज्ञकुंड में भस्म हो जाने पर शिव पहुँचे थे। हे सखि! जल्दी ही कूँची ले आ।

विशेष—राजा दक्ष शिव का बड़ा अनादर करते थे। एक बार उन्होंने महायज्ञ का विधान किया। उसमें सभी देवताओं को तो आमंत्रित किया, पर शिव को नहीं बुलाया। सती, जो दक्ष की कन्या थी और उसका विवाह शिव के साथ हुआ था, अपने पति का यह अनादर सहन न कर सकी और यज्ञ को भंग करने के लिए यज्ञकुंड में कूद पड़ी। तब शिव वहाँ पर अपने गणों को लेकर पहुँचे और शिव के गणों ने क्रुद्ध होकर उस यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। 'सती-हीन ज्यों शूली' से कवि इसी कथा की ओर संकेत करता है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी इस कथा का उल्लेख करते हुए लिखा है—

'अस कहि जोग अगिनि तनु जारा।
भयेउ सकल मख हाहाकारा॥'

अलंकार—'सती-हीन ज्यों शूली' में उपमा अलंकार।

झुलसा तरु.........गोधूली।

शब्दार्थ—निर्झर—झरना। हत—दुखी। हरहर—हाय-हाय। गोधूली—(१) इंद्रियों की (विरहिणी के जले हुए शरीर के अवयवों की) धूलि; (२) संध्याकाल, प्रतीकार्थ दुख की धूलि।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला अपने अंकित किये जाने वाले चित्र का भाव अपनी सखी को समझाती हुई कह रही है कि हे सखि ! उस विरहिणी की चिता की आग से झुलस कर वहीं समीप पर खड़ा हुआ वृक्ष मर्मर की ध्वनि कर रहा था, निर्झर झर-झर करता हुआ बह रहा था और दुखी विरही हाय-हाय कर रहा था। उस समय चारों ओर विरहिणी के जले हुए शरीर के अवयवों की धूलि उड़ रही थी; अथवा दुख की धूल चारों ओर उड़ रही थी; अर्थात् चारों ओर भारी दुख छाया हुआ था। हे सखि ! मेरी कूँची को तू शीघ्र ही ले आ।

विशेष—मार्मिक वातावरण का सजीव चित्रण हुआ है।

अलंकार—ध्वनि-संयोजना होने से ध्वन्यर्थव्यंजना अलंकार।

ज्योंही अश्रु·········लतिका फूली !

शब्दार्थ—अश्रु—आँसू। वदनाकृति—मुख का रूप। लतिका—बेल।

अर्थ—अपने चित्र के अन्तिम भाग का वर्णन करती हुई विरहिणी ऊर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! ज्योंही उस विरही का आँसू उस चिता पर पड़ा, त्योंही वह वृक्ष अंकुरित होकर पत्तों से लद गया। उस पर जो फूल आया, वह उस विरहिणी के मुख के रूप के समान था। और तब बेल फूल-फलकर वृक्ष से लिपट गई। हे सखि ! मेरी कूँची तू शीघ्र ही ले आ।

विशेष—इन पंक्तियों में विरहिणी ऊर्मिला की अचल आशा स्पष्ट है।

अलंकार—'ज्योंही अश्रु चिता पर आया, उग अंकुर पत्तों से छाया' में कारण-कार्य का एक साथ वर्णन होने से चपलातिशयोक्ति अलंकार।

सिर-माथे·········प्रेरक भगवान !

शब्दार्थ—सिर-माथे—शिरोधार्य, सहर्ष स्वीकार्य। दान—विरह-दुख। प्रेरक—प्रेरणा देने वाले। विभु-बन—वैभव का बन।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला भगवान् से विनती करती हुई कहती है कि हे मेरे प्रेरक भगवान् ! तुमने जो मुझे विरह-दुख का दान दिया है, वह मैं सहर्ष स्वीकार करती हूँ। जब तुमने अपनी इच्छा से मुझे यह दान दे दिया है तो अब तुम्हारे सामने हाथ फैलाकर और क्या माँगू ? मैं तो केवल यही विनती करती हूँ कि मेरे प्रियतम मुझे भूलकर बन में उसी प्रकार निश्चित होकर विचरण करते रहें जिस प्रकार कोई वैभवशाली मनुष्य अपने कर्मों को करता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

है। लेकिन मैं सदैव उनका ध्यान करती रहूँ, कभी उन्हें न भूलूँ।

विशेष—इन पंक्तियों में ऊर्मिला का आस्था-भाव स्पष्ट है।

डूब बची............प्रेरक भगवान !

शब्दार्थ—सती—राजा दक्ष की पुत्री और शिव की पत्नी। विधि—नियम।

अर्थ—विरहिणी ऊर्मिला भगवान् से विनती करती हुई कहती है कि हे मुझे प्रेरणा देने वाले भगवान् ! लक्ष्मी ने डूबकर विरह-दुख से छुटकारा पाया; सती यज्ञकुण्ड में विरह-वेदना से मुक्त हुई। पर मैं इन दोनों की भाँति मरकर विरह-वेदना से छुटकारा पाना नहीं चाहती। मैं तो यही चाहती हूँ कि जीवित रहूँ और घर में बैठकर ही सब प्रकार की विरह-वेदनाओं को सहन करती रहूँ। मेरे सारे कार्य भी नियमपूर्वक चलते रहें।

विशेष—ऊर्मिला जीवन से पलायन को श्रेयस्कर नहीं मानती, बल्कि वह जीवन के संघर्ष से जूझने में ही जीवन की सफलता मानती है।

दहन दिया........प्रेरक भगवान !

शब्दार्थ—दहन—जलन। सहन—सहन-शक्ति। अदेय—जो न दी जा सके। श्रेय—कल्याण। रुदन—रोना।

अर्थ—भगवान् की शक्ति में आस्था एवं विश्वास प्रकट करती हुई विरहिणी ऊर्मिला कहती है कि मेरे प्रेरक भगवान् ! जब तुमने मुझे जलने के लिए विरह की जलन दी है तो इसे सहन करने के लिए तुम सहन-शक्ति भी अवश्य दोगे। मनुष्य को प्रभु की इच्छा ही पूरी करनी चाहिए, क्योंकि इसी में सबका कल्याण छिपा हुआ होता है। इसीलिए मैं अपने लिए रोने को और गाने को समान ही समझती हूँ, इन दोनों को प्रभु का दान समझकर सहर्ष स्वीकार करती हूँ।

विशेष—भगवान् की इच्छा के प्रति सम्पूर्ण समर्पण ऊर्मिला की अपार निष्ठा का द्योतक है।

अलंकार—१. 'दहन' और 'सहन में समान स्वरों तथा व्यंजनों की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास अलंकार।

२. 'यही रुदन है मेरा गान' में विरोधाभास अलंकार।

अवधि-शिला........दृगजल-धार।

शब्दार्थ—अवधि-शिला—अवधि-रूपी चट्टान। गुरु—भारी। दृगजल-धार—आँसू-रूपी धारा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अर्थ—ऊर्मिला के हृदय पर अवधि-रूपी चट्टान का भारी भार था जिसे उसकी आँसू-रूपी धारा तिल-तिल करके काट रही थी।

भाव यह है कि जिस प्रकार चट्टान को जल की धारा धीरे-धीरे काटती है, उसी प्रकार ऊर्मिला रो-रोकर प्रियतम के आने की चौदह वर्षों की अवधि को बिता रही थी।

विशेष—१. ऊर्मिला की करुण दशा का मार्मिक चित्रण है।

२. डॉ० कन्हैयालाल सहल ने इस छंद का मूल्यांकन इन शब्दों में किया है—'ऊर्मिला के हृदय पर अवधि-रूपी शिला का भारी भार पड़ा हुआ था। उसके नेत्रों से जो जल-धारा बहती थी, वह इस शिला को तिल-तिल काट रही थी। शिला और जल-धार का यह रूपक भावाभिव्यक्ति में अत्यंत सहायक है। प्रिय के वियोग में आँसू बहाकर ऊर्मिला अपने पहाड़-से भारी दिनों को किसी प्रकार काट रही है। नेत्रों से अजस्र जल-धारा ही बहती रहे तो भी वह एक भारी शिला को कब तक काट सकेगी ? निष्ठुर नियति के आगे किसका वश चलता है। कवि की यह उक्ति पाठकों के हृदय पर एक गहरी अवसाद की रेखा छोड़ जाती है।'

अलंकार—'अवधि' पर 'शिला' का और 'दृगजल' पर 'धारा' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

—:०:—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

प्रमुख साहित्यिक प्रकाशन

१. कबीर ग्रन्थावली : डा० पुष्पपाल सिंह
२. जायसी ग्रन्थावली : डा० श्रीनिवास शर्मा
३. विद्यापति पदावली : डा० कृष्णदेव शर्मा
४. बिहारी सतसई भाष्य : डा० देशराज सिंह भाटी
५. रसखान ग्रन्थावली : डा० देशराज सिंह भाटी
६. केशव और उनकी रामचन्द्रिका : डा० देशराज सिंह भाटी
७. सूरदास और उनका भ्रमरगीत : डा० श्रीनिवास शर्मा
८. बिहारी सतसई : प्रो० विराज
९. घनानन्द कवित्त : प्रो० लक्ष्मण दत्त गौतम
१०. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ : डा० शिवकुमार
११. हिन्दी के प्रतिनिधि काव्य : डा० शान्तिस्वरूप गुप्त
१२. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि : प्रो० सुरेश अग्रवाल
१३. बृहत् साहित्यिक निबन्ध : डा० रामसागर त्रिपाठी
१४ साहित्यिक निबन्ध : डा० शान्तिस्वरूप गुप्त
१५. अशोक निबन्ध सागर : प्रो० विजय कुमार
१६. संस्कृत निबन्ध रत्नाकर : डा० शिवप्रसाद शास्त्री
१७. आधुनिक कथा साहित्य : प्रो० राजेश शर्मा
१८. गोदान पुनर्मूल्यांकन : डा० राजपाल शर्मा
१९. लोक साहित्य : डा० कृष्णदेव शर्मा
२०. पाश्चात्य काव्य शास्त्र : डा० जगदीश मिश्र
२१. भारतीय काव्य-शास्त्र : प्रो० सुरेश अग्रवाल
२२. भाषा विज्ञान : प्रो० देवदत्त कौशिक
२३. अज्ञेय की काव्य चेतना : डा० कृष्ण भावुक
२४. दिनकर और उनकी उर्वशी : डा० देशराज सिंह भाटी
२५. संस्कृत निबन्ध रत्नावली : डा० रामचन्द्र वर्मा

अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-

ru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr
Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.